जैन पौराणिक लघुकथाएँ

(भाग-५)

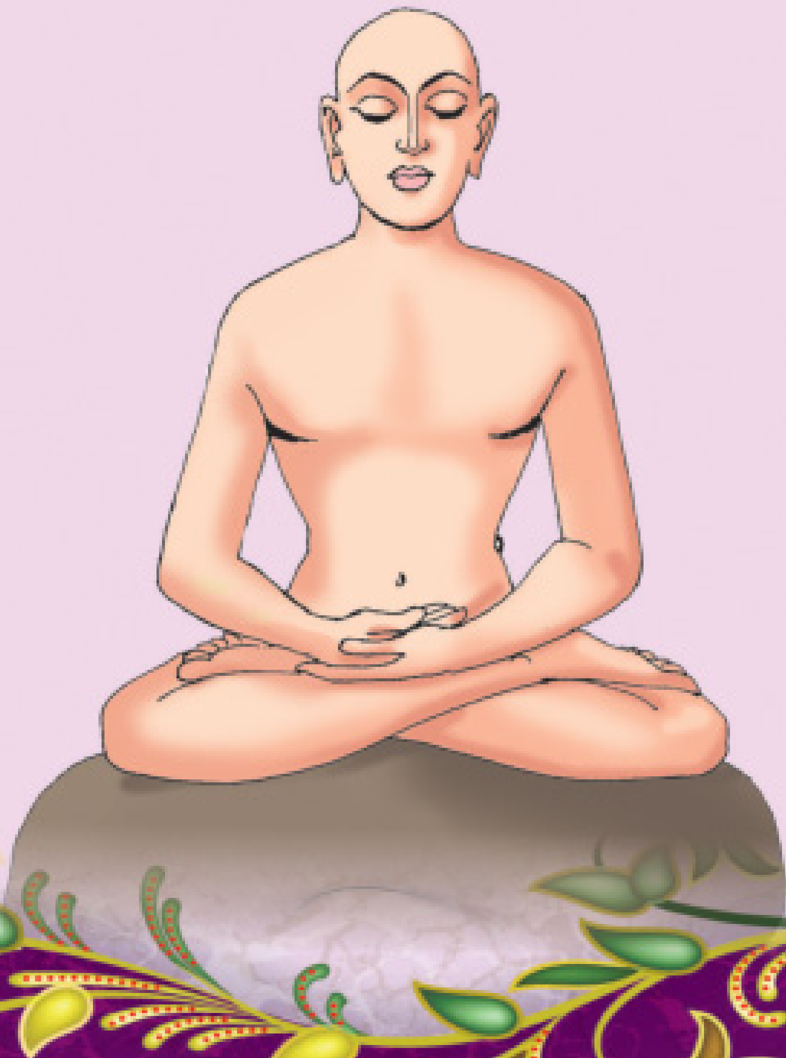

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,

सोनगढ़-364 250

website :www.kanjiswami.org   Email : contact@kanjiswami.org

शासननायक भगवान श्री महावीरस्वामी

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प-२५८

ॐ

नमः सद्गुरुवे।

सुवर्णपुरीके श्री परमागममंदिरकी दीवारोंके चित्रोंमेंसे
निजात्मावलंवी ज्ञानी धर्मात्माओंके जीवन पर आधारित

जैन पौराणिक लघुकथाएँ

(भाग-५)

卐

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़-364 250
website :www.kanjiswami.org
Email : contact@kanjiswami.org

प्रथम आवृत्ति　　प्रत : १५००　　वि. सं. २०७३　　ई.स. २०१७

जैन पौराणिक लघुकथाएँ (हिन्दी) भाग-५के
स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता
ललिताबेन व्रजलाल शाह परिवार
जलगाँव

मूल्य : रु. 30=00

मुद्रक :
स्मृति ऑफसेट
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

भरतक्षेत्रके महासमर्थ आचार्य भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

आचार्य भगवान श्री अमृतचंद्राचार्यदेव

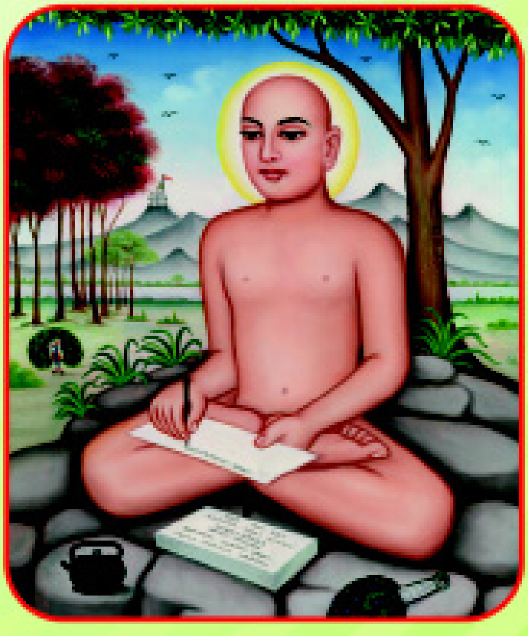

मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारीदेव

श्री पंच-परमागम जिनवाणी माता

भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेव चरणचिह्न

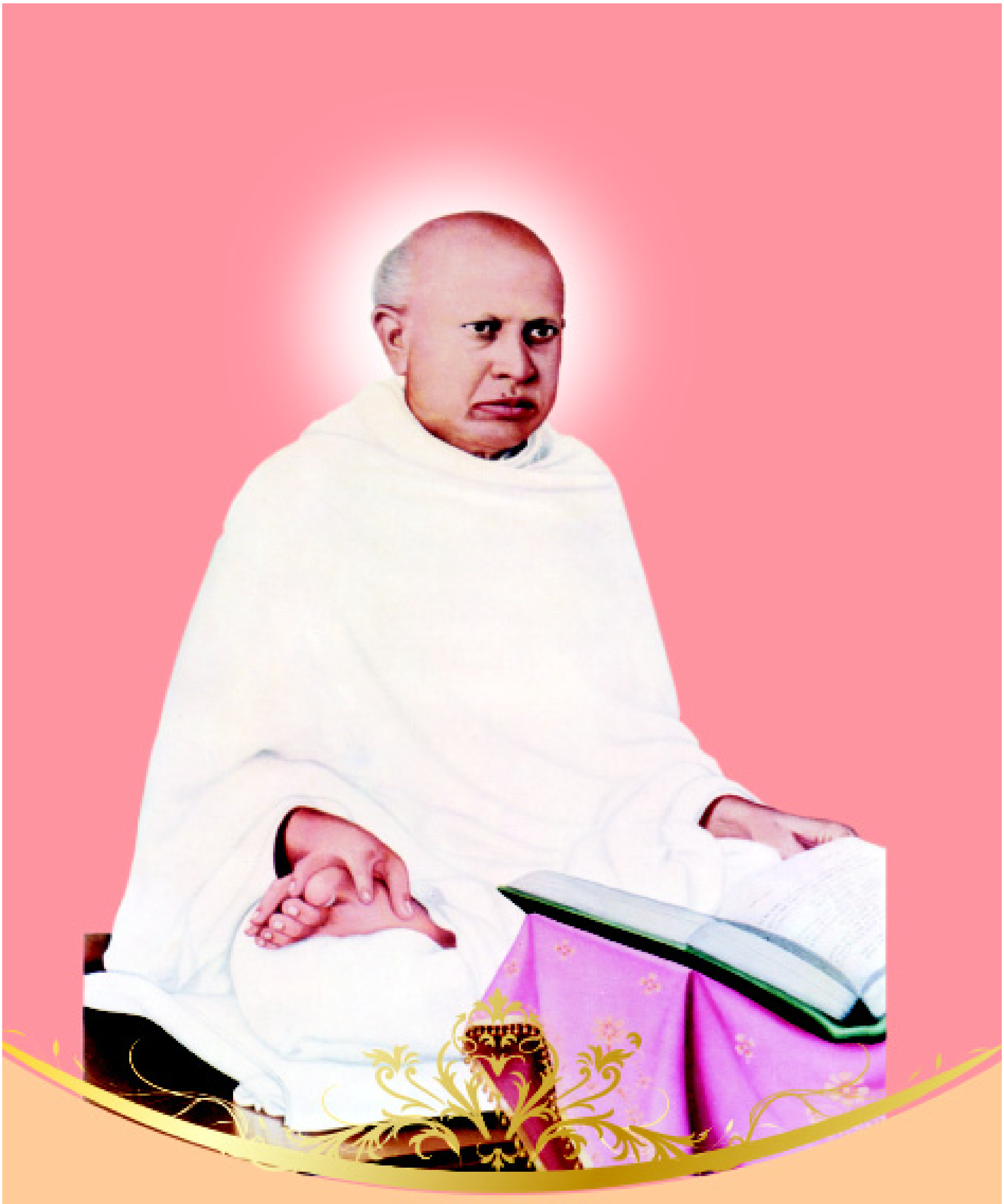

परम पूज्य सद्‌गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

प्रकाशकीय निवेदन

परमोपकारी अध्यात्मयुगस्रष्टा, आत्मानुभवी सत्पुरुष पूज्य सद्‌गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने अपनी अनुभवरसमयी आर्द्र वाणीमें जिनेन्द्रकथित चारों अनुयोगके सुमेलपूर्वक अध्यात्मरसगर्भित द्रव्यदृष्टिप्रधान उपदेशगंगा बहाई है; जिसमें स्नान करके भरतक्षेत्रके लाखों भव्य जीव अपना आत्महित साधनेको उत्सुक बने व इस ही कारण सोनगढ़ एक 'अध्यात्म अतिशयक्षेत्र' सुवर्णपुरीके रूपमें विश्वप्रसिद्ध तीर्थधाम बन गया है। पूज्य गुरुदेवश्रीके ही प्रभावना उदयसे सुवर्णपुरीमें स्वाध्यायमंदिर, जिनमंदिर, समवसरण मंदिर, मानस्तंभ, प्रवचनमंडप, परमागममंदिर, नंदीश्वर जिनालय आदि भव्य जिनायतनोंकी सुंदर रचना हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके अनन्य भक्त, स्वानुभवविभूषित, पूज्य बहिनश्री चंपाबेनको मुनि भगवंतों व आत्मज्ञानी महापुरुषोंके जीवनसे बहुत लगाव था। जिससे वे उक्त महापुरुषोंके जीवनसे अपने जीवनमें संवेग-वैराग्यभावको वृद्धिगंत करती रहती थीं। वे महिलासभामें भी सभीको आगमोक्त आत्मज्ञानी धर्मात्मा महापुरुषों व सतीयोंके जीवनके प्रसंग बहुत अध्यात्मसंग आर्द्रभावसे बताती थीं। उन प्रसंगोंमेंसे कई प्रसंग ऐसे होते कि जिससे निरुपराग आत्ममयदशारूप मोक्षमार्ग पर आत्मार्थीयोंको महत्त्व आये। ऐसे प्रसंगोचित कथाओं आधारित चित्रों उक्त आयतनोंमें भी उन्होंने मुख्यरूपसे अपने प्रथमानुयोगके शास्त्रज्ञानके आधारसे उत्कीर्ण एवं चित्रांकित कराए। निर्ग्रंथ मुनि भगवंतोंके दर्शन हो ऐसे ही दृश्य इन चित्रोंमें मुख्यरूपसे उन्होंने लिए हैं, जिसमें उनकी संवेगादि भावनाओंसे आयतनोंकी शोभा बहुत ही बढ़ गई है, एवं इन आयतनोंके दर्शन करनेवाले भाविकजनोंको विविध पुराण आधारित कथाओंसे अपनी संवेगादि भावनाओंको वृद्धि करनेका लाभ मिला है।

कुछ मुमुक्षुओंकी भावनाको लक्ष्यमें लेकर सोनगढ़से प्रकाशित हिन्दी आत्मधर्ममें पूज्य बहिनश्रीके अंतरमें वर्तती आगमोक्त वीतरागी महापुरुषोंके प्रति अहोभाव, श्रद्धा, भक्ति आदिको देखकर, मुमुक्षुओंको अंतरमें भी ऐसे ही भाव जागृत हो इस हेतुसे इन चित्रोंके आधारसे आचार्यदेव रचित पुराणोंमेंसे बालविभागमें वे कथाएँ दी थी। भव्य साधकजीवोंकी ये कथाएँ पढ़नेसे कुछ मुमुक्षुओंने ये कथाएँ पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करनेकी मांग की थी। जिसके फलस्वरूप सुवर्णपुरीके स्वाध्यायमंदिरमें आलेखित सात चित्रोंके आधारसे **"जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-१"** व श्री सीमंधरस्वामी जिनमंदिरमें अंकित

पौराणिक चित्रोंके आधारसे **''जैन पौराणिक लघु कथाएँ भाग-२''** नामक रंगीन पुस्तक प्रकाशित किये गये। उसी भांति सुवर्णपुरीमें स्थित प्रवचनमंडपमें बने हुए चित्रोंमेंसे शुद्धात्मद्रव्यमें प्रतिबद्ध रहते ज्ञानी भगवंत कैसे सहज 'उपसर्ग विजयी' होते हैं, उन धर्मात्माओंके चित्रोंकी कथा संबंधित पुस्तक **''जैन पौराणिक लघु कथाएँ भाग-३''**के रूपमें प्रकाशित हो चुकी है। प्रवचनमंडपके 'उपसर्गविजयी' सात चित्रके अलावा अन्य चित्रोंकी आचार्योंकृत पुराण आधारित कथाएँ **'जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-४'**के रूपमें प्रकाशित हो चुकी है। इसी भांति इस पुस्तकमें परमागममंदिरके चित्रोंकी कथा **''जैन पौराणिक लघु कथाएँ भाग-५''**के रूपमें प्रकाशित हो रही है।

आगे पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयमें आलेखित चित्रोंके आधारसे कथाओंकी ऐसी ही पुस्तक भी प्रकाशित करनेकी श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़की भावना है।

इस पुस्तकमें आवश्यकताके अनुरूप आगमोक्त मूल कथाकी हकीकत एवं हार्दको यथावत रखकर भाषामें सामान्य सुधार किया है।

यह पुस्तक तैयार करनेमें बा. ब्र. श्री व्रजलालभाई शाह(वढ़वाण)ने उपयोगी मार्गदर्शन दिया है, अतः हम अंतरसे उनके आभारी हैं। इस पुस्तकके सुंदर चित्र श्री जयदेवभाई अग्रावतने बनाये हैं एवं पुस्तकका मुद्रण स्मृति ऑफसेट द्वारा किया गया है। हम उन सभीके आभारी है।

इस पुस्तकमें परमागममंदिरके चित्रोंकी कथायें संक्षिप्त स्वरूपमें दी गई हैं। विशेष अभ्यासके लिये जिज्ञासुओंको जैनधर्मके प्रथमानुयोगका अभ्यास करना आवश्यक है। आशा है कि मुमुक्षु समाजको यह सचित्र पुस्तक पुराणपुरुषोंके प्रति अपनी समर्पणतामय भक्ति व आदर सह अपना सहज जीवन गढ़नेमें व अपने संवेगादि भावोंको बलवत्तर करनेमें कार्यकारी होगा।

पूज्य गुरुदेवश्रीका 128वाँ
जन्मोत्सव
सोनगढ़-(सौराष्ट्र)
ता. 28-04-2017

साहित्यप्रकाशनसमिति
श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

श्री महावीर-कुंदकुंद परमागमंदिर

भारतवर्षके जैनतीर्थोंकी यात्राएँ, नए नए जिनमंदिरोंका निर्माण, पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ, व उन सुवर्ण अवसरों पर प्रवचनों आदि द्वारा असाधारण जिनधर्मप्रभाववक पूज्य गुरुदेवश्रीका लोकोत्तर प्रभावनायोग सारे भारतवर्षमें झलक उठा था। अरे! उसकी पावन किरणें विदेशों तकमें भी प्रसर गई। इस कारण सोनगढ़में पूज्य गुरुदेवश्रीका लाभ लेने हेतु लोगोंका रोजाना आना-जाना-रहना बढ़ गया। अतःस्वाध्यायमंदिरका प्रवचन कक्ष छोटा पड़ने लगा। अतः रोजाना पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन हेतु बड़े प्रवचन कक्षका अनुभव मुमुक्षुओंको लगने लगा।

ऐसेमें मलाडमें भगवान श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनमंदिर तथा घाटकोपर दिगम्बर जिनमंदिरकी प्रतिष्ठा महोत्सवके प्रसंग पर पूज्य गुरुदेवश्री पधारे थे। हर वर्षकी भांति इस वर्ष वि.सं. २०२५(ई.स. १९६९)में पूज्य गुरुदेवश्रीका ८०वाँ

जन्मोत्सव मुंबईमें भव्यतापूर्वक मनाया गया। तब सुवर्णपुरीमें बढ़ती मुमुक्षुओंकी संख्याको लक्ष्यमें रखकर ८०’-० उन्नत एक भव्य ‘परमागम मंदिर’का निर्माण करनेका निर्णय हुआ। भव्य समारोहपूर्वक मंगल शिलान्यास हुआ। जिसमें प्रवचन कक्ष (८०’× ६०’) बड़ा रखनेके साथ धवल संगमरमरके शिलापट पर भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव प्रणीत और पूज्य गुरुदेवश्रीको परम प्रिय ऐसे श्री समयसारादि परमागम (टीका सहित) उत्कीर्ण करवाके परमागम मंदिरकी विशाल दिवालें विभूषित करनेका आयोजन हुआ। भक्तोंको भावना हुई कि जिनकी दिव्यध्वनिमेंसे गुरुपरंपरासे प्रवाहित हुआ अध्यात्मोपदेश श्री कुंदकुंदाचार्यदेवने सूत्रबद्ध किया है उस परमागमके मूलकर्ता भगवान महावीरस्वामीका भव्य विशाल जिनबिंब भी इस परमागम मंदिरमें बिराजित करें।

अहा! भगवान सीमन्धरस्वामीके समवसरणमें जिनके साक्षात् दर्शन हुए थे, जिनके अध्यात्मोपदेशका अपनी साधनापरिणतिको अनंत अनंत उपकार हैं और जिनके प्रति उपकृतभावभीनी दासानुदासत्व परिणति अपने जीवनमें एकमेक हो गई है, ऐसे परमोपकारी महाऋषीश्वर भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवके परमागमोंको धवल शिलाओं पर टंकोत्कीर्ण होते देखकर पूज्य गुरुदेवश्री एवं भगवती माता बहिनश्री चंपाबहिनके आनंदकी तो क्या बात!

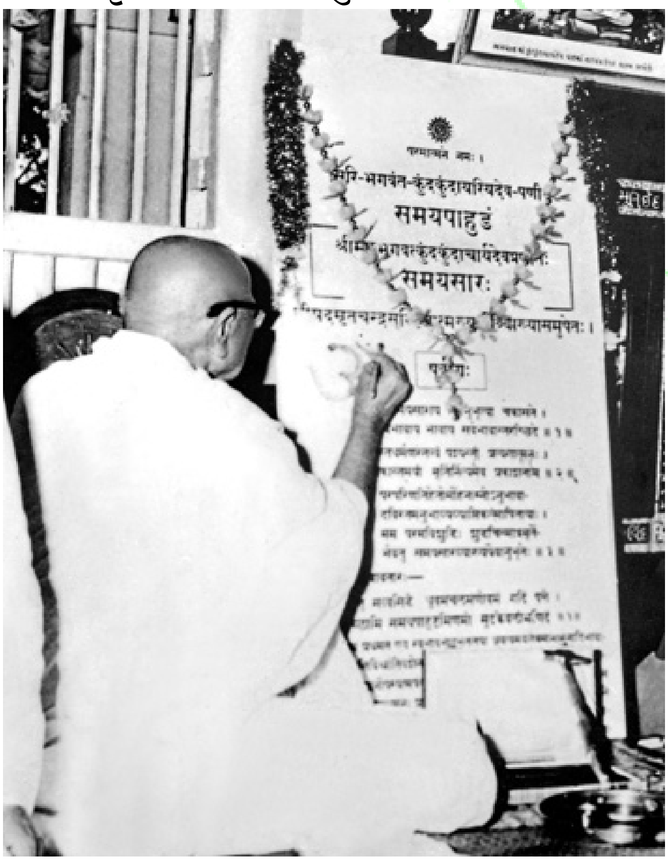

परमागम उत्कीर्ण करनेकी विधिका भी एक इतिहास है। ४४८ (४’×२’) के शिलापट पर समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकायसंग्रह, नियमसार (चारों शास्त्र टीका सहित) और अष्टपाहुड़की मूल गाथाएँ—इन पाँचों

परमागमोंका सुंदर सुशोभित रूपेण समावेश करनेकी गिनती बहुत सोच पूर्वक करना पड़े—ऐसा कठिन काम था। श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्टके वर्तमान प्रमुख श्री हसमुखभाई पी. वोरा इटलीसे अक्षर उत्कीर्ण करनेकी मशीन ट्रस्टकी ओरसे ले आये। मशीन आ जानेसे उत्कीर्ण करनेका काम मशीनके द्वारा किया गया। ४४८ शीलापटमेंसे २० शीलापट आदरणीय पंडितरत्न श्री हिम्मतभाई जे. शाहके निर्देशनमें हाथसे उत्कीर्ण किये गये थे। बाकीके ४२८ शीलापट वर्तमान प्रमुख श्री हसमुखभाई पी. वोराके निर्देशनमें मशीनसे उत्कीर्ण किये गये और बादमें स्प्रे मशीनसे लाल-हरा कलर भरा गया।

दूसरे मंदिरोंके एवं परमागम मंदिरके द्वार और वातायनोंके ऊपर जो महावीर आदि तीर्थंकर भगवंतो एवं सिद्धक्षेत्रोंके भव्य चित्र उत्कीर्ण हैं, वे पुराणपुरुषोंकी साधनाको, श्री कुंदकुंदाचार्य, अमृतचंद्राचार्य, पद्मप्रभमलधारि मुनियोंके विशाल मनोज्ञ भव्य चित्र तो दर्शकोंका मन हर लेते हैं।

प्रतिष्ठा महोत्सवकी तैयारीयाँ होने लगी। परम पूज्य भगवान श्री महावीर स्वामीके २५०० वर्षका निर्वाण महोत्सवके प्रतीकरूप वीर नि.सं. २५०० वि.सं. २०३० (ई.स. १९७४) फाल्गुन शुक्ला १३ के शुभ दिन प्रतिष्ठा करनेका मंगल मुहूर्त आया। भव्य विशाल निमंत्रणपत्रिका तैयार हो गई। आमंत्रण-पत्रिका लिखनेका मंगल समारंभ हुआ।

कंकु छांटी कंकोत्री मोकलो,
प्रभुजीना भक्तो आवे सहु भावे, मंगल गीत गावे
प्रतिष्ठा मूरत ढूंकडा;
रुडा रत्नेजड़ित प्रभुजीना मांडवा
हीरामोती माणेकना शणगार, घूघरीना घमकार,
मूरत आव्या ढुंकड़ा।

यह मधुर सूर गुंजने लग गए।

पंच कल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव बहुत ही आनंदपूर्वक और प्रभावकरूपसे मनाया गया। पंचकल्याणक महोत्सवके निमित्त पूज्य गुरुदेवश्रीकी अनुपम वाणीका अनुपम

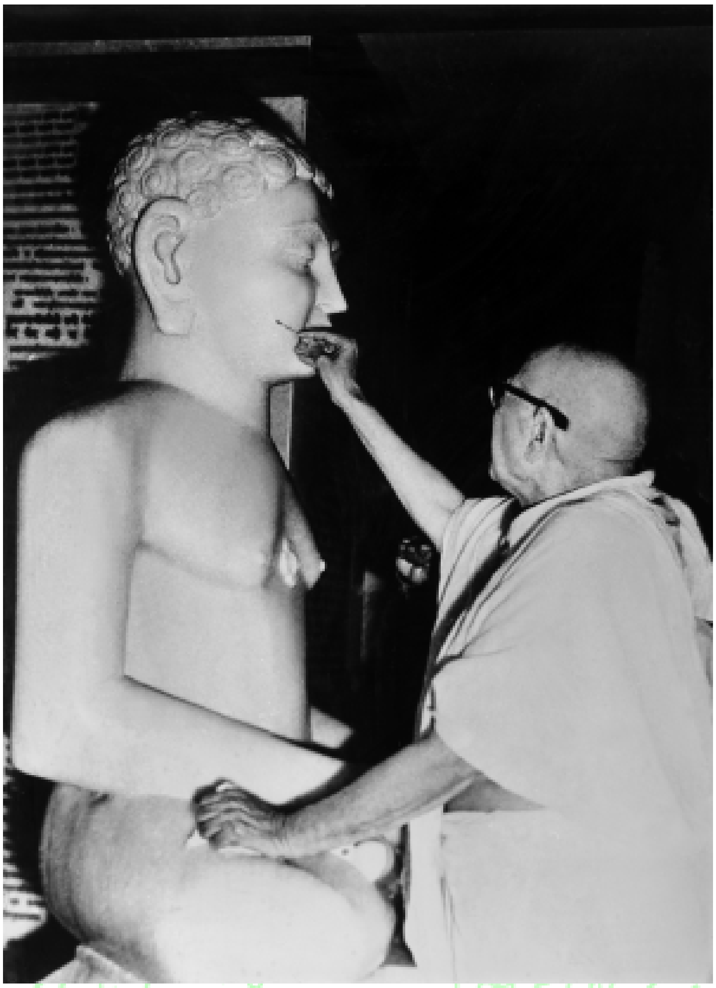

लाभ लनेके लिए अन्य स्थलोंसे २६०००से अधिक अतिथि आ थे। उस समय गुजरात राज्यमें राजकीय वातावरणमें कुछ गड़बड़ी होने पर भी पूज्य गुरुदेवश्रीके पुनित प्रतापसे उत्सव निर्विघ्नरूपसे बहुत ही आनंदोल्लास सह संपन्न हुआ। प्रत्येक मासकी शुक्ला १३ को परमागम मंदिरमें समूह-पूजाभक्तिका क्रम प्रारंभ हुआ। प्रशममूर्ति धन्यावतार पूज्य बहिनश्रीके हृदयमेंसे प्लावित महावीर भक्तिके मीठे सूर गुंजने लगे।

मारा मंदिरीयामां त्रिशलानंद पधारिया रे,
मारा हैडामांही हर्ष अति उभराय,
रुडा श्रुतमंदिरे वीरप्रभुजी पधारिया रे।

अनुक्रमणिका

श्री महावीर-कुंदकुंद परमागमंदिर ८
धर्म प्रभावक कहानगुरुदेव १३
श्री राजगृही सिद्धक्षेत्र पंचशैल (बिहार) ... १५
महावीरस्वामी भगवानकी पूर्वभवावली २६
सिंहको सम्यग्दर्शन २८
भगवान श्री महावीरका जीव पूर्व आठवें भवमें कनकोज्ज्वल नामक विद्याधर . २९
भगवान श्री महावीरका जीव-पूर्व चौथा भवमें (प्रियमित्र चक्रवर्ती) ३४
भगवान श्री महावीरका नाम 'सन्मति' ... ४२
भगवान श्री महावीरकी बालकपनेमें वीरता ४३
सती चन्दना द्वारा भगवान श्री महावीरको आहारदान ४५
वर्धमान मुनिराज स्मशानमें ध्यानस्थ...... ४६
भगवान श्री महावीरका ज्ञानकल्याणक ... ४८
श्री सिद्धवरकूट तीर्थक्षेत्र ४९
श्री कैलाश (अष्टापद) पर्वत ५४
श्री गिरनार सिद्धक्षेत्र (सौराष्ट्र) ६१
श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्रदेवका दीक्षा कल्याणक ६६
श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रका दीक्षा कल्याणक .. ७१
श्री पार्श्वनाथ भगवानका दीक्षा कल्याणक ७९
समस्त आचार्य परम्परा ९५
देवों द्वारा बीस विहरमान तीर्थंकरोंके दर्शन ९७
श्री अजितनाथ भगवानका दीक्षा कल्याणक................. १००
पावापुरी तीर्थक्षेत्र-जलमन्दिर १०६
श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र १०९
श्री सीमन्धर भगवानकी सभामें भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव व गुणवान राजकुमार ११५
श्री ऋषभदेव तीर्थंकर पूर्व पाँचवें भवमें श्रीधर नामक देव ११६
श्री ऋषभदेव भगवानका प्रथम पूर्वभव सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्र १२३
भगवान श्री ऋषभदेवको वैराग्य १२५
भगवान श्री ऋषभदेवका वनमें ध्यान .. १३३
नमि-विनमिकी श्री वृषभदेव भगवानके पास याचना १३७
श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र.................. १४०
श्री पावागढ़ सिद्धक्षेत्र १४३
श्री गजपंथा सिद्धक्षेत्र (महाराष्ट्र) १४६
श्री चंपापुरी-मंदारगिरि सिद्धक्षेत्र........ १४९
श्री सोनागिरिजी तीर्थक्षेत्र.............. १६१
श्री मांगी-तुंगीगिरि तीर्थक्षेत्र १६७
श्री मुक्तागिरि (मेंढागिरि) सिद्धक्षेत्र १७१
श्री चूलगिरि (बावनगजा) सिद्धक्षेत्र १७४
चौथे भवके पूर्व दृढ़ प्रतिज्ञक भगवान श्री नेमिनाथका जीव १७७
चौथे पूर्वभवमें समाधिमरण धारण करते भगवान श्री नेमिनाथका जीव १८०
भगवान श्री नेमिनाथका वैराग्य १८४
भगवान श्री नेमिनाथका अन्य राजाओंके साथ ध्यान १९१
भगवान श्री धर्मनाथका पूर्व दूसरा भव . १९४
श्री श्रेयांसनाथ भगवानका दीक्षाकल्याणक १९७

धर्म प्रभावक कहानगुरुदेव

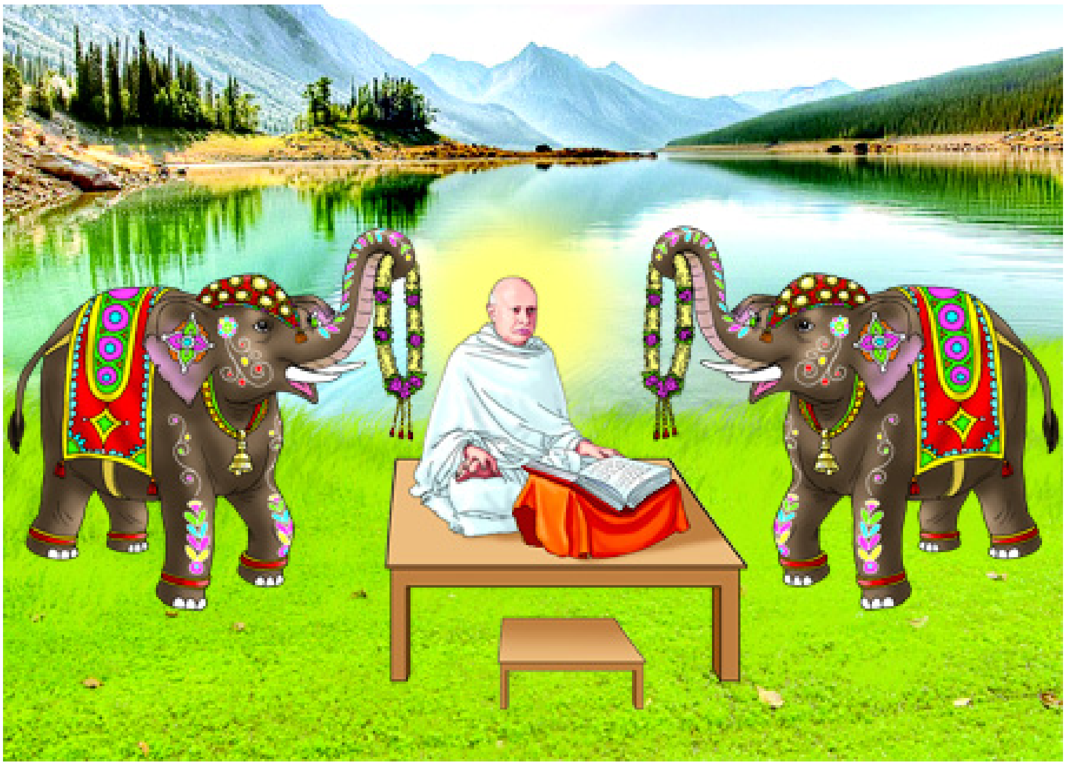

पूज्य गुरुदेवश्रीका दो गजराजों द्वारा स्वागत

भरतक्षेत्रकी इस चौबीसीके चरम तीर्थंकर भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ट एवम् भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेव आदि निर्ग्रंथ संतों द्वारा सुरक्षित, तर्कशुद्ध अबाधित सुविज्ञान–सिद्धान्तोंकी कसौटीमेंसे पार हो सके ऐसा, अध्यात्मरसप्रमुख वीतराग जैनधर्म कालदोषसे अध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक भूमिका परसे सरककर रूढ़िचुस्त सांप्रदायिकता और क्रियाकांडमें भटक गया था; ऐसे इस युगमें—ईसुकी बीसवीं शताब्दीमें—भारतवर्षके महान पुण्योदयसे जिस महापुरुषने अवतार लेकर आत्मसाधनाके अध्यात्मपंथको रोशन किया; सांप्रदायिकतारूप समूहमेंसे जिन्होंने लाखों जीवोंको शुद्ध

आत्मा समझनेकी जिज्ञासा जगाकर एक नये मुमुक्षु समाजका सर्जन किया; अपनी स्वानुभवसमृद्ध भेदज्ञानकलासे जिनशासनके सूक्ष्म रहस्योंकी स्पष्टताकर जिन्होंने 'तेरेमें सब कुछ भरा पड़ा है' ऐसा प्रकट करके प्रत्येक जीवकी शक्तिरूप प्रभुताका जगतमें ढिंढोरा पीटकर तदुपरांत ऐसे जीवकी शक्तिरूप प्रभुताका श्रद्धान–वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान–वह सम्यग्ज्ञान, उसरूप परिणति–वह सम्यक्चारित्र—इत्यादि प्रकारसे मोक्षमार्गके उपायका परमार्थ आश्रयकारण खोलकर—अनेक प्रकारसे भारतवर्षके धर्मपिपासु जीवों पर अनंत-अनंत उपकार किये हैं—ऐसे अध्यात्मयुगस्रष्टा परम कृपालु परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीने वि.सं. १९४६ (ई.स. १८९०)में अवतार लेकर भारतभूमिके ही नहीं, पर अखिल विश्वके हम सभी मुमुक्षु जीवों पर अनंत अनंत उपकार किये हैं।

ऐसे महान व्यक्तित्वके धारक परमकृपालु कहानगुरुदेवका पूर्ण जीवन परिचय संक्षेपमें 'जैन पौराणिक लघुकथा भाग-४' के पृष्ठ १४३ से १६२ पर दिया है। पाठक वहींसे इसे जानकर अपने आत्महितके लिये अपने हृदयमें उनकी महिमाको अवधारण करें। यदि विस्तारसे उनका कल्याणकारी मंगल जीवन जानना हो तो 'स्वर्णभानु भरते उदित रे...' पुस्तक देखकर अपना जीवन उनके चरणोंमें सर्व समर्पितभावसे (दासानुदासत्व भावसे) समर्पित करें। यहीं भावना....

(ऐसे कहानगुरुदेवको परमागममंदिरमें प्रवेश होते ही दो शुभ हस्ती द्वारा पुष्पमालसे अभिवादन करते जो दिखाया गया है वह 'हम सब प्रवचनकक्षमें चातकवत् प्रवचन सुनते अभिवादन करते हैं'–उसका यह प्रतिक है।')

श्री राजगृही सिद्धक्षेत्र पंचशैल (बिहार)

यह राजगृही सहस्त्रों वर्षोंसे विख्यात तीर्थक्षेत्र है।

यह ऐसा क्षेत्र है, जहाँ अनेक पौराणिक घटनाएँ घटी हैं, जिनमेंसे कतिपय यहाँ बताई गई हैं, जिससे इस तीर्थका महत्व पाठकको समझमें आ सके।

● यहाँ बीसवें तीर्थंकर भगवान श्री मुनिसुव्रतनाथके गर्भ-जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान ये चार कल्याणक मनाये गये थे। भगवानके जन्मके सम्बन्धमें 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रंथमें निम्नलिखित गाथायें प्राप्त होती है—

रायगिहे मुणिसुव्वयदेवो पउमासुमित्तराएहिं
अस्सजुदवारसीए सिदपक्खे सवणमे जादो॥४।५४५

अर्थात् भगवान श्री मुनिसुव्रतनाथ राजगृही नगरमें माता पद्मा और पिता सुमित्र राजासे आसोज शुक्ला द्वादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें अवतरित हुए।

● राजा सुमित्र राजगृहीके नरेश थे, हरिवंशके शिरोमणि थे और काश्यपगोत्री थे वे भी इस ही नगरमें हुए।

कुमार मुनिसुव्रत जब यौवन अवस्थाको प्राप्त हुए, तब पिताने तीन ज्ञानधारी अपने पुत्रका राज्याभिषेक किया। राज्य-शासन करते हुए मुनिसुव्रत राजाका बहुत समय व्यतीत हो गया। एक दिन बरसातकी मौसममें घनघोर घटाएँ घिर रही थी, तथा भीषण गुंजन कर रही थी। ऐसे मस्तीके आलममें 'याग' नामक हाथीने आहार बन्द कर दिया।

राजा मुनिसुव्रत तो अवधिज्ञानके द्वारा हाथीकी विचारधारा जानते थे। उन्होंने हाथीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताते हुए उसकी वर्तमान विचारधारा बतायी, किन्तु इससे स्वयं उनके ही मनपर एक अद्‌भुत प्रभाव पड़ा। उनके मनमें संसार, शरीर और इन्द्रिय-भोगोंके प्रति वैराग्य जागृत हो गया। उन्होंने युवराज विजयका राज्याभिषेक करके उसे राज्य सौंप दिया और स्वयं राजपाट और घर-बार छोड़कर देव-शिविकामें वनकी ओर चल दिये। वहाँ उन्होंने 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर केशलोंच किये और मुनिदीक्षा ले ली।

दीक्षा लेते ही भगवानको मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। इस प्रकार वे मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान चार ज्ञानके धारी हो गये। वे आत्मिक साधनामें लीन हो गये। एक बार वे राजगृही नगरमें पारणाके निमित्त पधारे। वृषभसेन राजाने उन्हें शुद्ध आहार दिया। इस तरह तपश्चरण करते हुए ग्यारह माह बीत गये, तब भगवान पुनः अपने दीक्षा वनमें पहुँचे। वहाँ वे एक चम्पक वृक्षके नीचे स्थित होकर दो दिन तक उत्तम ध्यानमें लीन रहे जिससे उनके घाति कर्मोंके बन्धन टूट गये और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इस प्रकार राजगृही नगरमें भगवान श्री मुनिसुव्रतनाथके चार कल्याणक हुए माने जाते हैं।

● यह क्षेत्र सिद्धक्षेत्र भी है। यहाँके पांच पहाड़ोंसे अनेक मुनियोंने मुक्ति प्राप्त की है। अतः सिद्धक्षेत्रोंमें इसकी गणना की जाती है।

इस सिद्धक्षेत्रके पौराणिक क्षेत्र होनेके कई प्रमाण हैं, वे कतिपय निम्नलिखित हैं।

* भगवान श्री महावीरकी प्रथम दिव्यध्वनि यहाँ खिरी होनेसे भगवान श्री महावीरके शासन-तीर्थ यहाँसे शुरु हुआ।

● एक बार हेमांगद देशमें राजपुर नगरके सुरमलय उद्यानमें भगवान श्री महावीर पधारे। राजपुरनरेश जीवन्धरकुमार भगवानका आगमन सुनकर बड़े हर्षित हुये। वे भगवानके दर्शन करनेके लिए उद्यानमें पहुँचे और उनका उपदेश सुनकर उनके मनमें वैराग्यकी भावना जागृत हो गयी। वे समवसरणसे राजमहलमें पहुँचे और महारानी गन्धर्वदत्ताके पुत्र वसुन्धरकुमारको विधिपूर्वक राज्य सौंप दिया। फिर सबसे अनुमति लेकर जीवन्धर नरेशने नन्दाढ्य आदि भाईयों और सम्बन्धियोंके साथ परिग्रहका त्याग करके

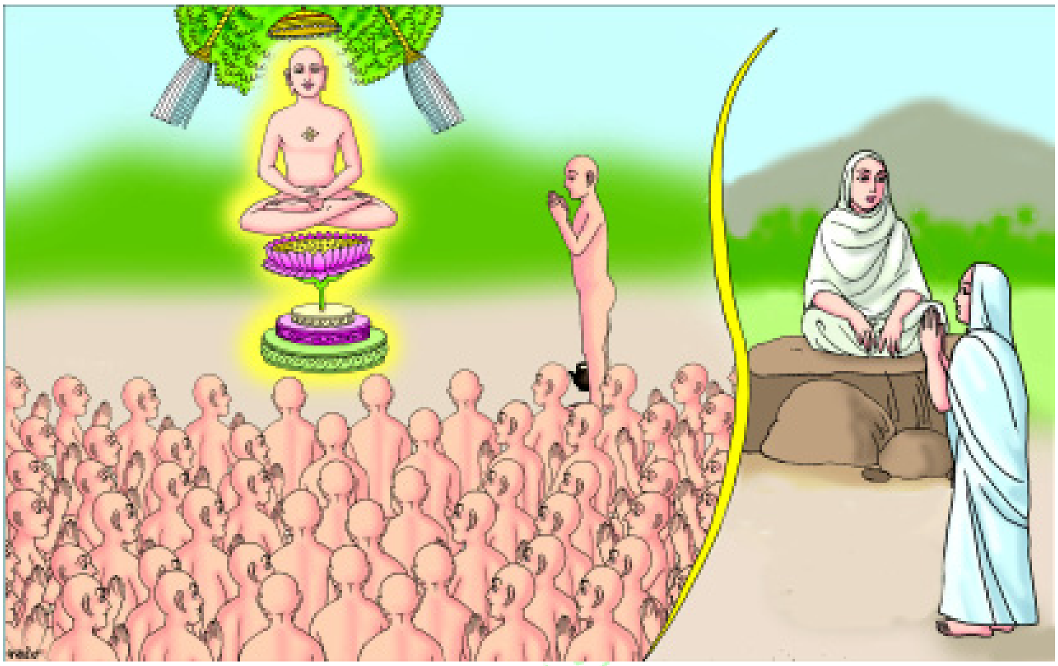

भगवान महावीरके समवसरणमें जीवन्धर आदि राजाकी दीक्षा

रानीका सती चंदनासे आर्यिका व्रत ग्रहण

मुनि-दीक्षा ले ली। जीवन्धर महाराजकी माता (सत्यन्धर महाराजकी महादेवी) विजया तथा अन्य रानियोंने महासती चन्दना आर्यिकाके समीप उत्कृष्ट संयम धारण कर लिया।

कालक्रमसे महावीर प्रभु विहार करते हुए राजगृही पधारे। मुनिराज जीवन्धर भी भगवानके संघके साथमें थे। इस समय वे श्रुतकेवली थे। उन्होंने घोर तप किया और चार घातिया कर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया। कुछ समय तक उन्होंने भगवानके साथ विहार किया।

जब भगवान श्री महावीर पावापुरीमें पहुँचे और वहाँ योग निरोध कर निर्वाण प्राप्त किया, उस समय केवली भगवान श्री जीवन्धरस्वामी राजगृहीके विपुलाचल पर विराजमान थे। उन्होंने वहीं पर योग निरोध कर शेष समस्त कर्मोंका नाश किया और अन्ततः अविनाशी सुखदायक मुक्ति प्राप्त की।

● एक दिन राजगृहके राजा श्रेणिक विपुलाचल पर विराजमान भगवान् महावीरके दर्शनोंके लिए गये। जाते समय उन्होंने एक वृक्षके नीचे शिलातल पर विराजमान धर्मरुचि नामक मुनिराजको देखा। राजा श्रेणिकने उनकी वन्दना की। किन्तु

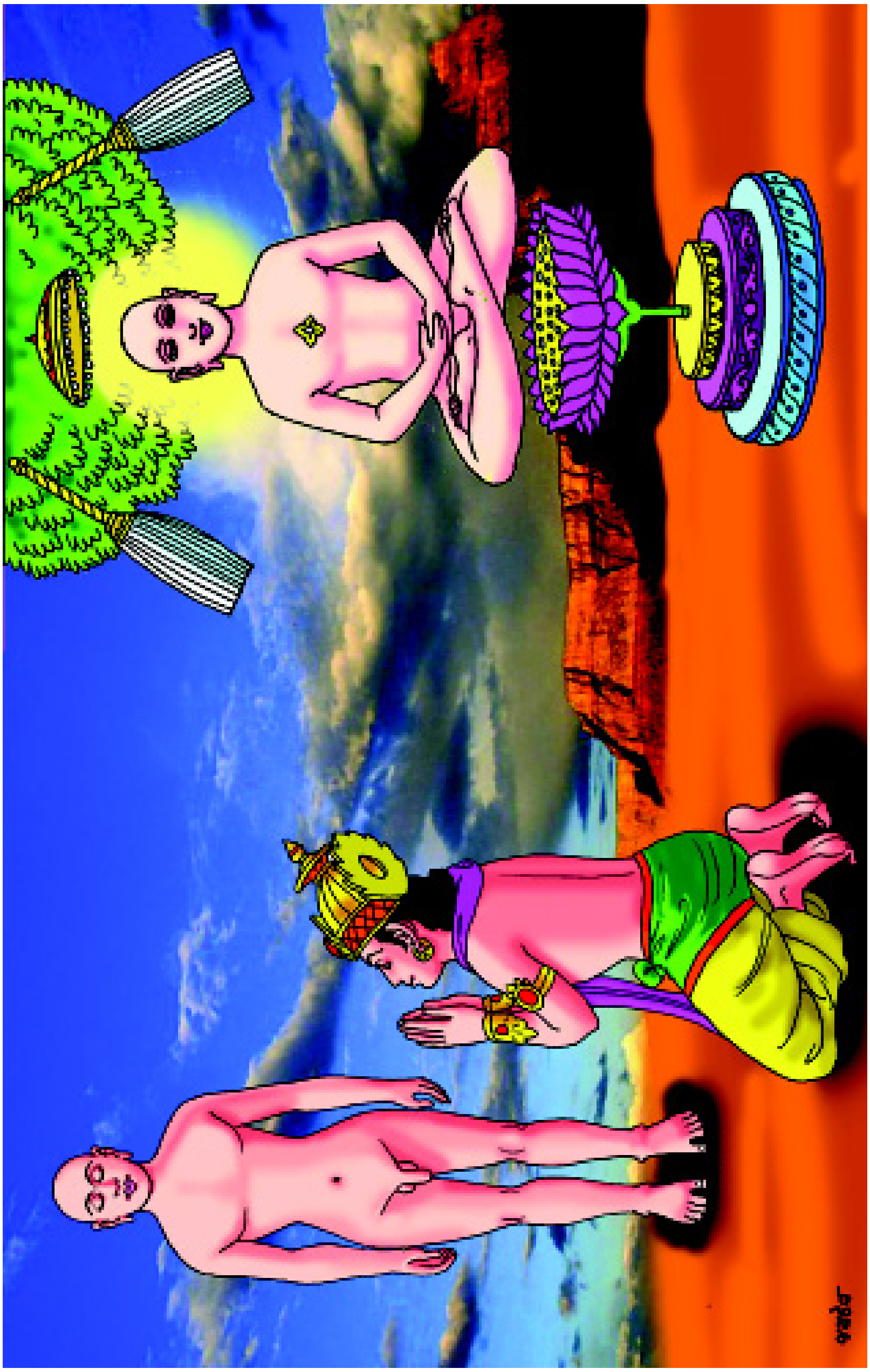

राजा श्रेणिक द्वारा मुनिराजका स्थितिकरणको प्राप्त होने पर केवलज्ञान

मुनिराजकी मुखमुद्रा कुछ विकृत हो रही थी, अतः श्रेणिकको कुछ शंका हुई। उन्होंने भगवानके पास आकर, दर्शन करके श्री गौतम गणधरसे पूछा–प्रभो! मैंने एक तपस्वी मुनिके अभी दर्शन किये थे, वे कौन हैं, मेरे मनमें यह जाननेकी जिज्ञासा है।

यह प्रश्न सुनकर श्री गौतम गणधरने बताया—चम्पा नगरीमें राजा श्वेतवाहन राज्य करते थे। भगवानका उपदेश सुनकर उन्हें वैराग्य हो गया और अपने पुत्रका राज्याभिषेक कर उन्होंने मुनिदीक्षा ले ली। उनके धर्म-प्रेमको देखकर लोगोंने उनका नाम धर्मरुचि रख दिया। आज ये मुनि एक माहके उपवासके बाद नगरमें भिक्षाके लिए गये थे। वहाँ तीन मनुष्य इनके पास आये। उनमें एक व्यक्ति जो लक्षण शास्त्रका जानकार था, बोला—''इन मुनिराजके लक्षण तो राजाओं जैसे हैं, किन्तु ये भिक्षाके लिए भटकते फिरते हैं।'' इसके उत्तरमें दूसरे व्यक्तिने कहा—''ये वास्तवमें राजा ही थे। किन्तु इन्हें वैराग्य हो गया, अतः ये राज्यका भार अपने बालक पुत्रको सौंपकर मुनि हो गये हैं।'' यह सुनकर तीसरे व्यक्तिने कहा—''इनके तपसे लाभ क्या है? इन्होंने लोकव्यवहारसे शून्य बालकको राज्य सौंप दिया है और स्वयं अपने स्वार्थमें लगे हुये हैं। बेचारे बालकको मन्त्री आदिने बन्धनोंमें जकड़ रखा है और राज्यको सब मिलकर लूट रहे हैं।'' तीसरे मनुष्यकी बात सुनकर उन मुनिराजके मनमें राग-द्वेषकी भयानक आंधी चल रही है। यदि अन्तमुहूर्त तक ऐसी स्थिति रही तो वे नरकायुका बन्ध करनेके योग्य हो जायेंगे। इसलिए हे राजन्! तुम जाकर उन मुनिराजको समझाओ कि वे पापध्यान छोड़ दें। उनका स्थितिकरण हो जायेगा तो उनका कल्याण हो जायेगा।

श्री गौतम गणधरके वचन सुनकर महाराज श्रेणिक उन मुनिराजके पास पहुँचे और उन्हें समुचित ढंगसे प्रतिबोध दिया। मुनिराज भी सम्हलकर आत्म-ध्यानमें लीन हो गये और शुक्लध्यान द्वारा घातिया कर्मोंका विनाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अन्तमें निर्वाण प्राप्त किया।

● राजगृही नगरमें सेठ अर्हदासके पुत्र जम्बूकुमारने सुधर्मास्वामीसे विपुलाचल पर्वत पर दीक्षा ली। उसी पर्वत पर सुधर्मास्वामीने केवलज्ञान प्राप्त किया व जम्बूस्वामीने भी यहाँ पर केवलज्ञान प्राप्त किया। (विशेष कथा जानकारी हेतु पढ़ें 'भगवान महावीरस्वामीकी आचार्य परम्परा' पृ. २२)

● उज्ञयिनी नगरीका राजा धृतिषेण था। उनकी रानीका नाम अमलयती था। उन दोनोंके चण्डप्रज्ञ नामक पुत्र था। राजाने चण्डप्रज्ञको शिक्षा देनेके लिए विन्यातटवासी कालसन्दीव नामक विद्वानको नियुक्त कर दिया, जो अठारह भाषाओंका ज्ञाता था। गुरुने अपने राजकुमार शिष्यको सभी भाषाएँ सिखायीं। शिष्यने सत्रह लिपियाँ तो सीख लीं, किन्तु यवनलिपि नहीं सीख सका। एक दिन गुरुको क्रोध आ गया। उन्होंने चण्डप्रज्ञके सिरमें लात मार दी। इस पर राजकुमारको क्रोध आ गया, बोला—''तुमने मेरे सिरमें लात मारी है। राजा बनने पर मैं कुठारसे तुम्हारी टांगे काटूंगा।'' तब खूब शांतिपूर्वक गुरु बोले—''कुमार! राजा बनने पर तू मेरे पैरका पट्टबन्धन करेगा।''

कुछ समय बाद कालसन्दीवने मुनि श्रुतसागरसे मुनि-दीक्षा ले ली। चण्डप्रज्ञ राजा बन गया। एक बार एक यवन नरेशने राजा चण्डप्रज्ञको यवनलिपिमें पत्र लिखा। किन्तु उज्ञयिनीमें यवनलिपि समझनेवाला कोई नहीं था। तब राजाने उस पत्रको पढ़ा और उसका अर्थ समझ लिया। राजाने तब आज्ञा दी कि ''तुम लोग विन्यातटपर जाकर मेरे गुरु कालसन्दीवको ले आओ।'' दूत गये और अनुनय-विनय करके कालसन्दीव मुनिको ले आये। जब कालसन्दीव आये, तब राजाने भक्तिवश गुरुके चरणों पर कुंकुम चर्ची, उनके दोनों चरणों पर गाजे-बाजे और वैभवके साथ अष्टापद-मय पट्ट बाँधा, सुगन्धित पुष्प चढ़ाये उनकी पूजा की। फिर मन, वचन, कायसे उनके चरणोंमें नमोऽस्तु करके बोले—''भगवन! मुझे दीक्षा देनेकी कृपा करें।'' तब गुरुने उसे मुनि-दीक्षा दी और उसका नाम श्वेतसन्दीव रख दिया।

एक बार वे गुरु अपने शिष्यके साथ विहार करते हुए राजगृही पहुँचे। उस समय विपुलाचल पर भगवान श्री महावीरका समवसरण आया हुआ था। गुरु और शिष्य भगवानके दर्शन करनेके लिए विपुलाचल पर पहुँचे। समवसरणके बाहर राजा श्रेणिक मिल गये। वे श्वेतसन्दीवको देखकर बोले—''नाथ! आपने किनसे दीक्षा ली है?'' श्वेतसन्दीव बोले—''राजन्! मेरे गुरु तो श्री महावीर भगवान हैं। उनके सिवाय और कोई मेरा गुरु कैसे बन सकता है।'' इतना कहते ही उनका कुन्द जैसा धवल शरीर जले हुए अंगारे–जैसा हो गया। यह देखकर श्वेतसन्दीवको बड़ा विस्मय हुआ। वे गौतम गणधरके पास गये। उन्होंने कहा—''गुरु-निन्हवके महान् दोषके कारण

(१) उज्जवल वर्ण मुनि श्वेतसंदीवसे राजा श्रेणिकका वार्तालाप (२) कृष्णवर्ण श्वेतसंदीव मुनि गौतम गणधरसे पूछते है (३) कृष्णवर्ण श्वेतसंदीव मुनिका गुरुके पास प्रायश्चित और मोक्ष प्राप्ति

तुम्हारा वर्ण कृष्ण हो गया है। तुम जाकर गुरुसे प्रायश्चित्त लो।'' वे गुरुके पास गये। उन्होंने शुद्ध हृदयसे प्रायश्चित्त लिया और घोर तप किया। फलतः श्वेतसन्दीवको केवलज्ञान हो गया। अन्तमें उन्होंने निर्वाणपद प्राप्त किया।

● मगधमें सुप्रतिष्ठपुर नगर था। नगरके बाहर उद्यानमें सागरसेन मुनि ठहरे हुए थे। एक श्याल उन्हें खानेके लिए आया। मुनिने निकटभव्य जानकर उसे उपदेश दिया और उससे कहा—''तू रात्रि-भोजन त्यागका नियम ले ले। तेरा कल्याण हो जायेगा।'' श्यालने नियम ले लिया। एक दिनकी बात है। गर्मीके दिन थे। श्यालको प्यास लगी। एक बाबड़ीमें वह पानी पीने उतरा किन्तु वहाँ अन्धेरा देखकर उसने समझा कि रात हो गई। वह लौट आया। बाहर प्रकाश देखा तो वह फिर नीचे उतरा और रात समझकर वापस आ गया। इसी तरह करते-करते उसके प्राण निकल गये।

(१) ध्यानस्थ मुनिराज पर लोमड़ीका लपकना
(२) मुनिराजके उपदेशसे शान्त होती लोमडी

वह मरकर उसी नगरमें धनमित्र सेठके घरमें पुत्र हुआ। उसका प्रीतिंकर नाम रखा गया। सेठके घर धनकी कोई कमी नहीं थी। बड़ा होने पर उसने भी खूब धन कमाया। एक दिन मुनिके उपदेशसे उसे वैराग्य हो गया। वह विपुलाचल पर भगवान श्री महावीरकी शरणमें पहुँचा और दीक्षा ले ली। फिर उन्होंने घोर तपस्या की और घातिया कर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

अन्तमें शेष अघातिया कर्मोंका नाश कर परमपद निर्वाण प्राप्त किया।

● पाटलीपुत्र नगरका भूपाल विशाख था, विशाखा उसकी रानी थी और वैशाख नामक एक पुत्र था। वैशाख जब बड़ा हो गया तो उसका विवाह कनकश्री राजकुमारीके साथ हो गया। एक दिन मुनिदत्त मुनि आहारके लिए राजमहलमें आये। वैशाखने नवधा भक्तिके साथ उनका प्रतिग्रह किया और आहार दिया। आहार करनेके बाद मुनि जाने लगे तो राजकुमार भी अपनी पत्नीसे पूछकर उनके साथ चल दिया। लेकिन वह लौटकर नहीं आया, उसने मुनिदीक्षा ले ली। कनकश्री अपने पतिके वियोगमें तड़पती रही। वह इसी वेदनामें मर गयी और मरकर व्यन्तरी हुई।

मुनि वैशाख, मासोपवास करते थे। जब वे पारणाके लिए जाते थे तो व्यन्तरी

मुनिराज पर व्यंतरका उपसर्ग देख चेलना द्वारा वस्त्रकी आड करनेसे निर्विघ्न आहार देना

पूर्वजन्मके क्रोधके कारण आहारके समय उनपर बहुत प्रकारसे उपसर्ग करती थी। एक बार विहार करते हुए वे राजगृह नगर पधारे और पारणाके लिए निकले। रानी चेलनाने

उनको पडगाहा और जब वे आहार लेने लगे, तभी व्यन्तरीने उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। रानीने उपसर्ग समझकर वस्त्रकी आड कर दी और निरन्तराय आहार हुआ।

मुनिराज वैशाख, विपुलगिरि पर जाकर ध्यानारूढ हो गये और घातिकर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया। पश्चात् राजगृहीसे उन्होंने शेष कर्मोंका नाश कर मुक्ति प्राप्त की।

● राजगृही नगरमें जिनदत्त नामक शेठ थे वे ध्यानसे प्राप्त आकाशगामिनी विद्या द्वारा आकाशमार्गसे मेरु पर्वतादि स्थित अकृत्रिम जिनालयके दर्शन-पूजन करने जाते थे। उस अनुसार अंजनचोर भी वहाँ जा सका। (इस अंजनचोरकी कथा हेतु देखिये 'जैन पौराणिक कथा भाग-४ पृष्ठ ६८)

● भगवान महावीरके ११ गणधरमेंसे ९ उनके जीवनकालमें व [1]इन्द्रभूति व सुधर्मास्वामी भगवान महावीरके पश्चात् इसी राजगृहीसे मुक्तिको प्राप्त हुए।

● इसी नगरीके पांच शैलमेंसे पाँडुक पर्वत परसे गन्धमादन मुनि मोक्ष गये।

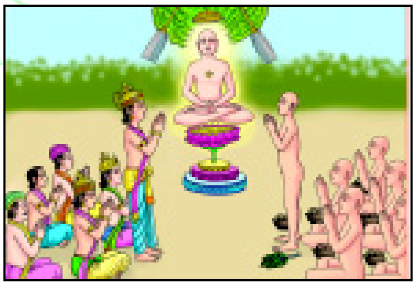

● इसी नगरीके विपुलाचल पर्वत पर गौतम अपने भाईयों व पाँचसों शिष्यों सहित भगवान श्री महावीरस्वामीके प्रमुख गणधर बने व अन्य ग्यारह गणधर भी यहीं बने। (इस सम्बन्धमें विशेष जाननेके लिए देखिये भगवान श्री महावीरकी आचार्य परम्परा पृष्ठ १७)

* सुकौशलमुनि (कथाके लिए देखिये जैन पौराणिक कथा भाग-३ पृष्ठ ७०) के उपसर्गकी घटना भी यहाँ बताई जाती है।

---

१. पाठभेद : कहीं-कहीं गुणावासे इन्द्रभूति मुक्त हुए ऐसा आता है। कहीँ विपुलाचलसे मुक्ति प्राप्तका उल्लेख आता है।

* भगवान श्री महावीरके दर्शन हेतु जाता हुआ मेंढक हाथीके पाँव तले दबकर मरकर स्वर्गमें जाता है। वह घटना भी इसी राजगृही नगरकी है।

* चिलातीपुत्र मुनि पर उपसर्ग की घटना भी वैभारगिरि पर घटी थी।

* चेलनाके पुत्र वारिषेणकी मुक्ति व उनके शिष्य पुष्पडालकी मुक्ति भी यहाँसे हुई थी।

* राजा श्रेणिककी राजधानी यही नगरी थी। यहीं चेलणा रानीने कई जिनमंदिर बनवाये थे। यशोधर मुनिराजने श्रेणिक द्वारा किया गया उपसर्ग भी यहीं विजय किया था। (विशेषके लिये देखें जैन पौराणिक कथा भाग-३ पृष्ठ ८२)

उक्त भांति इस राजगृही नगरीमें कई पौराणिक घटनाएँ घटी हैं। अतः यह एक पौराणिक तीर्थक्षेत्र व सिद्धक्षेत्र है। तदुपरांत जैनोंकी श्रद्धाका केन्द्र होनेसे अति महत्वपूर्ण दर्शनीय यात्रास्थल भी है।

इस नगरीका प्राचीन नाम गिरिव्रज था। बोलचालकी भाषामें पहाड़ोंके नाम विपुलाचल, रत्नगिरि, उदयगिरि, स्वर्णगिरि, वैभारगिरि हैं। तदुपरांत इसके क्षितिप्रतिष्ठ, वसुमति, चणकपुर, कुशाग्रपुर, पंचशैल नाम भी इतिहासमें हैं। पूर्वमें अन्य राजाओंके आतंकसे यह नगरी घिरी हुई थी। फिर श्रेणिक(बिम्बसार)के शासनमें यह नगरी मुक्त होकर नई राजगृही नगरीके रूपमें बसी है। बौद्धग्रन्थोंमें भी इस राजगृहीनगरीके बारेमें बहुत कुछ लिखा है। श्रेणिक राजाके जानेके कुछ वर्षों पश्चात् तक राजगृहीनगरीकी गौरवगाथा बनी रही थी।

यहाँ जो पाँच पर्वत हैं, उसके विविध नाम अलग-अलग मतोंमें अलग-अलग माने जाते हैं, पर जैनमें ऋषभगिरि, वैभार, विपुलगिरि, छिन्न व पाण्डु ऐसे नाम षट्खंडागममें हैं।

पूर्वदिशामें चौकोर आकारवाला ऋषभगिरि, दक्षिणदिशामें वैभार, नैऋत्य दिशामें विपुलाचल त्रिकोण आकारवाले तथा पश्चिम, वायव्य और सौम्य दिशामें धनुष आकारका छिन्न पर्वत है। ऐशान दिशामें पाण्डु नामक पर्वत है। ये सब पर्वत कुशके अग्रभागसे ढके हुए हैं।

नगरके बीचमें सरस्वती नदी है व दक्षिणमें बाणगंगा नदी है।

इस नगरीका अब राजनैतिक कोई महत्व नहीं रहा, पर धार्मिक महत्व अतीव है, जो पुराणोंके अनुसार संक्षिप्तमें दिखाया गया है।

यहाँ तलहटीमें दो जिनमन्दिर हैं। जो स्टेशनसे दो फर्लांग पर है। धर्मशालासे थोड़े दूर विपुलाचल पर्वत है। रास्तेमें छः गरम पानीके कुण्ड हैं। कहा जाता है कि पूर्वमें एक प्राचीन बहुत बड़ी श्री महावीर भगवानकी दिगम्बर प्रतिमा थी, जो बारह योजन दूरीसे चारों ओर दिखाई देती थी। अभी यहाँ भगवान श्री महावीरके समवसरणकी रचना है। दूसरे रत्नगिरि पर्वत पर भी दिगम्बर जैन मंदिर हैं। तीसरे उदयगिरि पर्वत पर भी दिगम्बर जिनमंदिर हैं।

मनियार मठ—यह प्राचीन जिनमंदिरका नाम है। यहीं पासमें श्रेणिक राजाका बन्दीगृह है।

चौथा पर्वत श्रवणगिरि या सोनागिरि पर तीन दिगम्बर मन्दिर हैं। इस पर्वतके दक्षिणी ढलान पर एक पश्चिम व एक पूर्वमें दो गुफाएँ हैं। जहाँसे वरदत्त आचार्य मुक्तिको प्राप्त हुए हैं। इन गुफाओंमें जिनेन्द्र प्रतिमा भी हैं। पाँचवाँ पर्वत वैभारगिरि है। यहाँ सप्तवर्णी अकृत्रिम गुफा है। पहाड़की पूर्वी ढलान पर जरासंधकी बैठक है। पर्वतसे उतरने पर जापानी मन्दिरके सामने सड़कसे बाईं ओर भगवान श्री महावीरके प्राचीन चरण हैं।

यहाँ पर कई ऐतिहासिक दर्शनीय स्थल भी हैं।

इस भांति यह सिद्धक्षेत्र अति दर्शनीय–पूजनीय है।

इस तीर्थक्षेत्रकी पूज्य गुरुदेवश्रीने दो बार वि.सं. २०१३ (ई.स. १९५७) व वि.सं.२०२३ (ई.स. १९६७)में ससंघ यात्रा की थी। उसके संस्मरण 'तीर्थयात्रा' पुस्तकमेंसे देखें।

महावीरस्वामी भगवानकी [1]पूर्वभवावली

पूर्वभव नं. भव

३२ अनादिसे भवोभव भटकते-भटकते महावीर भगवानका जीव पुरुरवा भील होता है। (इस भवमें उसने सागरसेन मुनिकी बहुत भावसे भक्ति की, यहाँ १२ व्रतोंका पालन किया।)

३१ सौधर्म स्वर्गमें महाऋद्धिधारी देव (इस भवमें वह सर्वदा भगवानकी पूजा आदि करता था।)

३० भरत चक्रवर्तीका पुत्र मरीचिकुमार (इस भवमें उसने मिथ्यामतकी पुष्टि व मिथ्या तप किया)

२९ ब्रह्म स्वर्गमें देव

२८ जटिल नामक ब्राह्मण पुत्र

२७ सौधर्म स्वर्गमें देव

२६ पुष्यमित्र ब्राह्मण पुत्र

२५ सौधर्म स्वर्गमें देव

२४ अग्निसह ब्राह्मण पुत्र

२३ सात सागरकी आयुवाला देव

२२ अग्निमित्र ब्राह्मण पुत्र

२१ माहेन्द्र स्वर्गमें देव

२० भारद्वाज ब्राह्मण जगतप्रसिद्ध पुत्र

१९ माहेन्द्र स्वर्गमें देव

पूर्वभव नं. भव

.... अनेकों त्रस स्थावर योनियोंमें असंख्यातों वर्ष भ्रमण करता हुआ

१८ स्थावर नामक ब्राह्मण पुत्र

१७ माहेन्द्र स्वर्गमें देव

१६ विश्वनंदी नामक प्रसिद्ध पराक्रमी राजपुत्र

१५ महाशुक्र स्वर्गमें देव

१४ त्रिपृष्ठ नारायण

१३ सातवीं नरकका नारकी

१२ सिंह

११ प्रथम नरकका नारकी

१० सिंह (इस भवमें निर्मल सम्यक्त्वकी प्राप्ति)

९ सिंहकेतु देव

८ कनकोज्ज्वल नामक विद्याधर

७ सप्तम स्वर्गमें देव

६ हरिषेण नामक राजपुत्र

५ महाशुक्र स्वर्गमें देव

४ प्रियमित्र नामक राजपुत्र

३ सहस्रार स्वर्गमें सूर्यप्रभ नामक देव

२ अच्युत स्वर्गमें अहमिन्द्र

१ इस वर्तमान चौबीसीके अंतिम २४वें तीर्थंकर शासननायक भगवान महावीर

---

१. अन्य-अन्य शास्त्रोंमें ये नाम कहीं-कहीं कुछ-कुछ फर्क लिये हैं। यहाँ ये नाम उत्तरपुराण आधारित लिये गये हैं।

सिंहको सम्यग्दर्शन

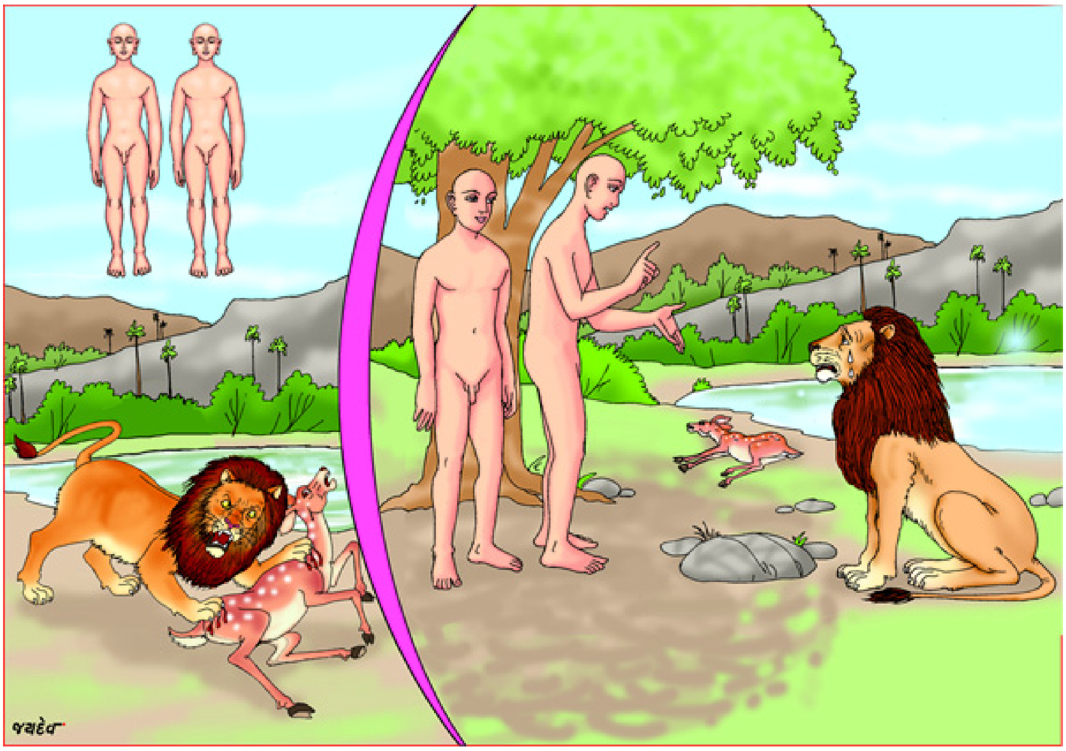

भगवान महावीरका जीव (पूर्व दसवें भवमें) सिंहको शिकार करता हुआ देख दो चारण मुनिका आगमन और उनका उपदेश सुनता हुआ सिंह

भगवान महावीरका जीव पूर्व दसवें भवमें सिंह पर्यायमें था। उस समय दो चारणऋद्धिधारी मुनिराज आकाशसे उतरकर उसे भाववाही उपदेश देते हैं और कहते हैं कि 'अरे सिंह ! तू दसवें भवमें तीर्थंकर होनेवाला है।' सिंहको जातिस्मरण होता है, आँखोंसे अश्रुधारा बहती है और वह सम्यग्दर्शन पाकर निराहारव्रत अंगीकार कर वैमानिक देव होता है।

भगवान श्री महावीरका जीव
पूर्व आठवें भवमें कनकोज्ज्वल नामक विद्याधर

भगवान श्री महावीरका जीव पूर्व दसवें सिंहके भवमें सम्यक्त्व सह संयमासंयम धारण करके सिंहकेतु नामक देव (९वाँ भव) हुआ। वहाँ उपपाद शैया पर अल्प कालमें ही नवयौवन मण्डित सम्पूर्ण शरीरको प्राप्त कर और अवधिज्ञानसे पूर्व भवमें पालन किये गये व्रत-जनित फलको और प्रशंसनीय धर्मके माहात्म्यको जानकर, उस देवने धर्ममें अपनी बुद्धिको और भी दृढ़ किया।

तत्पश्चात् चैत्यालयमें जाकर उन्होंने अर्हन्तोंकी मणिमयी मूर्तियोंका दिव्य अष्टविध द्रव्योंसे भक्तिके साथ महापूजन किया। पुनः सर्व अभ्युदयकी सिद्धिके लिए उन्होंने मनुष्यलोक और नन्दीश्वर आदि द्वीपोंमें स्थित श्री जिनेन्द्र प्रतिमाओंका, श्री जिनेन्द्र भगवानका तथा गणधरादि मुनिन्द्रोंका पूजन करके, प्रणाम करके और हर्षके साथ उनसे

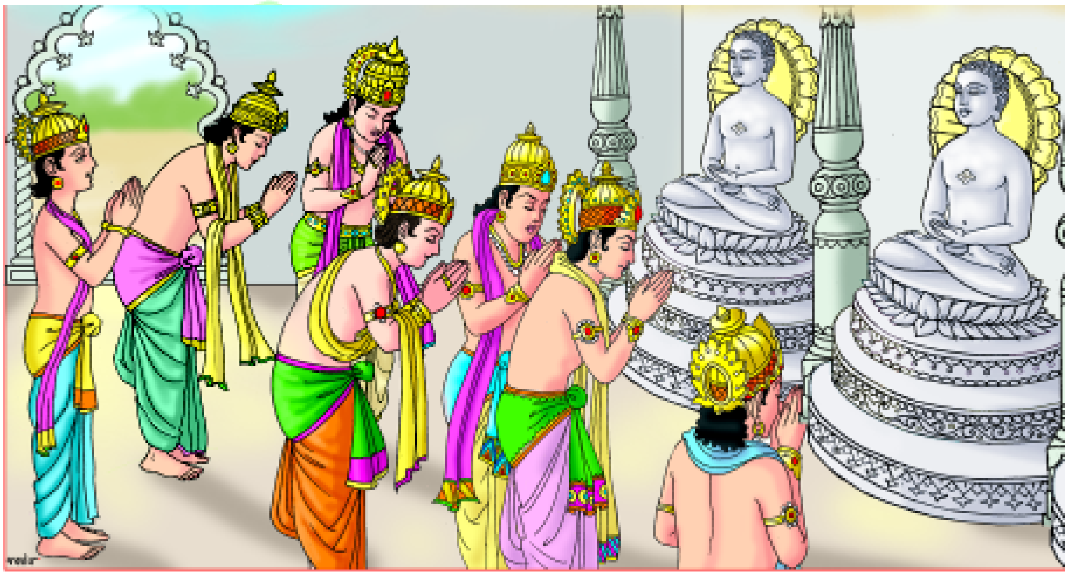

महावीरस्वामी पूर्व ९में सिंहकेतु देवके भवमें शाश्वत जिनमंदिरोमें वंदन करते हुए

जीवादि सुतत्त्वोंका उपदेश सुनकर, अनेक प्रकारसे पुण्यका उपार्जन कर, वापस अपने स्थान पर आकर, अपने पुण्यसे उत्पन्न हुई महादेवियोंका और विमान आदि सम्बन्धी सर्व लक्ष्मीका स्वीकार किया। इस प्रकार वे अपनी उत्तम चेष्टासे जिनप्रतिमापूजन, धर्मश्रवण आदि द्वारा नाना प्रकारके पुण्यका उपार्जन करते हुए स्वर्गमें समय बिताने लगे।

उनका दिव्य शरीर सात हाथ उन्नत था, उनके नेत्र-निमेष-उन्मेष आदिसे रहित थे, वे पहली रत्नप्रभा पृथ्वीके अन्ततक अवधिज्ञान और तत्प्रमाण विक्रिया करनेकी शक्तिसे युक्त थे, दो हजार वर्ष बीतने पर मनसे अमृत-आहार करते थे, तीस दिन बीतने पर कुछ थोड़ीसी श्वास लेते थे और दिव्याङ्गनाओंके रूप, विलास और नृत्यको देखते हुए, देव-भवन, उद्यान और पर्वतादि पर अपनी देवियोंके साथ क्रीड़ा करते, असंख्य द्वीपों और पर्वतों पर स्वयं अपनी इच्छानुसार विभूतिके साथ विहार करते रहते थे। वे सर्व दुःखोंसे रहित और प्रस्वेद, रक्त-मांसादि सर्व धातुओंसे रहित शरीरवाले, समस्त सुखरूप अमृत-सागरमें निमग्न रहते थे। उनकी आयु दो सागरोपमकी थी। इस प्रकार पूर्व आचरित चारित्रसे उपार्जित नाना प्रकारके भोगोंको भोगते हुए वे बीतते हुए कालको लक्ष्यमें न लेते हुए आनन्दसे स्वर्गमें रहने लगे।

अथान्तर पूर्वधातकीखण्डके, पूर्व विदेहमें मंगलावती नामका मंगलकारक देश है, उसके मध्यमें पचास योजन ऊँचा विजयार्ध पर्वत है, वह कूट, जिनालय, वनश्रेणी और नगर आदिसे शोभायमान है। उस पर्वतकी उत्तरश्रेणीमें कनकप्रभ नामका एक नगर है, जो सुवर्णमय प्राकार, प्रतोली और जिनालयोंसे शोभित है। उसका स्वामी कनकपुंख नामका एक विद्यानरेश था। उसकी सुवर्णके समान उज्ज्वल देहकान्तिको धारण करनेवाली कनकमाला नामकी प्रिया थी। उन दोनोंके सिंहकेतु नामकदेव सौधर्म (भगवान श्री महावीरका जीव) स्वर्गसे च्युत होकर, पुण्यसे स्वर्णकान्तिके धारक पूर्व आठवें भवमें कनकोज्ज्वल नामके पुत्र हुए।

उनके जन्म होने पर उनके पिताने सर्व-प्रथम जिनालयमें पंचकल्याणकोंके भोक्ता तीर्थंकरदेवोंका कल्याण-वर्धक महाभिषेकपूर्वक महापूजन करके, उत्तम दान-मानादिसे बन्धुओं, दीनजनों और बन्दीगणोंको तृप्त कर गीत, नृत्य, वादित्रादिसे उनका जन्म-

महोत्सव किया। सकल जनोंको प्रिय वे सुंदर बाल सुलभ चेष्टा द्वारा अपने योग्य दुग्ध-पान, अन्नाहार और वस्त्राभूषणादिको प्राप्त कर, बालचन्द्रके समान क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होकर, अनेक शास्त्रोंको पढ़कर और समस्त कलाएँ सीखकर, रूप, लावण्य और कान्ति आदि गुणोंके द्वारा, देवके समान शोभाको प्राप्त हुए।

तदनन्तर यौवन अवस्थामें उनके पिताने गृहस्थ धर्मकी प्राप्तिके लिए हर्षसे विधिपूर्वक कनकवती नामकी कन्याके साथ उनका विवाह कर दिया। किसी एक दिन वे विद्याधर कनकोज्वल अपनी भार्याके साथ क्रीड़ा करने और जिनप्रतिमाओंका पूजन-वन्दन करनेके लिए महामेरु पर्वत पर गये। वहाँ पर अवधिज्ञानरूप नेत्रके धारक, आकाशगामी आदि अनेक ऋद्धियोंसे भूषित उत्तम मुनिराजको देखकर, उन्होंने तीन प्रदक्षिणाएँ देकर, मस्तकसे नमस्कार करके, धर्म-प्राप्तिके लिए धर्मके इच्छुक होकर धर्मका स्वरूप पूछा—हे भगवन, मुझे धर्मका स्वरूप कहिए, जिससे कि शिवपदकी प्राप्ति हो।

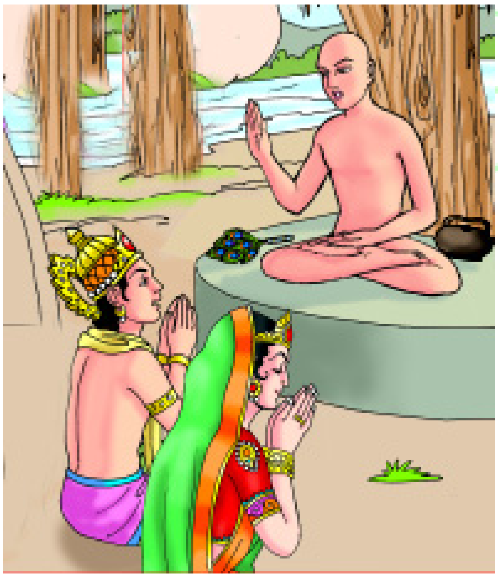

राजा-रानीका मुनिराजके पास उपदेश सुनना

उनके वचन सुनकर योगीश्वरने अभीष्ट वचन इस प्रकार कहे—हे चतुर, मैं धर्मका स्वरूप कहता हूँ, तू एकाग्र चित्तसे सुन। जो संसारसमुद्र पतित भव्योंका उद्धार करके, तीन जगतके राज्य स्वरूप शिवालयमें पहुँचाता है, उसे परमार्थसे धर्म जानो। जिसके द्वारा इस लोकमें प्राणियोंके सेंकड़ों मनोरथोंकी सफलतारूप अभ्युदय प्राप्त होता है, पाप-जनित दुःख विलीन हो जाते हैं और तीन लोकमें कीर्ति फैलती है, तथा परलोकमें जिसके द्वारा देवेन्द्र आदिकी विभूतियाँ, सर्वार्थसिद्धि, तीर्थंकर, चक्रवर्ती और बलदेव आदि पद प्राप्त होते हैं, उसे तुम सुखोंका भण्डार केवलि-भाषित धर्म जानो। वह धर्म निज आत्माके श्रद्धा-ज्ञान आचरणमयी अहिंसा लक्षणवाला है, साररूप है और निष्पाप है। इसके अतिरिक्त और कोई धर्म सत्य नहीं है।

वह धर्म अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रहत्यागरूप है, ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण और उत्सर्गसमितिरूप है तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्तिस्वरूप है। ज्ञानी जन रागसे दूर रहते हुए इन तेरह प्रकारोंसे उस धर्मकी साधना करते हैं। तथा सर्व मूल गुणोंसे, क्षमादि दश लक्षणोंसे, मोह और इन्द्रिय-चोरोंको जीतकर वह परम धर्म प्राप्त किया जाता है। हे धीमन्! तुम्हें इस मुनि-विषयक धर्मका अनुष्ठान करना चाहिए। हे भव्य! बाल्यकाल होने पर भी तुम काम आदि शत्रुओंको तपरूपी खड्गसे शीघ्र नाश कर अपने चित्तमें उक्त धर्मको धारण करो और अपनेको धर्मसे अलंकृत करो। धर्मके लिए तुम घर आदिको छोड़ो, धर्मके सिवाय तुम अन्य कुछ आचरण मत करो, धर्मकी शरण जाओ, धर्ममें ही निरन्तर संलग्न रहो और सदा यही प्रार्थना करो, कि हे धर्म! तू मेरी रक्षा कर। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या है? तू मोहमहाभटको मारकर सर्व प्रयत्नसे मुक्ति प्राप्तिके लिए शीघ्र उत्तम धर्मको स्वीकार कर।

इस प्रकार मुनिराजके तथ्यपूर्ण, सद्-धर्मसूचक वाक्य सुनकर संसार, शरीर और स्त्री आदिसे वैराग्यको प्राप्त होकर, कनकोज्ज्वल इस प्रकार सोचने लगे—अहो, पर-हितके इच्छुक ये मुनिराज, मेरे हितके कारणभूत इन वचनोंको कह रहे हैं, अतः मैं मुक्तिके लिए शीघ्र ही सारभूत तपको ग्रहण करता हूँ, क्योंकि यह ज्ञात नहीं होता है, कि मनुष्योंकी मृत्यु कब होगी? यह यमराज गर्भस्थोंको और आज ही उत्पन्न हुए बच्चोंको भी मार डालता है। जब यह यमराज अहमिन्द्र और देवेन्द्र आदिको भी कालसे—समय आने पर–मार डालता है, तब हमारे जैसे दीन पुरुषोंकी तो इस जीवन आदिमें क्या आशा की जा सकती है। 'हम धर्म बुढ़ापा आने पर करेंगे।' ऐसा मानकर जो शठ पुरुष यथासमय धर्म नहीं करते हैं, वे पापोदयसे क्षणभरमें यमके ग्रासपनेको प्राप्त होते हैं। इसलिए चतुरजनोंको अपने मरणकी प्रतिसमय आशंका करके सभी अवस्थाओंमें निरन्तर धर्म करना चाहिए और कालका उल्लंघन नहीं करना चाहिए अर्थात् धर्म-सेवनमें प्रमाद नहीं करना चाहिए ऐसा हृदयमें विचारकर और अपनी कान्ताको धर्मबाधक समझकर उस बुद्धिमान कनकोज्ज्वल विद्याधरने बाह्य आभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहको छोड़कर एवं साधुके चरणोंकी आराधना कर मन, वचन, कायकी शुद्धिपूर्वक तीनलोकमें पूजनीय स्वर्ग और मुक्तिके सुखोंकी जननी ऐसी सारभूत जिनदीक्षा ग्रहण की।

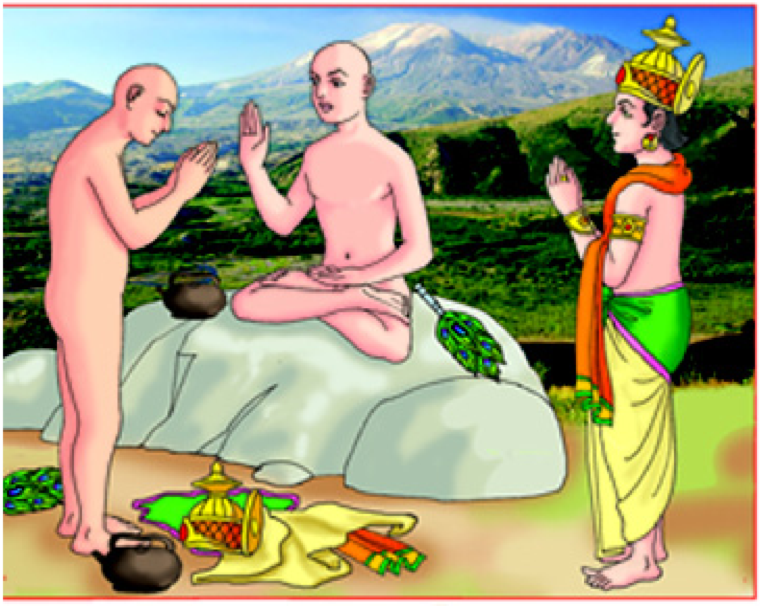

विद्याधर कनकोज्ज्वलका दीक्षा ग्रहण व रानीका आर्यिकाव्रत ग्रहण

तत्पश्चात् वे सुज्ञानी कनकोज्ज्वल मुनिराज आर्त-रौद्रध्यान और दुर्लेश्याको छोड़कर, प्रयत्नके साथ शुभ धर्मध्यान और शुक्ललेश्या धारण करते हुए, विकथालाप और निरर्थक वातचीतको छोड़कर, उत्तम धर्मकथा करते, सिद्धान्तशास्त्रोंको पढ़ते, सज्जनोंको धर्मका उपदेश देते, सराग स्थान और सरागी पुरुषोंका संग छोड़ते, ध्यानकी सिद्धिके लिए गुफा, वन, स्मशान, पर्वत आदि निर्जन स्थानोंमें वसते, अटवी, ग्राम, देशादिकमें ममत्वरहित चित्त होकर विहार करते हुए, कर्मोंका नाश करनेके लिए अत्यन्त उग्र बारह प्रकारके तपश्चरण आदि करके अन्य भी प्रशस्त कर्तव्योंको तथा सभी उत्तम मूलगुणोंके यति–आचारोक्त मार्गको पालकर और मरण पर्यन्त निर्दोष संयमको पालकर, जीवनके अन्तमें, उन्होंने संन्यासको धारण कर लिया। चारों प्रकारके आहारोंका और अपने शरीर आदिमें ममताका त्याग कर, उन मुनिराजने अतिधैर्यके साथ भूख, प्यास आदि परिषहोंको जीतकर एवं मुक्तिलक्ष्मीके साधनमें रत होकर अपने वीर्यको प्रकट कर, सभी प्रयत्नसे समाधि द्वारा आराधना कर, निर्विकल्प हो, उन यतिराजने धर्मध्यानसे प्राणोंको छोड़ा और तपश्चरण एवं व्रत पालनसे उपार्जित पुण्यके द्वारा वे लान्तव नामक स्वर्गमें (भगवान महावीरका पूर्व ७वाँ भव) अनेक कल्याणयुक्त विभूतिके धारक महर्द्धिक देव हुये।

भगवान श्री महावीरका जीव-
पूर्व चौथा भवमें (प्रियमित्र चक्रवर्ती)

भगवान श्री महावीर आठवें भवमें कनकोज्ज्वल विद्याधर राजा थे। वहाँ संयम धारण करके वे सातवें स्वर्गमें देव हुए। वहाँ तत्काल उत्पन्न हुए अपने अवधिज्ञानसे पूर्वभवमें किये गये तपका फल जानकर वे देव धर्ममें दृढ़चित्त हो और श्री धर्मकी सिद्धिके लिए तीन लोकमें स्थित जिनेन्द्रोंकी प्रतिमाओंका तथा अर्हन्तों, गणधरों और मुनिराजोंका नित्य पूजन–नमन करते हुए, उत्कृष्ट पुण्यका उपार्जन करने लगे। वहाँ पर उनकी तेरह सागरोपम आयु थी, पाँच हाथ उन्नत शरीर था, तेरह हजार वर्षोंसे हृदय द्वारा अमृत-आहारको सेवन करते थे, साढे छह मास बीतने पर श्वासोच्छ्‌वास लेते थे, सुगन्धित शरीर था, नीचे तीसरी पृथ्वी तक व्याप्त अवधिज्ञान और इतनी ही विक्रिया करनेकी शक्तिसे संपन्न थे, सप्तधातु, मल-मूत्र, प्रस्वेदादिसे रहित दिव्य शरीरके धारक थे, महान सम्यग्दृष्टि, शुभध्यान और जिनपूजनमें निरत रहेते थे। सुख-कारक नृत्य, गीत और मधुर वादित्रोंके द्वारा दिव्य देवियोंके साथ निरन्तर महान भोगोंको भोगते हुए, चारित्रकी भावना करते हुए, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूप रत्नसे मंडित तथा देवोंसे सेव्य, वे देवराज सुखरूप अमृतसागरमें मग्न रहते हुए आनन्दसे रहने लगे।

इसी जम्बूद्वीपके कोशल नामक देशमें अयोध्या नामकी रमणीक नगरी है, जो सज्जनोंसे भरी हुई है। पुण्योदयसे उस नगरीका स्वामी वज्रसेन राजा था और शीलको धारण करनेवाली शीलवती नामकी उसकी रानी थी। पुण्यसे देवी स्वर्गसे च्युत होकर भगवान श्री महावीरका जीव पूर्व छठवें भवमें उन दोनोंका हरिषेण नामक पुत्र हुआ। राजाने अपने बन्धुजनोंके साथ बड़ी विभूतिसे उसका जन्म-महोत्सव एवं अन्य सभी मांगलिक विधि-विधान किये। क्रमशः भोगोपभोगोंके द्वारा बुद्धिमत्तासे युक्त उन्होंने कुमारावस्थाको प्राप्त कर, धर्मादि पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिए शस्त्रविद्याके साथ जैन सिद्धान्तके सारभूत तत्त्वार्थको पढ़कर, रूप, लावण्य, तेज, शरीर, कान्ति और दीप्ति

आदि सद्गुणोंके द्वारा जनताको आनन्दित करते हुए वे दिव्य वस्त्राभरण आदि वेष-भूषासे देवके समान शोभाको प्राप्त हुए।

एक बार हरिषेण राजाने वैराग्य प्राप्त होनेसे श्रुतसागर मुनिराजके पास मुनिदीक्षा अंगीकार की। तत्पश्चात् वे मुक्तिकी देनेवाली दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चारों आराधनाओंकी भली भांतिसे आराधना कर और तपरूपी अग्निसे अपने शरीरको सुखा करके सर्व प्रकारकी समाधिके साथ प्राणोंको छोड़कर महाशुक्र नामक स्वर्गमें (भगवान महावीरका पूर्व पांचवाँ भव) महर्धिक देव हुए।

उत्तम धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वभागवर्ती पूर्वविदेहमें पुष्कलावती नामका देश है। वहाँ पर रिद्धि-सिद्धि समृद्ध पुण्डरीकिणी नगरी है। जो विशाल, शाश्वती, दिव्य और चक्रवर्ती द्वारा भोग्य है। उस नगरीका स्वामी सुमित्र नामका अति पुण्यवान राजा था। उसकी व्रत-विभूषित सुव्रता नामकी सुन्दर रानी थी। उन दोनोंके, महाशुक्र विमानसे आकर वे देव दिव्यलक्षणवाले जगत्प्रिय भगवान श्री महावीरके चौथे पूर्वभवमें प्रियमित्र नामके पुत्र हुए। जन्म होने पर उनके पिताने भारी विभूतिके साथ सर्वप्रथम जिनालयमें जाकर समस्त अभ्युदय सुखोंको देनेवाली महाभिषेकपूर्वक उत्तम पूजा की। पुनः बन्धुजनोंको, अनाथों और वन्दी लोगोंको दान देकर तीन प्रकारके बाजोंके साथ ध्वजा आदि फहराकर पुत्रका जन्म महोत्सव मनाया।

वह बालक समस्त जनताके आनन्दको बढ़ाता हुआ, अतिशय सुंदररूपसे, योग्य दुग्धपान, अन्नाहार आदि वस्तुओंसे कीर्ति, कान्ति और शरीरके भूषणोंसे द्वितीयाके चन्द्रमाके समान वृद्धिको प्राप्त होकर देवकुमारके समान अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुआ। पुनः जैन अध्यापकके पास उसने धर्म और अर्थकी सिद्धिके लिए धर्म और अर्थको प्रगट करनेवाली सारभूत विद्याको उत्तम बुद्धिसे पढ़ा। यौवन अवस्थामें महामण्डलेश्वरकी राज्यलक्ष्मीसे युक्त यह उत्तम सुखको भोगने लगा। तत्पश्चात् उन्हें अद्भुत पुण्यसे स्वयं ही चक्र आदि सभी चौदह रत्न और उत्कृष्ट नौ निधियाँ क्रमसे प्रकट हुई। पुनः षडंग सेनासे वेष्टित उन्होंने भारी विभूतिके साथ षट्खण्ड भूभाग पर परिभ्रमण करके मनुष्य और विद्याधरोंके स्वामियों पर आक्रमण कर चक्र आदि साधनोंके द्वारा उन्हें जीता। तथा मागधादिक व्यंतरदेवोंको अपनी महिमासे ही क्रीड़ापूर्वक अपने वशमें कर लिया।

इस प्रकार उन चक्रवर्तीने उन राजा लोगोंसे कन्या आदि रत्नोंको और अन्य सारभूत वस्तुओंको लेकर, उत्कृष्ट लक्ष्मीसे अलंकृत हो, देवेन्द्र समान लौटकर लीलासे स्वर्गपुरीके तुल्य अपनी पुरीमें विद्याधरेन्द्रों और व्यन्तरेन्द्रोंके साथ प्रवेश किया।

इन प्रियमित्र चक्रवर्तीके परम पुण्यसे विद्याधर और भूमिगोचरी राजाओंसे उत्पन्न हुई, रूप और लावण्यकी खान ऐसी छियानवे हजार रानियाँ थीं। बत्तीस हजार आज्ञाकारी मुकुटबद्ध राजा लोग अपने मस्तकोंसे इनके दोनों चरणोंको नमस्कार करते थे। उन्नत एवं मनोहर चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख ही रथ और अठारह करोड़ घोड़े थे। चौरासी करोड़ शीघ्रगामी पैदल चलनेवाले सैनिक थे। मनुष्य, विद्याधर और देवोंसे पूजित चरणोंकी, सोलह हजार गणबद्ध देव तथा अठारह हजार म्लेच्छ राजा, सेवा करते थे। उन चक्रवर्तीके, सेनापति, स्थपति, गृहपति, पट्टरानी, पुरोहित, गज, अश्व, दण्ड, चक्र, चर्म, काकिणी, मणि, छत्र और खड्ग ये चौदह रत्न थे, जो कि राज्यसुख और भोगके देनेवाले थे, तथा देवोंसे रक्षित थे। पुण्यके उदयसे उन चक्रवर्तीके घरमें देवोंके द्वारा संरक्षित पद्म, काल, महाकाल, सर्वरत्न, पाण्डुक, नैसर्प, माणव, शंख और पिंगल ये नौ निधियाँ थीं, जो कि सदा अक्षयरूपसे भोग-उपभोगकी वस्तुओंको पूरती रहती थीं। उस चक्रवर्तीके छियानवे करोड़ ग्राम, देश, खेट और नगर आदि थे तथा चक्रवर्तीके योग्य ही राजप्रसाद, आयुध और शरीरके भोग आदि विभूतियाँ थीं। इस प्रकार पुण्यके प्रभावसे षट्खण्डोमें उत्पन्न हुई, सुखोंकी खानरूप सभी आगमोंक्त उत्कृष्ट विभूति उन चक्रवर्तीके पास थी। इन उपर्युक्त तथा अन्य भी उत्तम लक्ष्मीको पाकर देव और मनुष्योंसे पूजित वे चक्रवर्ती दशांगभोग वस्तुओंके उत्कृष्ट सुखको भोगते थे।

धर्मसे सर्व अर्थकी भले प्रकार सिद्धि होती है, अर्थसे महान कामसुख प्राप्त होता है और उसके त्यागसे सज्जनोंको मुक्ति प्राप्त होती है। ऐसा समझकर वे बुद्धिमान चक्रवर्ती मन, वचन, कायसे स्वयं ही नित्य उत्तम धर्म करते थे तथा प्रेरणा करके दूसरोंको उत्तम धर्मका आचरण कराते थे। वे चक्रवर्ती अपने सम्यग्दर्शनकी विशुद्धिको निःशंकित आदि गुणोंके समुदायसे बढ़ाने लगे, श्रावकोंके व्रतोंको निरतिचार पालने लगे, मासके चारो पर्वोमें पापके विनाशक प्रोषधोपवासोंको सदा आरम्भ-रहित और शुभध्यानमें तत्पर होकर मुक्ति-प्राप्तिके लिए साधुके समान क्रियाएँ करने लगे।

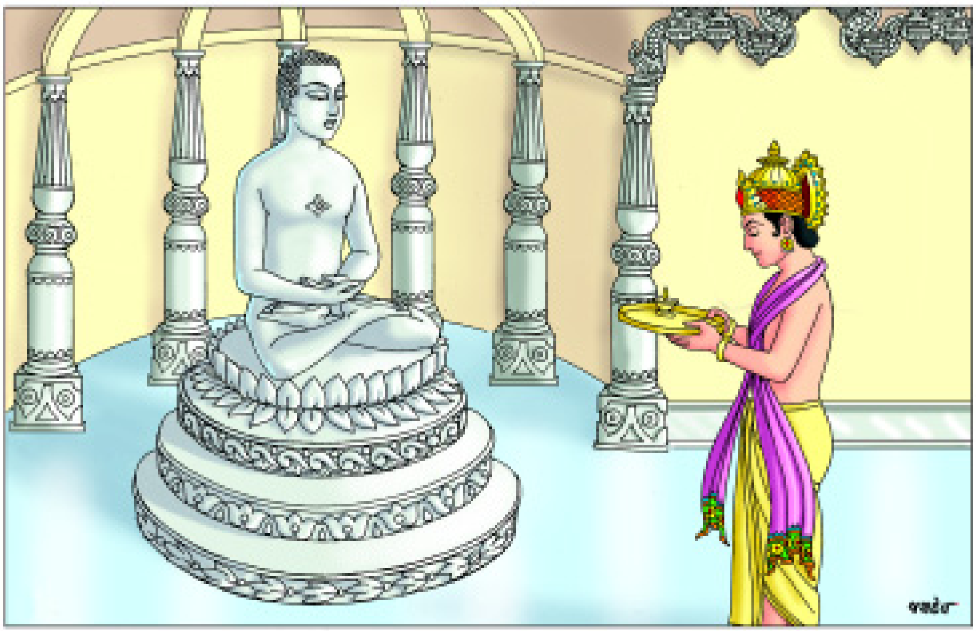

प्रियमित्र चक्रवर्ती द्वारा चैत्यालयमें पूजन-भक्ति

स्वर्ण-रत्नोंसे बहुतसे ऊँचे-ऊँचे जिनालयोंको बनवा करके, तथा अनेकानेक जिनमूर्तियोंका निर्माण कराके और भक्तिसे उनकी प्रतिष्ठा कराके जिनालयोंमें बिराजमान करके प्रतिदिन उत्कृष्ट सामग्रीसे उनके गुण प्राप्त करनेके लिए वे चक्रवर्ती उन दिव्य प्रतिमाओंका पूजन करते थे। आत्म-हितार्थ मुनियोंको, भक्तिसे विधिपूर्वक कीर्ति, पुण्य और महाभोगप्रद प्रासुक दान देते थे। वे धर्मबुद्धिवाले तीर्थंकरों तथा चक्रवर्तीयोंकी

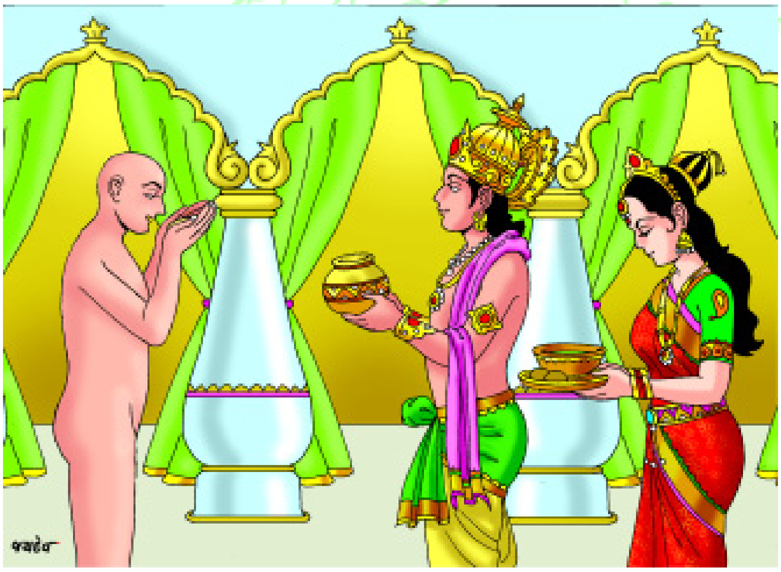

प्रियमित्र चक्रवर्ती द्वारा मुनिराजको नवधा भक्तिसह आहारदान

निर्वाणभूमियोंकी, उनके प्रतिबिम्बोंकी, गणधर और योगिजनोंकी वन्दना, पूजन और भक्ति करनेके लिए यात्राको जाते थे। वे बुद्धिमान तीर्थंकर देव और गणधरोंकी दिव्यध्वनिसे स्वजनोंके साथ अंग और पूर्वोको तथा वैराग्यके लिए मुनि-श्रावकके धर्मको सुनते थे। वे विवेकी सामायिकको प्राप्त होकर दिन-रातमें किये गये अशुभ कार्योंको अपनी निन्दा-गर्हणा आदि करके नित्य कर्मांश क्षपित करते थे। इत्यादि शुभ आचारोंके द्वारा वे सदा स्वयं धर्म करते थे और उपदेश देकर अपने भृत्यों, स्वजनों एवं राजाओंसे धर्म कराते थे। इसप्रकार वे समस्त राजाओंके मध्यमें अपनी पुण्य चेष्टाओंसे धर्ममूर्तिके समान शोभाको प्राप्त हुए, जैसे कि देवोंके मध्यमें जिनदेव शोभाको प्राप्त होते हैं। वैसे शोभते थे।

एक दिन वे चक्रवर्ती अपने परिवारके साथ बड़ी विभूतिसे हर्षित होते हुए क्षेमंकर जिनेश्वरकी वन्दना करनेके लिए गये। वहाँपर वे जिनेन्द्रदेवको तीन प्रदक्षिणा देकर, मस्तकसे नमस्कार करके और भक्तिसे दिव्य पूजन-द्रव्यों द्वारा पूजा करके मनुष्योंके कोठेमें जा बैठे। तब जिनेश्वरदेवने उनके हितके लिए दिव्यध्वनि द्वारा प्रतीति और अनुप्रेक्षारूप धर्मका उपदेश दिया।

भगवानने कहा—आयु, शरीर, भोग, राजलक्ष्मी और इन्द्रियोंके सुख आदिक सभी संसारकी वस्तुओंको बिजलीके समान चंचल, अनित्य जानकर ज्ञानियोंको अचल मोक्षकी आराधना करनी चाहिए। प्राणीको मृत्यु, रोग, क्लेश और दुःखादिमें शरण देनेवाला धर्मके बिना कहीं पर भी, कोई नहीं है, ऐसा समझकर दुःखोंके क्षय करनेके लिए अहो भव्यजीवों! तुम्हें धर्म करना चाहिए। यह घोर संसार-सागर सर्व दुःखोंका भण्डार है, ऐसा समझकर उसके अन्त करनेके लिए महान रत्नत्रयधर्मका सेवन करना चाहिए। जन्म, मरण और जरा आदि अवस्थाओंमें अपनेको अकेला समझकर एकत्वकी प्राप्तिके लिए एकमात्र जिनेन्द्रदेवका अथवा अपनी शुद्ध आत्माका ध्यान करना चाहिए। अपने आत्माको शरीरादिसे भिन्न जानकर, निश्चयसे आत्मसिद्धिके लिए मरणादिके समय, शांतभाव से शरीरादिको छोड़कर हितका आचरण करना चाहिए। यह शरीर सप्तधातुमय है, निन्द्य है, सडा हुआ गन्धवाला है और यमका घर है, ऐसा देखकर ज्ञानीजन धर्मका आचरण क्यों न करें।

कर्मोंके आस्रवसे जीवोंका संसार-समुद्रमें पतन होता है, ऐसा मानकर आस्रवकी हानिके लिए ज्ञानीजनोंको दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। संवरके द्वारा सन्तजनोंको नियमसे शीघ्र मुक्तिश्री प्राप्त होती है, ऐसा जानकर गृहस्थाश्रम छोड़के मुक्तिके लिए प्रयत्न करना चाहिए। जब तपके द्वारा सर्व कर्मोंकी निर्जरा हो जाती है, तभी सज्जनोंको मुक्तिरमा प्राप्त होती है, ऐसा जानकर सबको निर्दोष तप करना चाहिए। परमार्थसे इस जगत्त्रयको दुःखोंसे भरा हुआ जानकर और मोक्षको अनन्त सुख देनेवाला समझकर उसकी प्राप्तिके लिए, हे भव्यो! संयमको धारण करो। इस संसारमें मनुष्य जन्म, उत्तम कुल, आरोग्य, पूर्ण आयु, उत्तम बुद्धि, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और संयम आदिको उत्तरोत्तर दुर्लभ जानकरके ज्ञानियोंको आत्महितमें सम्यक् प्रकार प्रयत्न करना चाहिए। श्री केवली प्रणीत धर्म ही जगतमें श्री और सुखका भण्डार है और संसारके दुःखोंका विनाशक है, इसलिए सर्व प्रयत्नसे धर्म करना चाहिए।

यह धर्म सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपके योगसे तथा क्षमा आदि दश धर्मोंसे प्राप्त होता है। अतः मुमुक्षुजनोंको शिवप्राप्तिके लिए मोह-सन्तानका नाश कर उस धर्मका सेवन करना चाहिए। सुखीजनोंको अपने सुखकी वृद्धिके लिए, तथा दुःखीजनोंको अपने दुःखोंके नाशके लिए तथा सर्व साधारण लोगोंको दोनों कार्योंके लिए सर्व प्रकारसे धर्म करना चाहिए। संसारमें वही पुरुष पंडित है, वही बुद्धिमान है, वही जगतका पूज्य है, वही महापुरुषोंका माननीय है और वही सुखका भागी होता है; जो अपने आश्रित सैंकड़ों अन्य कार्योंको छोड़कर प्रयत्नपूर्वक निर्मल आचरणोंके द्वारा एकमात्र धर्मको करता है। ऐसा समझकर अपनी आयु और तीन जगतको क्षण-भंगुर मानकर तथा शरीरको सर्पके बिल समान छोड़कर निर्द्वन्द्व हो धर्म करना चाहिए।

इस प्रकार क्षेमंकर तीर्थंकरकी दिव्यध्वनिसे चक्रवर्ती तीन जगतको अनित्य जानकर और अपने शरीर, राज्यादिसे विरक्त होकर हृदयमें यह विचारने लगे—अहो, मुझ [1]जड़ात्माने जगतमें सारभूत सभी भोगोंको भोगा है, तथापि उनसे मेरे इन्द्रिय-सुखमें जरा-सी भी तृप्ति नहीं हुई है, अतः जो विषयासक्त जन भोगोंके सेवनमें तृष्णाके नाशकी इच्छा करते हैं, वे जड़ाशय (मूर्ख) तेलसे अग्निको शान्त करना चाहते हैं।

१. जडात्मा=अज्ञानी आत्मा, मूर्ख

जैसे-जैसे इच्छित भोग सम्पदाएँ मनुष्योंके समीप आती हैं, वैसे-वैसे ही उसकी आशाएँ तीन जगतमें फैलती जाती है। जिस शरीरसे ये भोग भोगे जाते हैं, वह साक्षात् दुर्गंधवाला, निःसार और विष्टा, कृमि एवं मल का घर दिखाई देता है। जिस संसारमें यह शरीर ग्रहण किया जाता है, वह समस्त दुःखोंकी खानरूप, पराधीन और दुर्विपाकरूप दिखाई देता है। यह राज्य निश्चयसे धूलिके समान है और सर्व पापोंका कारण है। ये सुन्दर स्त्रियाँ पापोंकी खान हैं, ये सर्व बन्धुजन बन्धनोंके समान हैं। यह लक्ष्मी वेश्याके समान ज्ञानियों द्वारा निन्द्य है, यह वैषयिक सुख हलाहल विषके समान कटुक है और संसारमें उत्पन्न हुई सभी वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं। अधिक कहनेसे क्या साध्य है? रत्नत्रयधर्मके बिना तीनों ही जगतमें सार और हितकर कुछ भी नहीं है। इसलिए अब मैं दुःखमय इस मोहजालको ज्ञानरूपी खड्ग(तलवार)से काटकर अपनी मुक्तिके लिए जगतपूज्य जिनदीक्षाको ग्रहण करता हूँ। मुझ विषयासक्तके इतने दिन यहाँ पर संयमके बिना व्यर्थ चले गये हैं। अतः अब समय बितानेसे क्या लाभ है? ऐसा विचारकर सर्वमित्र नामक पुत्रके लिए राज्यपद देकर, नौ निधि और चौदह रत्नोंके साथ सारी राज्यलक्ष्मीको तथा सभी आन्तरिक परिग्रहोंको तृण आदिके समान छोड़कर, मुक्ति-प्राप्तिके लिए मुक्तकारिणी, तीन लोकमें देव, तिर्यंच एवं कुजन्मवाले नारकियोंको दुर्लभ, ऐसी संवेग-वैराग्य आदि गुणोंसे युक्त एक हजार राजाओंके साथ नराधिप प्रियमित्र चक्रवर्तीने आर्हती जिनमुद्राको शीघ्र ही ग्रहण कर ली।

तत्पश्चात् वे प्रियमित्र मुनिराज प्रमादरहित होकर पूर्ण शक्तिसे दोनों प्रकारका घोर तप और सारभूत ध्यान-अध्ययन करते, मूल और उत्तरगुणोंका सम्यक् पालन करते, मनको जीतकर त्रिकाल योगको प्राप्त होकर, तीन गुप्तियोंसे सुगुप्त और निरास्रव होकर, विहार करते, पक्ष-मासोपवास आदिको करके उनके पारणाकालमें कृत, कारित, अनुमोदित उद्दिष्ट आदि दोषोंको त्यागकर शुद्ध आहारको, संयमकी रक्षाके लिए लेते हुए, देव-मनुष्य-पूजित जैनशासनकी प्रभावना, तप, सिद्धान्त और धर्मके उपदेश द्वारा करते हुए, वे सद्-भव्यवत्सल मुनिचर्याका पालन करते विचरने लगे, परम आचारोंके द्वारा निर्दोष संयमको मरणान्त उत्तम प्रकारसे पालन कर अन्तमें समाधिकी सिद्धिके लिए चारों प्रकारका आहार त्याग कर, परमार्थमें मनको लगाकर, प्रियमित्र योगीराजने

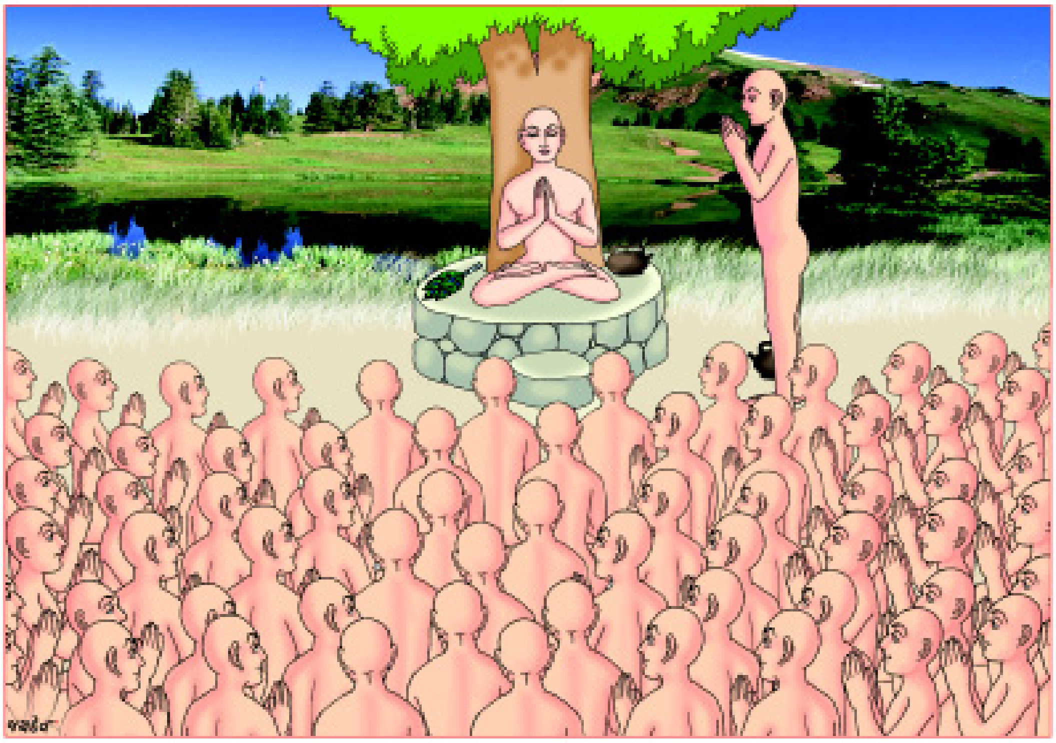

प्रियमित्र चक्रवर्तीका एक हजार राजाओं सह दीक्षा

योगका निग्रह करके, तपके लिए अपने महान पराक्रमको उत्तम प्रकारसे व्यक्त कर, क्षुधा पिपासा आदि बाईस परिषहोंको सहन कर और मुक्तिकी मातास्वरूप चारों आराधनाओंकी सम्यक् प्रकारसे आराधना कर, निजध्यानमें तत्पर वे प्रियमित्र नामके मुनिन्द्र, अति प्रयत्नके साथ प्राणको छोड़कर, उस तपश्चरणादिसे उपार्जित पुण्यके उदयसे सहस्रार स्वर्गमें महासूर्यप्रभ (भगवान महावीरका पूर्व तीसरा भव) नामके देव हुए।

भगवान श्री महावीरका नाम 'सन्मति'

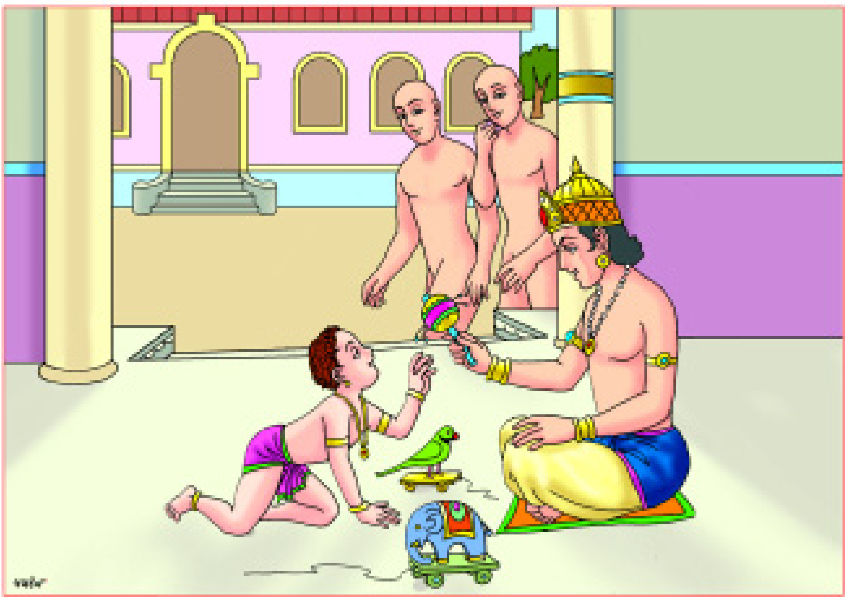

संजय ओर विजय नामक दो चारणमुनिको बाल वर्धमानके दर्शन करते शंकाका समाधान होना

श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर भगवानके बाद दो सौ पचास वर्ष बीत जाने पर महावीरस्वामी हुए। उनका इन्द्रोंने देवों आदि द्वारा गर्भकल्याणक व जन्मकल्याणक बड़ी धामधूमसे मनाया। कल्याणकके समय जगतके सभी जीवोंको साता हो जाती है। उनकी आयु कुछ कम बहत्तर वर्षकी थी। वे सात हाथ ऊँचे, सब लक्षणोंसे विभूषित थे, पसीना रहित आदि दशगुण उनके जन्मसे ही थे, वे सात भयोंसे रहित और सब तरहकी शुभ चेष्टाओंसे सुशोभित थे।

एक बार संजय और विजय नामके दो चारणमुनियोंको किसी पदार्थमें संदेह उत्पन्न हुआ था, भगवानके जन्मके बाद वे उनके समीप आये और उनके दर्शनमात्रसे ही उनका संदेह दूर हो गया। तब उन्होंने बड़ी भक्तिसे कहा था, कि यह बालक सन्मति तीर्थंकर होनेवाला है, अर्थात् उन्होंने उनका नाम 'सन्मति' रखा था।

'सन्मति' नाम प्रभु वीरका सार्थक ही था क्योंकि उनके दर्शनमात्रसे भव्यजीवोंकी शंकाओंका निराकरण हो जाता था।

भगवान श्री महावीरकी बालकपनेमें वीरता

एक दिन सौधर्म इन्द्रकी सभामें देवगण भगवानके महावीर्यशाली होनेकी परस्पर चर्चा कर रहे थे, कि देखो–वीर जिनेश्वर जो अभी कुमारपदसे भूषित हैं और क्रीड़ामें आसक्त हैं, फिर भी वे बड़े धीर-वीर, शूरोंमें अग्रणी, अमाप पराक्रमी, दिव्यरूपधारी, अनेक असाधारण गुणोंके भण्डार और आसन्न भव्य हैं। देवोंकी यह चर्चा सुनकर संगम नामका देव उनकी परीक्षा करनेके लिए स्वर्गसे उस महावनमें आया, जहाँ पर सुन्दर केशोंके धारक वीर जिन, समान अवस्थावाले अनेक राजकुमारोंके साथ आनन्दसे वृक्ष पर चढ़े हुए क्रीड़ामें तत्पर थे।

प्रभुके प्रकाशमान आकारको उस देवने देखा और उन्हें डरानेके लिए उसने क्रूर काले साँपका आकार धारण किया और वृक्षके मूलभागसे लेकर स्कन्ध तक उससे लिपट गया। उस भयंकर सर्पको वृक्ष पर लिपटता हुआ देखकर, उसके भयसे अतिविह्वल होकर सभी साथी कुमार डालिओंसे भूमि पर कूद-कूदकर दूर भाग गये। किन्तु धीर-वीर, निर्भय, निःशंक, निर्मल हृदयवाले वीर कुमार तो लपलपाती सैकडों जीभोंवाले, भीषणरूपके धारक उस साँपके ऊपर चढ़कर माताकी शय्याके समान क्रीड़ा करने लगे। अमापमहाबली प्रभुने उसे तृणके समान तुच्छ समझा।

वीरकुमारके अतुल धैर्यको देखकर आश्चर्यचकित हृदयवाला वह देव प्रगट होकर उनके उत्तम गुणोंकी इस प्रकार स्तुति करने लगा ''हे देव! आप तीनों लोकके स्वामी हैं, आप ही महाधीर वीर हैं, आप ही सर्व कर्मशत्रुओंके नाश करनेवाले हैं और जगतके सज्जनोंके रक्षक हैं। चन्द्रिकाके समान अतिनिर्मल महापराक्रमादि गुणोंसे उत्पन्न हुई आपकी कीर्ति भव्य पुरुषोंके द्वारा अनिवार्यरूपसे सर्वत्र व्याप्त है। हे देव! संसारमें आपकी धीरता परम श्रेष्ठ है, आपके नामका स्मरण करनेमात्रसे पुरुषोंको सर्व अर्थोंकी सिद्धि करनेवाला धैर्य शीघ्र प्राप्त होता है अतः हे नाथ, आपको नमस्कार है,

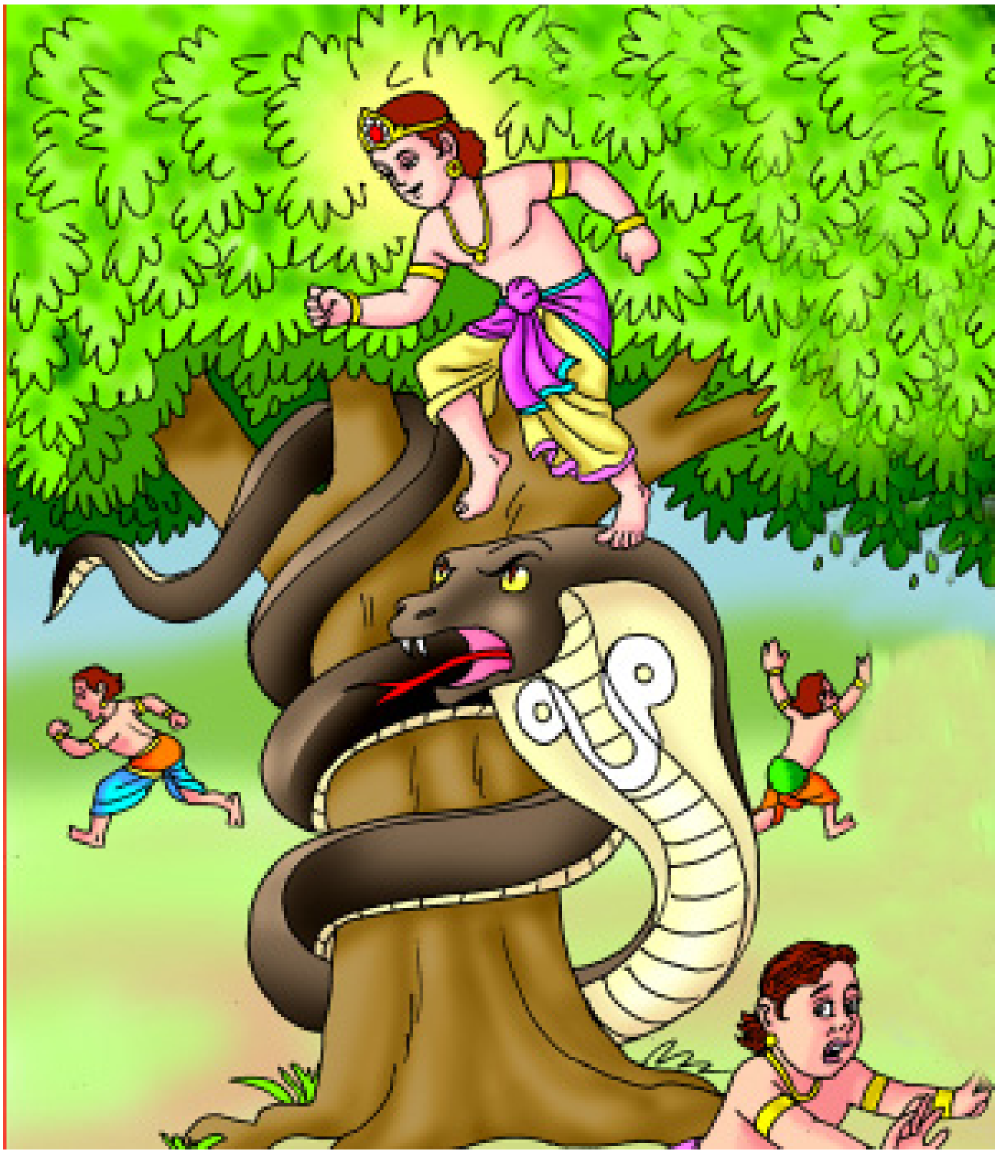

सर्पका रूप लेकर बालक वर्धमानकी परीक्षा करता देव

अतिदिव्यमूर्तिके धारक आपको नमस्कार है, सिद्धिवधूके स्वामी आपको नमस्कार है और महान वीर प्रभु, आपको मेरा नमस्कार है। इस प्रकार स्तुति करके और जगद्-गुरु वीर प्रभुका 'महावीर' यह सार्थक नाम रखकर बार-बार नमस्कार कर वह देव वहाँसे चला गया।

सती चन्दना द्वारा भगवान श्री महावीरको आहारदान

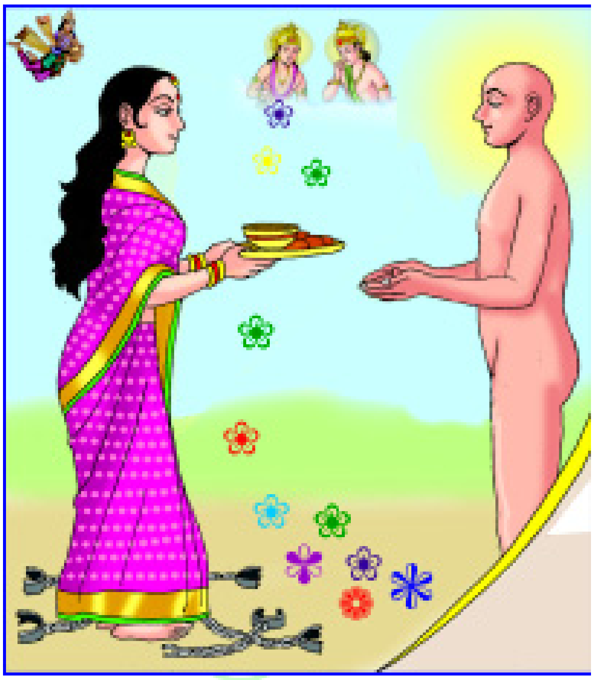

भगवान महावीरको आहारदान देनेकी भावनासे सती चंदनाके बंधन खुल जाना, स्वरूपवान होना और देवों द्वारा पंचाश्चर्य

ऋषभदत्तकी पत्नी सुभद्रा सेठानीने सती चन्दनाको सांकलसे बांध रखा था और मिट्टीके पात्रमें कांजीमिश्रित कोदों भोजनके लिये देती थी। एकबार भगवान श्री महावीर मुनिदशामें नगरीमें पधारने पर चन्दनाको आहारदानकी उत्कृष्ट भावना होती है, उसमें उसके बन्धन सब टूट जाते हैं, नव प्रकारकी पुण्य ऋद्धि प्रकट होती है, चन्दना भगवानको पड़गाहन कर आहारदान देती है, देववृन्द पंच आश्चर्यकी वृष्टि करते हैं, अन्ततः चन्दना आर्यिका बनती है, भगवान श्री महावीरके समवसरणमें चन्दना आदि ३६००० आर्यिकाएँ थीं।

(इस सम्बन्धित विस्तृत कथाके लिये पढ़ें जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-४ पृ. ९५ से ११० तक)

वर्धमान मुनिराज स्मशानमें ध्यानस्थ

भगवान श्री महावीरका तीस वर्षका कुमारकाल बीतने पर उन्होंने भगवती जिनदीक्षा अंगीकार करनेकी भावना की। तदनन्तर शिष्योंका पुण्य बढानेवाले वे भगवान एकान्त स्थानमें विधिपूर्वक तप करनेकी इच्छासे घरसे निकले। जो विषयोंरूपी वृक्षोंसे संकीर्ण है, इन्द्रियरूपी व्याघ्रोंसे भरा हुआ है, परिषहरूपी महाभयंकर सब प्रकारके दुष्टजीवोंसे सहित है, कषायरूपी मदोन्मत्त हाथियोंके सैंकड़ों समूहसे व्याप्त है, मुँह फाड़े हुए यमराजरूपी अनन्त अजगरोंसे भयंकर है, चार प्रकारके उपसर्गरूपी दुष्ट सिंहोंसे कठोर है और विघ्नोंके समूहरूपी चोरोंसे घिरा हुआ है, ऐसे संसाररूपी वनको भगवानने छोड़ दिया।

जो सज्ञनोंके द्वारा सेवन करने योग्य है, जिसमें अव्याबाध–बाधा रहित सुख भरा हुआ है, जो उत्तम मनुष्योंसे व्याप्त है, विस्तीर्ण है और सब तरहके उपद्रवोंसे रहित है ऐसे तपोवनमें तप हेतु भगवानने प्रवेश किया। ऐसे संसाररूपी वनको छोड़कर तप हेतु, तपोवनमें भगवानने महाव्रतरूपी महा सामन्तों सहित, उत्तम नयोंकी अनुकूलता धारण कर, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्ररूपी प्रकट हुई तीन शक्तियोंसे अत्यंत बलवान्, शीलरूपी आयुध लेकर, गुणोंके समूहका कवच पहनकर, शुद्धतारूपी मार्गसे चलकर और उत्तम भावनाओंकी सहायता लेकर मुनि अवस्थामें प्रवेश किया। वहाँ पर निःशंक रीतिसे रहकर उन्होंने अनेक योगोंकी प्रवृत्ति की और एकान्त स्थानमें स्थित होकर बार-बार दश प्रकारके धर्मध्यानका चिन्तवन किया।

अथानन्तर—किसी एक दिन अतिशय धीर-वीर वर्धमान मुनिराज उज्ञयिनीके अतिमुक्तक नामक स्मशानमें प्रतिमायोगसे बिराजमान थे। उन्हें देखकर महादेव नामक रुद्रने अपनी दुष्टतासे उनके धैर्यकी परीक्षा करनी चाही। उसने रात्रिके समय ऐसे अनेक बड़े-बड़े वेतालोंका रूप बनाकर उपसर्ग किया, कि जो तीक्ष्ण चमड़ा चिरकर उदरमें प्रवेश करना चाहते थे, खोले हुए मुँहोंसे अत्यन्त भयंकर दिखते थे, अनेक लयोंसे नाच रहे थे तथा कठोर शब्दों, अट्टहास और विकराल दृष्टिसे डरा रहे थे। इनके सिवाय उसने सर्प, हाथी, सिंह, अग्नि और वायुके साथ भीलोंकी सेना बनाकर उपसर्ग किया।

स्मशानमें ध्यानस्थ वर्धमान मुनिराज पर महादेव नामक अंतिम रुद्र द्वारा उपसर्ग

इस प्रकार एक पापका ही अर्जन करनेमें निपुण उस रुद्रने अपनी विद्याके प्रभावसे किये हुए अनेक भयंकर उपसर्गोंसे उन्हें समाधिसे विचलित करनेका प्रयत्न किया, परन्तु वह उसमें समर्थ नहीं हो सका। तब उसने भगवानके 'महति' और 'महावीर' ऐसे दो नाम रखकर अनेक प्रकारकी स्तुति की, पार्वतीके साथ नृत्य किया और सब मात्सर्यभाव छोड़कर वह वहाँसे चला गया। सो ठीक ही है, क्योंकि मुनिराजके साहसको स्पष्टरूपसे देखनेवाले पापी जीव भी संतुष्ट हो जाते हैं।

भगवान श्री महावीरका ज्ञानकल्याणक

जगद्‌बन्धु भगवान वर्धमानने तीस वर्षका कुमारकाल पूर्ण कर, छद्मस्थ (मुनि) अवस्थाके बारह वर्ष व्यतीत किये। एक दिन वे जृम्भिक ग्रामके समीप ऋजुकूला नदीके किनारे मनोहर नामके वनके मध्यमें रत्नमयी एक बड़ी शिला पर शालवृक्षके नीचे बेलाका नियम लेकर प्रतिमायोगसे विराजमान हुए। वैशाख शुक्ला दसमीके दिन अपराह्न कालमें हस्त और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रके बीचमें चन्द्रमाके आ जाने पर परिणामोंकी विशुद्धता बढ़ाते हुए वे क्षपकश्रेणी पर आरूढ हुए।

उसी समय उन्होंने शुक्लध्यानके द्वारा चारों घातिया कर्मोंको नष्ट कर अनन्तचतुष्टय प्राप्त किये और चौंतीस अतिशयोंसे सुशोभित होकर वे स्वयं महिमाके घर हो गये। अब वे सयोगकेवली गुणस्थानके धारक होकर, निज और परका प्रयोजन सिद्ध करते, तथा परमौदारिक शरीरधारी होकर आकाशरूपी आँगनमें सुशोभित होने लगे। उसी समय सौधर्मइन्द्र चारों प्रकारके देवोंके साथ आये और उन्होंने ज्ञानकल्याणक सम्बन्धी पूजाकी समस्त विधि पूर्ण की। पुण्यरूप परमौदारिक शरीरकी पूजा तथा समवसरणकी रचना होना आदि अतिशयोंसे संपन्न श्री वर्धमान स्वामी अर्हंत परमेष्ठी बनकर, विश्वमें विहार कर, दिव्यध्वनि द्वारा बहोत्तर वर्षकी उम्र तक संसारी जीवोंको भयंकर भवाग्निसे पार होनेका मार्ग बताकर पावापुरीसे सिद्ध परमेष्ठी बन गये और परमात्मा पदको प्राप्त हो गये।

श्री सिद्धवरकूट तीर्थक्षेत्र

पूज्य गुरुदेवश्रीकी सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्रकी ससंघ यात्रा

यह एक सिद्धक्षेत्र है, ऐसा निर्वाणकाण्डमें भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने बताया है, कि रेवा नदीके किनारे पश्चिम दिशाकी ओर सिद्धवरकूट है। वहाँसे दो चक्रवर्ती, दस कामकुमार और साढ़े तीन करोड़ मुनि मुक्तिको प्राप्त हुए हैं।

'कूट' शब्दसे यह प्रतीत होता है, कि यह क्षेत्र पर्वतके ऊपर है। अतः यह 'सिद्धकूट' या 'सिद्धवरकूट' कहलाता है। इस पर्वतको वैभारगिरि कहा जाता है। इसकी कूट पर यह क्षेत्र है। इसकी तलहटी व शिखरके ऊपर–दोनों स्थानोंसे मुनिवृंद मुक्त हुए हैं।

यहाँसे दो चक्रवर्ती जो मोक्ष गये हैं, उनके बारेमें विभिन्न आचार्योंके भिन्न-भिन्न मत हैं। उसमें उत्तरपुराण रचयिता श्री गुणभद्र आचार्यदेव अनुसार 'मघवा' व

'सनतकुमार' दो चक्रवर्ती यहाँसे मोक्ष गये हैं। यहाँसे कौनसे दस कामकुमार मोक्ष गये हैं, इसका उल्लेख कही नहीं है। कुछ लोगोंने यहाँसे मुक्ति प्राप्त दस कामकुमारोंके नाम इस प्रकार दिये हैं—सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघप्रभ, विजयराज, श्रीचन्द, नलराज, बलराज, [1]वसुदेव और जीवन्धर।

निर्वाणकांडमें सिद्धवरकूटका नाम होने पर भी संस्कृत निर्वाणभक्तिमें इसका नाम नहीं है, पर वहाँ विन्ध्याचलको ही सिद्धवरकूट स्वीकार किया गया है। इस भांति रेवा नदीके दोनों तटोंसे रावणके पुत्र सहित साढ़े पाँच करोड़ मुनि मुक्त हुए हैं। अतः निर्वाणकाण्डकी दो गाथाओंसे स्पष्ट है, कि रेवा नदीके दोनों तट परसे साढ़े पांच करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं, उनमेंसे रेवा नदीके पश्चिम किनारेसे साढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं, तथा पूर्व किनारेसे दो करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं।

रेवा नदीको वर्तमानमें नर्मदा नदी कहा जाता है।

सिद्धवरकूट क्षेत्र रेवाके पश्चिम तटपर अवस्थित था, इसके अतिरिक्त अन्य कोई सूचना किसी ग्रन्थमें नहीं मिलती। ऐसा लगता है, कि शताब्दीयोंसे यह तीर्थ अज्ञात दशामें पड़ा हुआ था। सम्भवतः कोई यात्री भी यहाँ नहीं आते थे। उपेक्षाके कारण यहाँके मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होकर धराशायी होने लगे। यह भी सम्भव है, कि किसी धर्मान्ध शासकने इस क्षेत्रको नष्ट कर दिया हो और जनता पर इतने भयानक अत्याचार ढाये हों, कि जिसमें उसके हृदयमें आतंक व्याप्त हो गया हो तथा भयके कारण यहाँकी यात्रा बन्द कर दी हो। धीरे धीरे जनता इस क्षेत्रका नाम और स्थान आदिके बारेमें भी भूल गयी।

यह क्षेत्र प्रकाशमें कैसे आया? इसका भी एक रोचक इतिहास है। कार्तिक कृष्णा चौदस संवत् १९३५को इन्दौर पट्टके भट्टारक महेन्द्रकीर्तिजीको स्वप्न आया, जिसमें उन्होंने सिद्धवरकूट क्षेत्रके दर्शन किये। स्वप्नमें देखे हुए स्थानकी खोजके लिए भट्टारकजी दूसरे दिन ही चल दिये और रेवा नदीके तटपर पहुँचकर उन्होंने खोज प्रारम्भ की। वे कुछ लोगोंके साथ रेवाके तटवर्ती वनके भीतर जाकर तलाश करते रहे, किन्तु जो दृश्य उन्होंने देखा था, वह अब तक नहीं मिला था। खोज कई दिनों तक होती रही। तभी एक दिन उन्हें उसी जंगलमें भगवान चन्द्रप्रभकी अतिमनोज्ञ एक मूर्ति

१. यह शंकास्पद प्रतीत होता है।

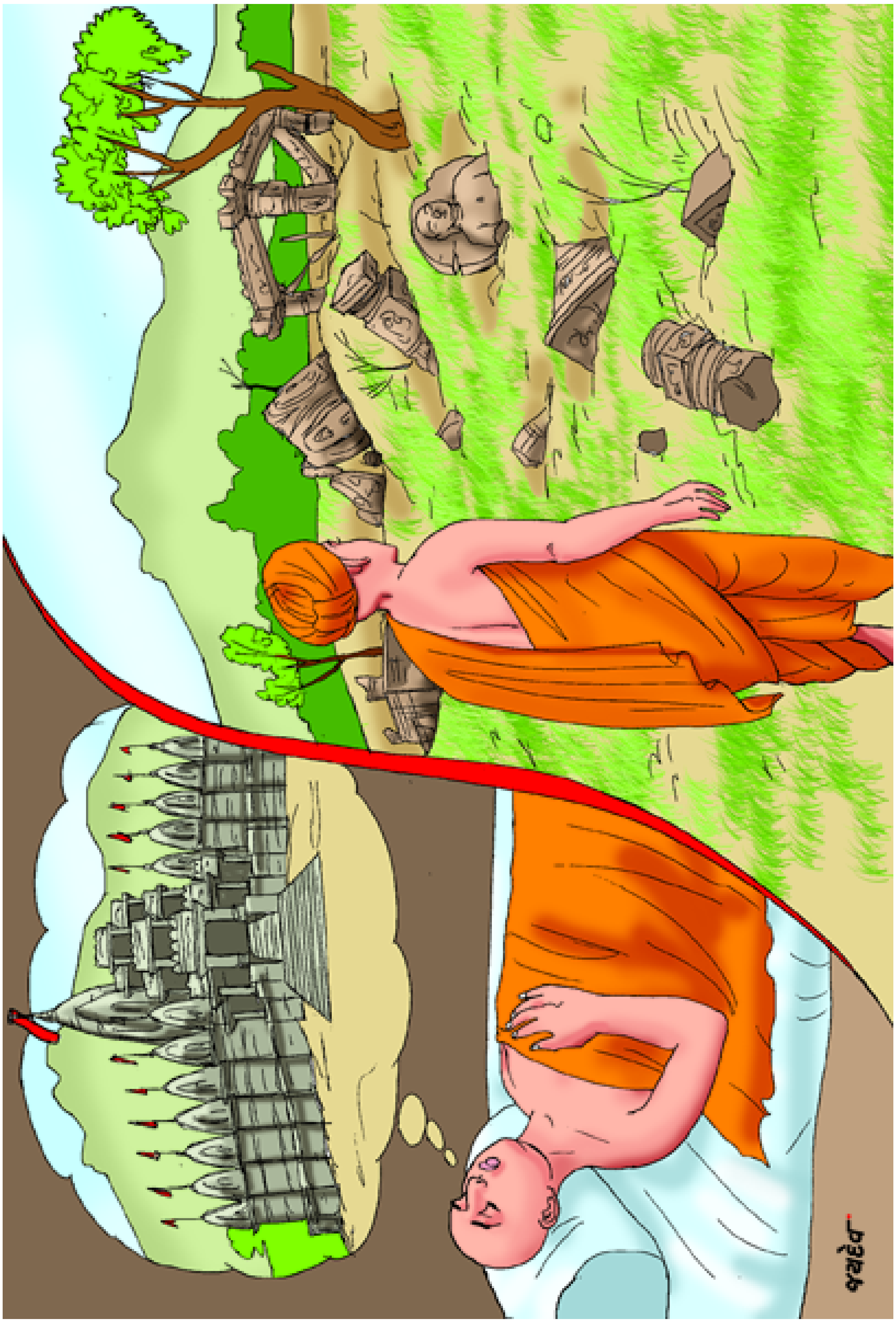

भट्टारक महेन्द्रकीर्तिका स्वप्न अनुसार रेवा नदीके तटके आसपास ढूंढना, चन्द्रप्रभ आदिकी प्रतिमा व मंदिरोंका भग्नावेश दिखना

मिली। इस मूर्तिकी प्रतिष्ठा राणा उदयसिंहके राज्यकालमें श्री विशालकीर्ति स्वामी प्रतिष्ठाचार्य द्वारा की गयी थी। एक और प्रतिमा भगवान आदिनाथकी मिली जो भट्टारक सोमसेनके द्वारा शाह माणिकचन्द हेमदत्त सुत धर्मदासने प्रतिष्ठित करायी थी।

मूर्ति प्राप्त होने पर आशा होने लगी कि अवश्य ही यहाँ कहीं मन्दिर भी रहा होगा। कुछ आगे बढ़ने पर एक जीर्ण-शीर्ण किन्तु विशाल जैन मन्दिर मिला। उसके द्वारके सिरदलपर दिगम्बर तीर्थंकर भगवानकी प्रतिमा बनी हुई थी और भी दो-तीन जैन मन्दिर भग्नावशेष दशामें मिले। यद्यपि कोई शिलालेख या पुरातत्त्व सम्बन्धी साक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ, जिसके आधार पर यह सिद्ध होता, कि यह स्थान ही वस्तुतः सिद्धवरकूट क्षेत्र है, किन्तु भट्टारकजीने अपने स्वप्नमें देखे हुए स्थानके साथ उस स्थानकी समानताके आधार पर यह मान लिया, कि अवश्य यही स्थान सिद्धवरकूट क्षेत्र है। किन्तु फिर भी अपनी इस धारणाकी पुष्टि करा लेना उन्होंने आवश्यक समझा। तब संवत् १९४०में श्री चारुकीर्ति पण्डिताचार्य और श्री सूरसेन पट्टाचार्यने इस स्थानका निरीक्षण करके भट्टारकजीकी धारणाकी पुष्टि की। तबसे यह स्थान सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूटके रूपमें मान्य हो गया।

(इस क्षेत्रके निकट ओंकारेश्वर मन्दिर है। उसका आकार प्रायः ॐ जैसा है। सम्भवतः इसी कारण यह मन्दिर ओंकारेश्वर कहलाता है। यह [1]मान्धाता टापु पर है, जो नर्मदा और कावेरीके मध्यमें है। मान्धाता[1] एक पहाड़ी है, जो प्रायः एकवर्ग मीलमें है। यह मन्दिर आजकल हिन्दुओंके अधिकारमें है। इस मन्दिरका सूक्ष्म निरीक्षण करने पर ऐसा प्रतीत होता है, कि मूलतः यह मन्दिर जैनोंका रहा होगा। कुछ स्थापत्य विशेषज्ञोंने तो यहाँ तक अनुमान लगाया है, कि ओंकारेश्वर मन्दिर, कोल्हापुरका अम्बिका मन्दिर और अजमेरकी ख्वाजा साहबकी दरगाह—इन तीनोंकी रचनाशैलीमें बड़ी समानता है। सम्भव है, इनकी रचना-शैलीका मूल प्रेरणा स्रोत एक ही रहा हो और यह स्रोत जैनधर्म हो।

ओंकारेश्वर मन्दिरके जिन्होंने दर्शन किये हैं, ऐसे कुछ विद्वानोंकी तो धारणा है, कि सिद्धवरकूट इस ओंकारेश्वर पर्वत पर होना चाहिए। उनकी रायमें सिद्धवरकूट

१. मान्धाता = उस पहाड़ीका नाम जिस पर ओंकारेश्वर मंदिर है।

नामका कोई क्षेत्र नहीं है। इस पहाड़ीके ऊपरके कूटको सिद्धवरकूट कहा जाता था। यहाँका दृश्य बड़ा सुन्दर है। इस पहाड़ीके एक ओर कावेरी बहती है तो दूसरी ओर नर्मदा। ओंकारेश्वरका मन्दिर तिमंजिला है। इसके पासमें ही एक छतरी बनी हुई है। यहाँ कालभैरव वास करते हैं। इनके लिए अपना जीवन अर्पण करनेका विधान है। मुक्तकामी हिन्दू लोगोंकी धारणा थी, कि इस छतरीसे छलांग लगाकर पहाड़ीके नीचे बनी हुई शिलापर गिरकर मरनेसे मुक्ति मिलती है। इस विश्वासके अनुसार अनेक व्यक्ति यहाँसे मुक्तिकी दुराशामें मृत्युका आलिंगन करते रहे हैं। किन्तु अंग्रेज शासनने कानून द्वारा इस आत्महत्याको निषिद्ध करार दे दिया।

साढ़े पांच करोड मुनियोंने यहाँसे मुक्ति प्राप्त की अतः यहाँसे मुक्ति मिलती है, ऐसी धारणा होना स्वाभाविक है, रत्नत्रयरूप धर्मको भूला दिया है और पत्थरसे सिर फोड़कर आत्महत्या करनेको मुक्ति मान लिया है। यहाँसे मुक्ति मिलती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। यहाँसे साढ़े पाँच करोड़ मुनियोंको मुक्ति मिली थी। किन्तु वह मुक्ति उन्हें आत्महत्या द्वारा नहीं मिली, वरन् सम्पूर्ण आरम्भ-परिग्रहका त्याग करके सम्यक् तपस्या द्वारा कर्मोंका नाश करनेसे मिली थी। प्राचीन कालसे यहाँसे मुक्ति प्राप्तकी जो धारणा चली आ रही है, वह भी एक तथ्य है, जो हमें यह स्वीकार करने प्रेरित करता है, कि यही स्थान सिद्धवरकूट है। वर्तमानमें जो क्षेत्र है, वह ओंकारेश्वरसे बहुत निकट है। हिन्दू पुराणोंमें ओंकारेश्वरको बारह ज्योतिर्लिंगोंमेंसे एक ज्योतिर्लिंग माना है। ओंकारेश्वर मन्दिर जिस पहाड़ी पर है, वहाँ प्राचीन मन्दिरोंके भग्नावशेष पड़े हुए हैं। ये पुरातत्त्व विभागके अन्तर्गत हैं। यदि यहाँ खुदाई की जायें तो यहाँ जैन कलावशेष प्रचुर परिमाणमें मिलनेकी सम्भावना है।)

वैसे तो यहाँ चौदह धर्मशालाएँ है। यहाँ इन्दौर या खण्डवासे सनावद होकर जाया जा सकता है। मुक्तागिरिसे खण्डवा होकर यहाँ जाया जा सकता है।

इस क्षेत्र पर मन्दिर, धर्मशालाएँ और कार्यालय एक ही स्थान पर हैं। यहाँ पर मध्यमें तीन शिखरबन्धी जिनमन्दिर हैं। इस क्षेत्रके निकट नर्मदा व कावेरी दोनों नदीयाँ बहती है।

इस तीर्थकी सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीने वि.सं. २०१३, व २०२० में ससंघ भक्तिभाव सहित वंदना की थी।

श्री कैलाश (अष्टापद) पर्वत

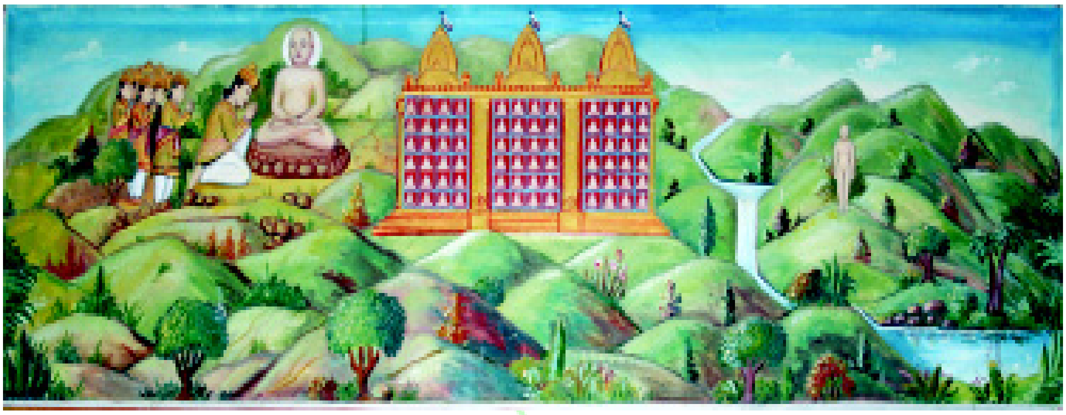

* निर्वाण भक्तिमें भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने बताया है, कि ऋषभदेव भगवान अष्टापद पर्वतसे मुक्त हुए।

* अष्टापदका दूसरा नाम कैलाश है। यहाँ भगवान श्री ऋषभदेवस्वामीने १००० राजाओंके साथ योगनिरोध किया व अन्तमें मोक्ष गये।

* इनके अलावा भी कई महापुरुषोंने यहाँ दीक्षा ली व मोक्ष गये। उनके कुछ नाम निम्न हैं :—

* बाहुबली मुनिन्द्र, महाराजा भरत, ऋषभसेन आदि गणधरोंने यहींसे मोक्ष प्राप्त किया।

* भरत चक्रवर्तीने यहाँ चार सिंहनिषद्या बनवायीं, जिनमें सिद्ध प्रतिमाएँ बिराजमान करायीं। इनके अतिरिक्त उन्होंने चौबीस तीर्थंकरों और अपने भाईयोंकी प्रतिमाएँ भी बिराजमान करायीं। उन्होंने यहाँ चौबीस तीर्थंकरों और निन्यानवे भाईयोंके स्तूप भी बनवाये थे।

* भगवान श्री ऋषभदेवके मोक्ष जाने पर उनकी समाधि देवोंने पूर्वदिशामें

ચક્રવર્તીના રાજકુમારો.
ચક્રવર્તીની રાણીઓ.

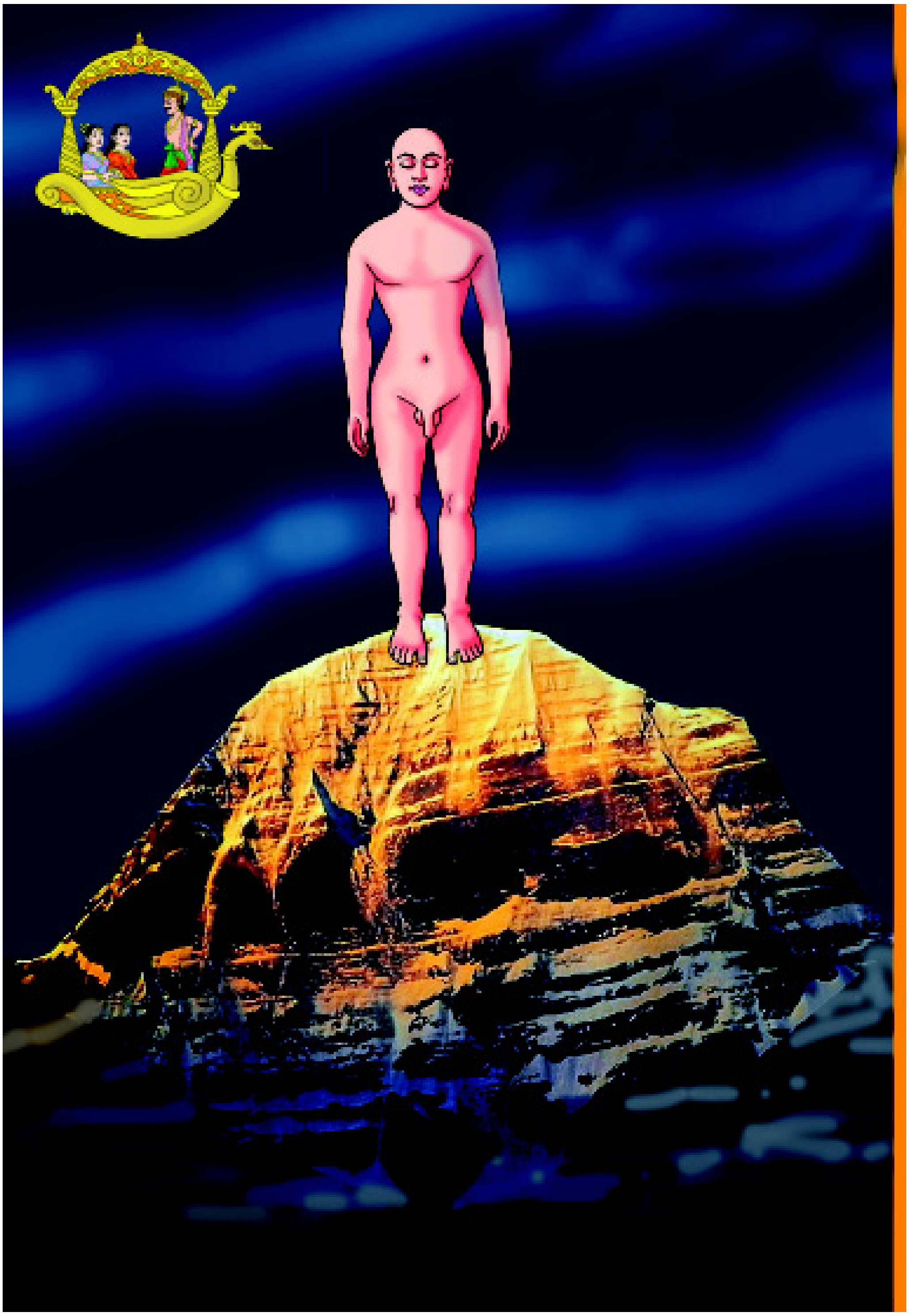

(१) कैलास पर्वत पर ध्यानस्थ बाली मुनिराजके उपरसे । आकाशमें जाते रावणका विमान रुकना ।

बनायी। भगवानके साथ जो मुनि मोक्ष गये थे, उनमें जो इक्ष्वाकुवंशी थे, उनकी समाधि दक्षिण दिशामें तथा शेष मुनियोंकी समाधि पश्चिम दिशामें बनायी गयी। बादमें तीनों दिशाओंमें स्मृतिचिन्हके स्थान पर देवोंने तीन स्तूपोंकी रचना की।

✻ अयोध्या नगरीके राजा त्रिदंशजयकी रानी इन्दुरेखा थी। उनके जितशत्रु नामक पुत्र था। जितशत्रुके साथ पोदनपुर नरेश व्यानन्दकी पुत्री विजयाका विवाह हुआ था। द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ इन्हींके कुलदीपक पुत्र थे। भगवानके पितामह त्रिदशंजयने मुनि-दीक्षा ली और कैलाश पर्वतसे मुक्त हुए।

✻ सगर चक्रवर्तीके उत्तराधिकारी भगीरथ नरेशने कैलाशमें जाकर मुनि-दीक्षा ली और गंगा-तटपर तप करके मुक्त हुए।

✻ अष्टापद शिखरसे बाल, महाबाल, अच्छेद्य, अबेद्य और नागकुमार मुनि मुक्त हुए। हरिषेण चक्रवर्तीका पुत्र हरिवाहन था। उसने कैलाश पर्वत पर दीक्षा ली और वहींसे निर्वाण प्राप्त किया।

✻ इन्द्रने अष्टापदपर रत्नत्रयके प्रतीक तीन स्तूप बनाये।

अनेक जैन ग्रंथोंमें उल्लेख मिलता है, कि कैलाश पर्वत पर भरत चक्रवर्ती तथा अन्य अनेक राजाओंने रत्नप्रतिमाएँ स्थापित करायी थीं।

✻ राजा सगरने उनके पुत्रोंको आज्ञा दी, कि भरत चक्रवर्तीने कैलाश पर्वत पर महारत्नोंसे त्रिकाल चौबीसीके बहत्तर अरहन्तोंके मन्दिर बनवाये थे। तुम लोग उस पर्वतके चारों और गंगा नदीको उन मन्दिरोंकी परिखा बना दो। उन राजपुत्रोंने भी पिताकी आज्ञानुसार दण्डरत्नसे वह काम शीघ्र कर दिया।

✻ इस घटनाके पश्चात् भरत चक्रवर्ती द्वारा कैलास पर्वत पर बनाये हुए जिनमन्दिरोंका उल्लेख बाली मुनिके प्रसंगमें आता है। एक बार लंकापति दशानन नित्यालोक नगरके नरेश नित्यालोककी पुत्री रत्नावलीसे विवाह करके आकाशमार्गसे जा रहा था। किन्तु कैलाश पर्वतके ऊपरसे जाते समय उसका पुष्पक विमान सहसा रुक गया। दशाननने विमान रुकनेका कारण जानना चाहा तो उसके अमात्य मारीचने कहा—''देव! कैलाशपर्वत पर एक मुनिराज प्रतिमायोगसे विराजमान हैं। वे घोर तपस्वी

प्रतीत होते हैं। इसीलिए यह विमान उनको अतिक्रमण नहीं कर सका है। दशाननने उस पर्वतपर उतर कर मुनिराजके दर्शन किये। किन्तु वह देखते ही पहचान गया, कि यह बाली है। उनके साथ अपने पूर्व संघर्षका स्मरण करके वह बड़े क्रोधमें भरकर बोला—

अरे दुर्बुद्धि! तू बड़ा तप कर रहा, कि अभिमानसे मेरा विमान रोक लिया, मैं तेरे इस अहंकारको अभी नष्ट किये देता हूँ। तू जिस कैलाश पर्वत पर बैठा है, उसे उखाड़ कर तेरे ही साथ अभी समुद्रमें फेंकता हूँ।'' यह कहकर दशाननने ज्यों ही अपनी भुजाओं द्वारा विद्याबलकी सहायतासे कैलाशको उठाना प्रारम्भ किया, मुनिराज बालीने अवधिज्ञानसे दशाननके इस दुष्कृत्यको जान लिया।

तब वे विचार करने लगे—भरत चक्रवर्तीने ये नाना प्रकारके सर्व रत्नमयी ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिर बनवाये हैं। भक्तिसे भरे हुए सुर और असुर प्रतिदिन इनकी पूजा करते हैं। अतः इस पर्वतके विचलित हो जाने पर कहीं ये जिनमन्दिर नष्ट न हो जावें।

ऐसा विचार कर मुनिराजने पर्वतको अपने पैरके अँगूठेसे दबा दिया। दशानन दब गया और बुरी तरह रोने लगा। तभीसे उसका नाम रावण पड़ गया। तब दयावश उन्होंने अंगूठा ढीला कर दिया और रावण पर्वतके नीचेसे निकलकर निरभिमान हो मुनिराजकी स्तुति करने लगा। महामुनि बाली घोर तपस्या करके कैलाशसे मुक्त हुए।

* अञ्जना व पवनञ्जयका विवाह भी इसी कैलाश पर्वत पर हुआ था।

* विद्याधर भी कैलाश-यात्रा हेतु यहाँ आते थे, ऐसे पुराणोल्लेख हैं।

(कैलाशकी आकृति ऐसे लिंगाकारकी है, जो षोडश दलवाले कमलके मध्यमें खड़ा हो। उन सोलह दलवाले शिखरोंमें सामनेके दो श्रृंग झुककर लम्बे हो गये हैं। इसी भागसे कैलाशका जल गौरीकुण्डमें गिरता है।

कैलाश इन पर्वतोंमें सबसे ऊँचा है। उसका रंग कसौटीके ठोस पत्थर जैसा है। किन्तु बर्फसे ढँके रहनेके कारण वह रजत वर्ण प्रतीत होता है। दूसरे श्रृंग कच्चे लाल मटमैले पत्थरके हैं। कैलाशके शिखरकी ऊँचाई समुद्रतलसे १९००० फूट है।

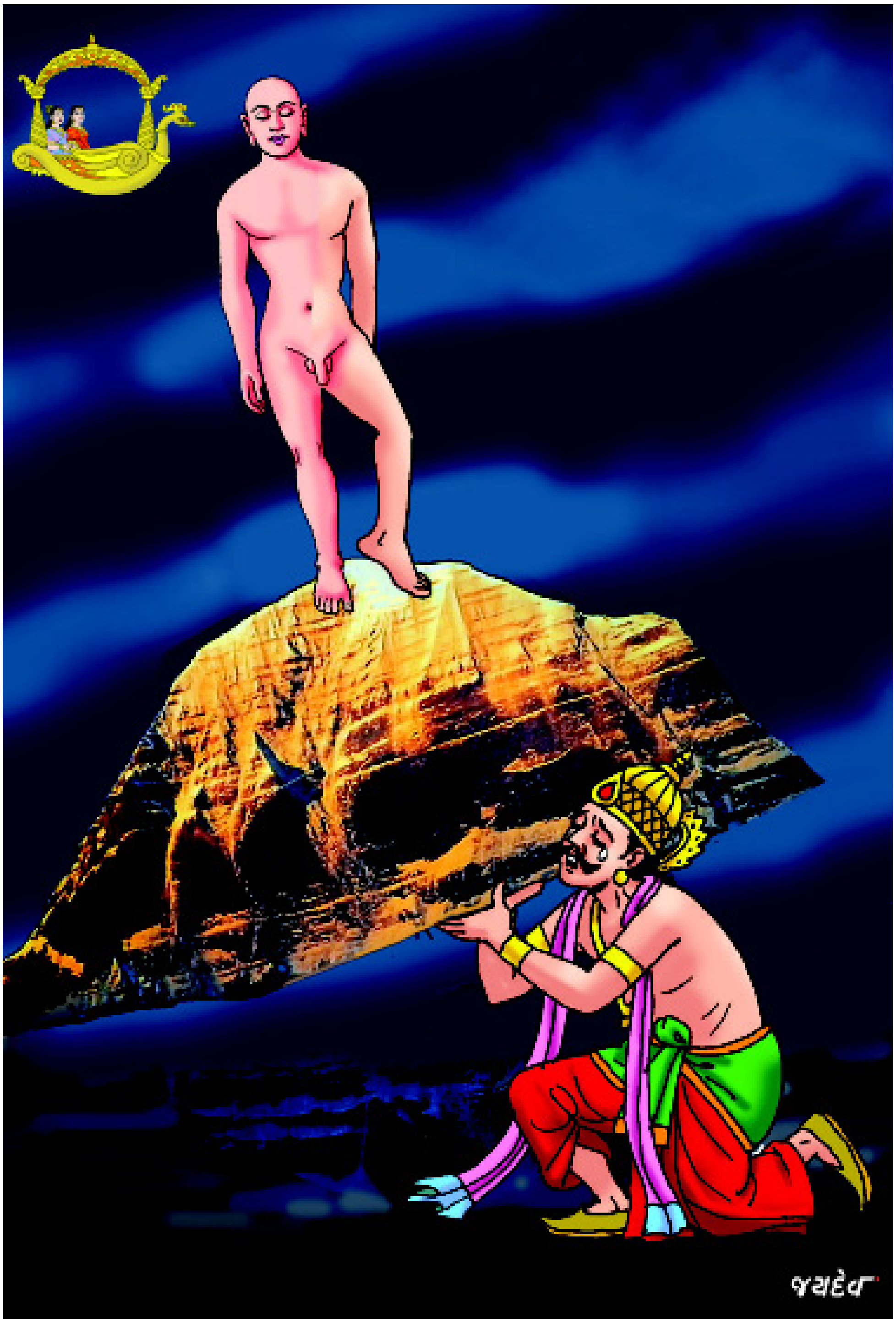

पूर्व वैरवश बाली मुनिराजको गिराने हेतु रावणका पर्वतको हिलाना देखकर बाली मुनिराजका रत्नोंकी चोबीसी और पशु-पक्षीकी रक्षा हेतु अंगूठ दबाना । रावणनका चित्कार और मुनिसे क्षमा याचना

उसकी चौड़ाई डेढ मीलकी है, व पहाड़ पर चढ़ना बहुत ही कठिन है।

कैलाशकी ओर ध्यानपूर्वक देखनेसे एक आश्चर्यजनक बात दृष्टिमें आती है, वह यह बात है, कि कैलाशके शिखरके चारों कोनोंमें ऐसी मन्दिराकृति स्वतः बनी हुई है, जैसे बहुतसे मन्दिरोंके शिखरों पर चारों ओर बनी होती है।

तिब्बतकी ओरसे यह पर्वत ढलानवाला है। उधर तिब्बतियोंके बहुत मन्दिर बने हुए हैं। बहुतसे तिब्बती तो इसकी बत्तीस मीलकी परिक्रमा दण्डवत् प्रणिपात द्वारा लगाते हैं। 'लिंग-पूजा' शब्दका प्रचलन तिब्बतसे ही प्रारम्भ हुआ है। तिब्बती भाषामें लिंगका अर्थ क्षेत्र या तीर्थ है। अतः लिंगपूजाका अर्थ तीर्थपूजा हुआ।)

सारा कैलाश पर्वत हिमसे आच्छादित होनेसे इसे हिमवान पर्वत ही कहते हैं। उस परसे कई लोगोंकी यह मान्यता बन जाती है, कि यह वही हिमवान पर्वत है, जहाँ पद्म सरोवर है जिसमेंसे वर्तमानमें गंगा आदि निकलती है, पर यह मान्यता योग्य प्रतीत नहीं होती क्योंकि शास्त्रोक्त हिमवान पर्वतके पूर्व व पश्चिमका अन्त लवण समुद्रके तट पर है, जो कि यहाँ नहीं पाया जाता है।

* इस पर्वतको अष्टापद व कैलाश व धवलगिरि (बर्फसे आच्छादित धवलरूप यह गिरि होनेसे यह धवलगिरि कहा जाता है।) कहते है।

* आजकल ऋषिकेष, जोशीमठ, बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री और कैलाश आदि—ये आठ क्षेत्रवाला प्रदेश ही अष्टापद कहा जाता है। यहाँ एक ही पर्वतकी श्रृंखलाएँ फैली हुई हैं। यह प्राचीन जैन तीर्थंकर प्रतिमा सह तीर्थ है, बीचमें बौद्धों द्वारा व प्रवर्तमान हिन्दुओंके कब्जेके तीर्थ हैं। यह सारा इतिहास बहुत ही लम्बा व इतिहासरसिकों द्वारा पढनीय है। जिससे ख्याल आयेगा, कि यह किस भांति दिगम्बर तीर्थ व रत्नप्रतिमाओं, तथा भगवान ऋषभदेवकी प्रतिमा आदिमय यह पर्वत है। अतः यह एक दिगम्बर तीर्थ है व सिद्धक्षेत्र हैं।

यहाँ जानेके लिये रेल, बस, व पैदल त्रिमिश्र पद्धतिका सहारा लेना पड़ता है। तब ही सभी क्षेत्रके यथार्थतया दर्शन हो सकते हैं। अक्सर सभी तीर्थ पर प्रक्षालके समय दर्शनसे दिगम्बर प्रतिमाके दर्शन होते हैं।

श्री गिरनार सिद्धक्षेत्र (सौराष्ट्र)

✻ जिस क्षेत्र परसे तीर्थंकरोंका एक भी कल्याणक होता है, आगमानुसार वह क्षेत्र मंगल माना गया है, तो यहाँ (गिरनार)से भगवान अरिष्टनेमिके तप, ज्ञान व निर्वाण ऐसे तीन-तीन कल्याणक हुए हैं, अतः यह क्षेत्र मंगलस्वरूप तो है ही, तदुपरांत यह क्षेत्र तीर्थभूमि व सिद्धक्षेत्र भी है।

✻ यह गिरनारगिरि, रैवतगिरि व ऊर्ज्जयन्तगिरिके नामसे प्रसिद्ध है।

✻ इस क्षेत्र पर कई कल्याणकारी घटनाएँ घटी हैं उनमेंसे कुछ निम्नोक्त हैं।

✻ इस गिरनार (ऊर्ज्यन्त) गिरिके सहस्राम्रवनमें भगवान श्री नेमिनाथके दीक्षा कल्याणक व छप्पन दिन पश्चात् ज्ञानकल्याणक हुए हैं। वहाँ इन्द्रने असंख्य देवोंके साथ केवलज्ञानकी पूजा आदि करके केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव मनाया था। वे भगवान केवलज्ञान अवस्थामें भरतक्षेत्रमें ६९९ वर्ष दस मास चार दिन रहे थे।

✻ भगवानका अन्तिम उपदेश इस ही पर्वत पर हुआ था।

✻ इसी क्षेत्रसे करोड़ों मुनियोंने मोक्ष प्राप्त किया था। इस सम्बन्धमें आगममें दो उल्लेख आते हैं। (१) यह सातसो बहत्तर करोड़ मुनियोंकी निर्वाणस्थली है। (२)

यहाँसे बहत्तर करोड़ सातसो मुनिराज मोक्ष गये हैं। उसमेंसे अधिकांश स्थलों पर बहत्तर करोड़ सातसो मुनिराजके मोक्षगमनकी बात मिलती होनेसे यह संख्या ही योग्य प्रतीत होती है।

✻ यहाँसे समुद्रविजय आदि नौ भाई, देवकीके युगलिया छः पुत्र, शम्बुकुमार, प्रद्युम्नकुमार, अनिरुद्धकुमार आदि बहत्तर करोड़ सातसो मुनिराज मोक्ष पधारे हैं। उनमेंसे जाम्बवतीका पुत्र शम्बुकुमार तीसरी टोंक परसे, अनिरुद्धकुमार दूसरी टोंकसे व प्रद्युम्नकुमार चौथी टोंकसे मोक्ष गये हैं। इन तीनों स्थान पर उनके चरणचिह्न उत्कीर्ण किये हुए हैं।

✻ गजसुकुमार मुनिराज पर भी यहीं उपसर्ग हुआ था। उनके उपसर्गका व अन्तःकृत केवली होनेके समाचार यादवोंने सुने तो वसुदेवको छोड़कर समुद्रविजय आदि राजाओंने दीक्षा ग्रहण कर ली व शिवादेवी आदि माताओंने, देवकी और रोहिणीको छोड़कर वसुदेवकी अन्य स्त्रियोंने व कृष्णकी पुत्रीओंने अर्जिका व्रत अंगीकार कर, दीक्षा ले ली।

✻ भगवान श्री नेमिनाथने जिस स्थानसे मोक्ष प्राप्त किया उस स्थान पर इन्द्रने वज्रसे सिद्धशिलाका निर्माण किया व चरण-चिह्न उत्कीर्ण किये।

✻ यहाँ इन्द्र द्वारा भक्तिवश भगवानके चरणचिह्न अंकित करनेके उपरांत, भक्तिवश इन्द्रने यहाँ भगवानकी भव्य मूर्तिकी भी स्थापना की थी। इस मूर्तिकी विद्यमानता विक्रमकी चौदह-पंद्रहवीं शताब्दी तक थी।

✻ यहाँ पर अम्बिका देवीका मन्दिर है, जो वर्तमानमें हिन्दुओंके कब्जेमें है। पर इतिहासके प्रमाणोंसे ज्ञात होता है, कि यह मन्दिर मूलतः दिगम्बरका था। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव जब गिरनार यात्राके लिये यहाँ पधारे थे, तब श्वेताम्बर साधुओंसे चर्चामें जो जीत हुई उसमें अम्बिकादेवीने मदद की थी।

यह अम्बिका देवी दिगम्बर जैनोंकी क्यों मदद करती है? उसकी कथासे ज्ञात होता है, कि पूर्वभवमें ब्राह्मणी होने पर भी उसने वरदत्त मुनिराजको पडगाहा, जिससे उसके ब्राह्मण पतिने उसे मारा, अतः वह गिरनार पर उसके पुत्रों सह आ गई, पीछे उसके पुण्योदयसे कुछ दैवी घटनाएँ देख गाँवके लोग व उसका पति उसे देवीके रूपमें मानने लगे। उस ब्राह्मणको अपनी भूल समझाई अतः वह उस ब्राह्मणीको लेने आया। वह पतिको आते देख घबराई और पर्वतसे फिसलकर देवी हुई इस प्रकार उसे सदा नेमिनाथ भगवान व दिगम्बर धर्म माननेवालोंके प्रति प्रेम होनेसे उन्हें मदद करती है।

* चतुर्थ श्रुतकेवली गोवर्धनस्वामी व पञ्चम श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी गिरनारकी यात्रा हेतु यहाँ पधारे थे। तदुपरांत भगवान धरसेनाचार्यने इस ही गिरनारकी चन्द्रगुफामें भगवान पुष्पदंत व भूतबलि आचार्यकी परीक्षा ली थी व षट्खंडागमका ज्ञान दिया था। तदुपरांत हरिवंशपुराण रचयिता आचार्य जिनसेनस्वामी (प्रथम) भी यहाँ यात्रा हेतु पधारे थे। उस ही समय हरिवंशपुराणकी रचना हुई थी।

* यहाँ कई शिलालेख उपलब्ध हैं, जिससे भगवान श्री नेमिनाथ, उनका निर्वाण, उनके त्रिकल्याणकोंका इसी गिरनार (रैवतगिरि, ऊर्ज्यन्तगिरि) पर होनेके प्रमाण हैं।

श्री पुष्पदंत और भूतबलिको षटखंडागमका ज्ञान देते हुए श्री धरसेनाचार्यदेव

* यह क्षेत्र प्राचीनकालसे दिगम्बर जैनोंका है। गिरनार पर ग्यारह-बारहवीं शताब्दी पूर्वकी कोई श्वेताम्बर प्रतिमाएँ नहीं हैं। ई.स. पूर्व तीनसोके आसपास जब इधर बारह वर्षका दुःसह अकाल पड़ा था, तत्पश्चात जो मुनि यहाँ रहे थे, उनमेंसे दिगम्बर मुनियोंका दक्षिणसे बारह वर्ष पश्चात् इस ओर आना हुआ, तब गुरु द्वारा समझानेसे कईओंने तो पुनः दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की, पर कई न माने व उनके माननेवाले श्वेताम्बर भेष ही मानने लगे। परन्तु वे ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी तक गिरनार आते, तब वे दिगम्बर प्रतिमा ही पूजते थे। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी पश्चात् श्वेताम्बर समाजने यहाँ श्वेताम्बर मंदिर बनवाये।

यहाँ पर पाँच टोंक हैं। सहस्राम्रवन जानेका रास्ता पहली टोंकसे है। यहाँ पर भगवान नेमिनाथका दीक्षाकल्याणक हुआ होनेसे यहाँ पर भगवानके चरणचिह्न बने हुए हैं।

यहाँ सभी जगह पक्की सीड़ियाँ बनी हैं।

कुल सीड़ी ९९९९ हैं, पहली टोंक तक ४४००, पहलीसे दूसरी टोंक तक ४००, दूसरीसे तीसरी टोंक तक ७०० व तीसरीसे पांचवीं टोंक तक २५००, तथा सहस्राम्रवनके लिए १९९९ सीड़ीयाँ हैं। चौथी टोंक के लिए सीड़ीयोंकी व्यवस्था नहीं है। पथ्थरों पर चढ़कर वहाँ जाना पड़ता है।

तलहटीके मन्दिर व धर्मशालाके पाससे पहाड़ पर जानेकी सीड़ीयाँ हैं। पहली टोंक पर धर्मशाला, मन्दिर व राजुलकी गुफा है। यहाँ चौदह ईंच लम्बे कुंदकुंदाचार्यदेवके चरण हैं।

राखेंगार दुर्गके दरवाजेके पास भगवान श्री नेमिनाथका दर्शनीय मंदिर है, जो पहले दिगम्बर मंदिर था, पश्चात् श्वेताम्बरोंने भगवानको आभरणयुक्त कर दिया है।

दूसरी टोंक पर अनिरुद्धकुमारने तप और निर्वाण प्राप्त किया था। यहाँ छोटी छतरीमें अनिरुद्धकुमारके चरण चिह्न हैं।

तीसरी टोंक पर शम्बूकुमारके तप और निर्वाण प्राप्तिके निमित्त उनके चरण हैं।

चौथी टोंक पर प्रद्युम्नकुमारके मोक्षकल्याणक हेतु चरणचिह्न हैं।

पांचवीं टोंक पर भगवान नेमिनाथके चरण चिह्न हैं। उसके पीछे भगवान नेमिनाथकी दिगम्बर प्रतिमा विराजमान है। हालमें वैष्णव लोग उसे दत्तात्रय मानते हैं।

तलहटी मन्दिर धर्मशाला उपरान्त शहरमें ऊपरकोट विस्तारमें दिगम्बर धर्मशाला व जिनमंदिर हैं।

यहाँ पर अहमदाबाद, राजकोट, भावनगरसे बसों द्वारा व रेलमार्गसे आया जा सकता है।

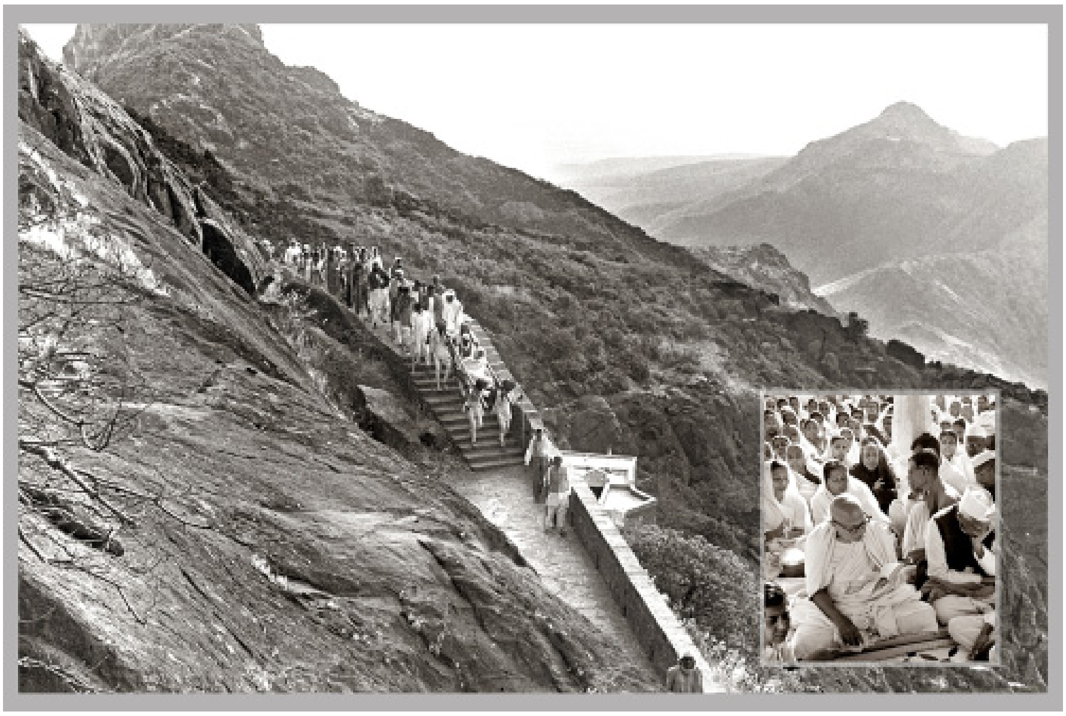

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा ससंघ गिरनारजी तीर्थयात्रा

इस तीर्थकी पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीने वि.सं. १९९६, (इ.स. १९४०), वि.सं. २०३०, (इ.स. १९७४)में ससंघ भक्तिभाव सहित वंदना की थी।

श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्रदेवका दीक्षा कल्याणक

धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वविदेहक्षेत्रमें सीता नदीके दक्षिण तट पर वत्स देश है। उसके सुसीमा नगरमें महाराजा अपराजित राज्य करते थे। महाराज अपराजित वास्तवमें अपराजित थे क्योंकि उन्हें शत्रु कभी भी नहीं जीत सकते थे और उन्होंने अंतरंग तथा बहिरंग सभी शत्रुओंको जीत लिया था। वह राजा कुटिल मनुष्योंको अपने पराक्रमसे जीत लेता था। अतः बाहुबलसे सुशोभित उस राजाकी सप्तांग सेना केवल बाह्य आडम्बर मात्र थी। उनका राज्य दूसरोंके द्वारा घर्षणीय-तिरस्कार करनेके योग्य नहीं था। इस प्रकार अनेक भवोंमें उपार्जित पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त तथा अनेक सुहृदयी मित्रोंमें बटे हुए राज्यका उन्होंने चिरकाल तक उपभोग किया।

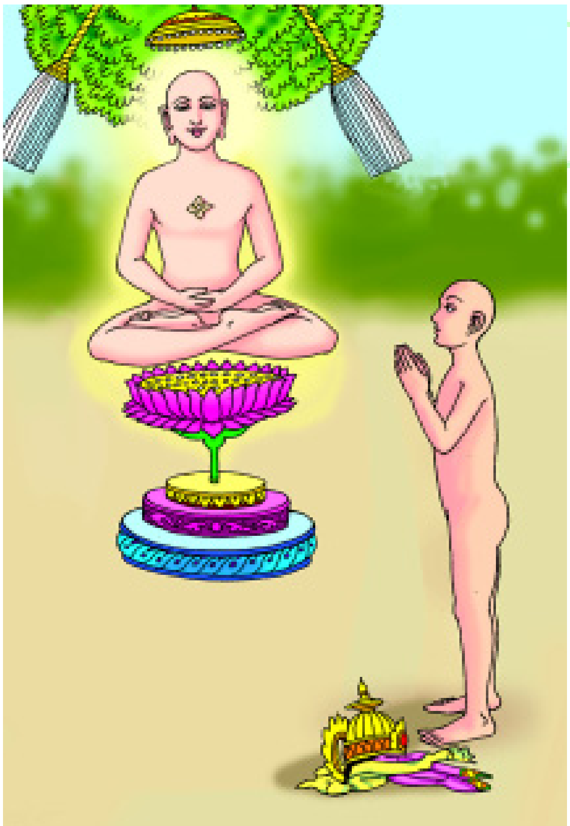

जंगलमें अपराजित राजा द्वारा मुनिदीक्षा

तदनन्तर वे विचार करने लगे कि इस संसारमें समस्त पर्यायें क्षणभंगुर हैं, सुख पर्यायोंके द्वारा भोगा जाता है और कारणका विनाश होने पर कार्यकी स्थिति कैसी हो सकती है? इस प्रकार ऋजुसूत्रनयसे सब पदार्थोंको क्षणभंगुर स्मरण करते हुए राजाने अपनी आत्माको वश करनेके लिये सुमित्र पुत्रके लिए राज्य दे दिया तथा वनमें जाकर पिहिताश्रव

जिनेन्द्रको दीक्षा-गुरु बनाया, ग्यारह अंगोंका अध्ययन कर सोलहकारण भावना भाकर तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया।

आयुके अन्तमें समाधिमरणके द्वारा शरीर छोड़कर अत्यन्त रमणीय ऊर्ध्व ग्रैवेयकके प्रीतिंकर विमानमें अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। वहाँ इकतीस सागरकी इनकी आयु थी, दो हाथ ऊँचा शरीर था, शुक्ललेश्या थी, चारसौ पैसठ दिनमें श्वासोच्छवास ग्रहण करते थे, इकतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहारसे सन्तुष्ट होते थे, अपने तेज, बल तथा अवधिज्ञानसे सप्तमी पृथ्वीको व्याप्त करते थे और वहीं तक उनकी विक्रियाऋद्धि थी। इस प्रकार अहमिन्द्र सम्बन्धी सुख उन्हें प्राप्त थे। आयुके अन्तमें वहाँसे चयकर पृथ्वी पर अवतार लेनेके लिए वे उद्यत हुए।

उसी समय जम्बूद्वीपकी कौशाम्बी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी काश्यपगोत्री धरण नामका एक बड़ा राजा था। उसकी सुसीमा नामकी रानी थी। जो रत्नवृष्टि आदि अतिशयोंसे सम्मानित थी। माघकृष्ण षष्ठीके दिन प्रातःकालके समय जब चित्रा नक्षत्र और चन्द्रमाका संयोग हो रहा था। तब रानी सुसीमाने हाथी आदि सोलह स्वप्न देखनेके बाद मुखमें प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा। पतिसे स्वप्नोंके फलमें तीर्थंकर अवतरणकी बात जानकर वह बहुत ही हर्षित हुई।

कार्तिक मासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीके दिन त्वष्टयोगमें उसने लाल कमलकी कलिकाके समान कान्तिवाले अपराजित पुत्रको जन्म दिया। इस पुत्रकी उत्पत्ति होते ही गुणोंकी उत्पत्ति हुई, दोष समूहका नाश हुआ और हर्षसे समस्त प्राणीओंका शोक शान्त हो गया। स्वर्ग और मोक्षके मार्ग चलानेवाले भगवानके उत्पन्न होते ही, मोहरूपी शत्रु कान्तिरहित हो गया। उसी समय इन्द्रोंने मेरु पर्वत पर ले जाकर क्षीरसागरके जलसे उनका अभिषेक किया। हर्षसे 'पद्मप्रभ' नाम रखकर, स्तुति की, तदनन्तर महाकान्तिमान जिन-बालकको वापस लाकर माताकी गोदमें रखकर इन्द्रने हर्षित होकर नृत्य किया और फिर स्वर्गकी ओर प्रस्थान किया।

भगवान श्री पद्मप्रभके शरीरकी जैसी सुन्दरता थी, वैसी सुन्दरता न तो शरीरसहित कामदेवमें थी और न किसी मनुष्यमें भी। यथार्थमें उनकी सुन्दरताका वर्णन नहीं हो सकता। जब श्री सुमतिनाथ भगवानकी तीर्थ परम्पराके नब्बे हजार करोड़ सागर बीत गये तब भगवान पद्मप्रभ उत्पन्न हुए थे। तीस लाख पूर्व उनकी आयु थी, दो सौ पचास धनुष ऊँचा शरीर था और देव लोग उनकी पूजा करते थे। जब उनकी आयुका एक चौथाई भाग बीत चुका, तब उन्होंने एकछत्र राज्य प्राप्त किया। उनका वह राज्य क्रम प्राप्त था, अर्थात् वंश परंपरासे चला आ रहा था। सो ठीक ही है, क्योंकि सज्जन मनुष्य उस राज्यकी इच्छा नहीं करते हैं, जो अन्य रीतिसे प्राप्त होता है। जब भगवान श्री पद्मप्रभको राज्यपट्ट बाँधा गया तब सबको ऐसा हर्ष हुआ मानो मुझे ही राज्यपट्ट बाँधा गया हो। उनके देशोंमें आठों महाभय समूल नष्ट हो गये और सब सम्पदाओंका समागम सहज ही हो गया।

इस प्रकार जब श्री भगवान पद्मप्रभको राज्य प्राप्त हुआ तब संसार मानो सोनेसे जाग पड़ा। सो ठीक ही है, क्योंकि राजाओंका राज्य वही है जो प्रजाको सुख देनेवाला

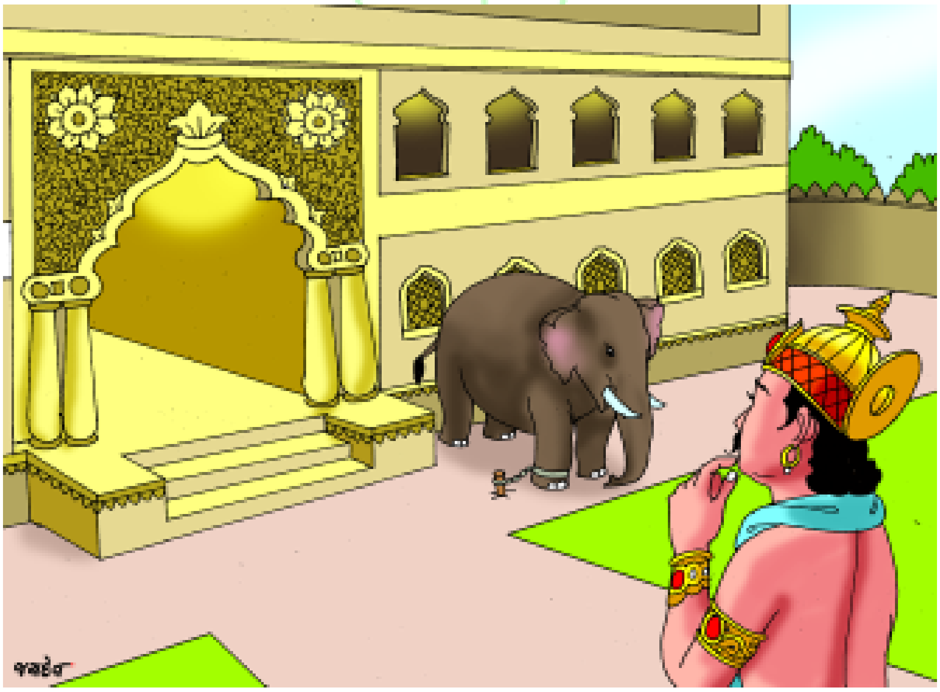

पद्मप्रभ राजाके महेलके दरवाजे पर बंधा हाथी देख वैराग्य

हो। जब उनकी आयु सोलह पूर्वांग कम एक लाख पूर्वकी रह गयी तब किसी समय दरवाजे पर बँधे हुए हाथीकी दशा देखनेसे उन्हें अपने पूर्व भवोंका ज्ञान हो गया और तत्त्वोंके स्वरूपको जाननेवाले वे संसारको धिक्कारने लगे। वे पाप तथा दुःखोंको देनेवाले काम-भोगोंमें विरक्त होकर विचारने लगे कि इस संसारमें ऐसा कौनसा पदार्थ है जिसे मैंने देखा न हो, छुआ न हो, सूँघा न हो, सुना न हो, और खाया न हो जिससे वह नयेके समान जान पड़ता है। यह जीव अपने पूर्वभवोंमें जिन पदार्थोंका अनन्तबार उपभोग कर चुका है, उन्हें ही बार-बार भोगता है। अतः अभिलाषारूप सागरके बीच पड़े हुए इस जीवसे क्या कहा जाये? घातिया कर्मोंके नष्ट होने पर इसके केवलज्ञानरूपी उपयोगमें जबतक सारा संसार नहीं झलकने लगता, तबतक मिथ्यात्व आदिसे दूषित इन्द्रियोंसे इसे तृप्ति नहीं हो सकती। यह शरीर रोगरूपी साँपोंकी वामी है तथा यह जीव देख रहा है कि हमारे इष्टजन इन्हीं रोगरूपी साँपोंसे काटे जाकर नष्ट हो रहे हैं; फिर भी यह शरीरको अविनाशी जान मोह कर रहा है, यह बड़ा आश्चर्य है। क्या आजतक कहीं किसी जीवने आयुके साथ शाश्वत सहवास किया है? अर्थात् नहीं किया।

जो हिंसादि पाँच पापोंको धर्म मानता है और इन्द्रिय तथा पदार्थके सम्बन्धसे होनेवाले सुखको सुख समझता है, उसी विपरीतदर्शी, मनुष्यको यह संसार रुचता है– अच्छा मालूम होता है। जिस कार्यसे पाप और पुण्य दोनोंका नाश हो जाता है, विद्वानोंको सदा उसीका ध्यान करना चाहिए, उसीका आचरण करना चाहिए और उसीका अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार संसार, शरीर और भोग इन तीनोंसे जिन्हें मुनिदशा होनेयोग्य आत्मज्ञान (आत्म परिणतिकी प्रचुर निर्मलतारूप आत्मज्ञान) उत्पन्न हुआ है, लौकान्तिक देवोंने जिनका उत्साह बढ़ाया है और चतुर्निकाय देवोंने जिनके दीक्षाकल्याणकका अभिषेकोत्सव किया है ऐसे भगवान पद्मप्रभ, निवृत्ति नामकी पालकीपर सवार होकर मनोहर

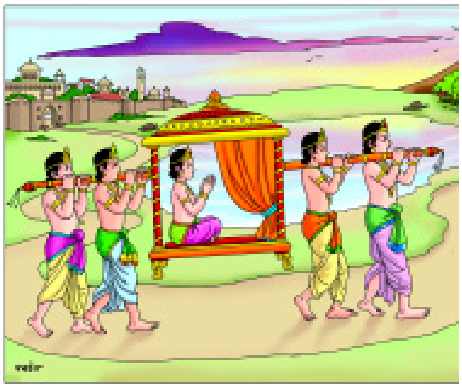

पद्मप्रभ भगवानका दीक्षा हेतु वनगमन

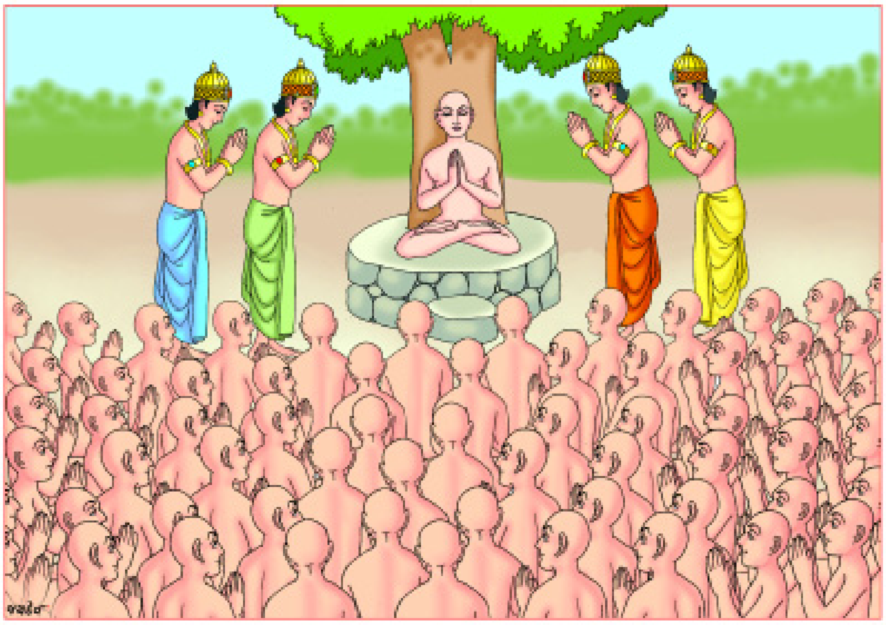

भगवान श्री पद्मप्रभका दीक्षाकल्याणक

नामके वनमें गये और वहाँ बेलाका नियम लेकर कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीके दिन शामके समय चित्रा नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ आदरपूर्वक उन्होंने शिक्षाके समान दीक्षा धारण कर ली। जिन्हें मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया है, ऐसे विद्वानोंमें श्रेष्ठ पद्मप्रभ स्वामी दूसरे दिन चर्याके लिए वर्धमान नामक नगरमें प्रविष्ट हुए। शुक्लकान्तिके धारक राजा सोमदत्तने उन्हें दान देकर पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। सो ठीक ही है, क्योंकि पात्रदानसे क्या नहीं होता है? शुभ आस्रवोंसे पुण्यका संचय व गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह-जय तथा चारित्र इन छह उपायोंसे कर्म समूहका संवर और तपके द्वारा निर्जरा करते हुए उन्होंने छद्मस्थ अवस्थाके छह माह मौनसे व्यतीत किये। तदन्तर क्षपकश्रेणी पर आरूढ होकर उन्होंने चार घातिया कर्मोंका नाश किया तथा चैत्र शुक्ल पूर्णमासीके दिन जब कि सूर्य मध्याह्नसे कुछ नीचे ढल चुका था तब चित्रा नक्षत्रमें भगवानने कल्याणकारी केवलज्ञान प्राप्त किया। उसी समय इन्द्रोंने आकर उनकी पूजा की।

श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रका दीक्षा कल्याणक

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें एक चन्द्रपुर नामका नगर था। उसमें इक्ष्वाकुवंशी काश्यपगोत्री तथा आश्चर्यकारी वैभवको धारण करनेवाले महासेन नामके राजा राज्य करते थे। उनकी महादेवीका नाम लक्ष्मणा था। लक्ष्मणाने अपने घरके आंगनमें देवोंके द्वारा बरसायी हुई रत्नोंकी धारा प्राप्त की थी। श्री, ह्रीं आदि देवियाँ सदा उसे घेरे रहती थीं। देवोपनीत वस्त्र, माला, लेप तथा शय्या आदि सुखोंका समुचित उपभोग करनेवाली रानी चैत्र कृष्ण पंचमीके दिन पिछली रात्रिमें सोलह स्वप्न देखकर संतुष्ट हुई।

सूर्योदयके समय उन्होंने उठकर अच्छे-अच्छे वस्त्राभरण धारण किये तथा प्रसन्नमुख होकर सिंहासन पर बैठे हुए अपने पतिसे सब स्वप्न निवेदन किये। राजा महासेनने

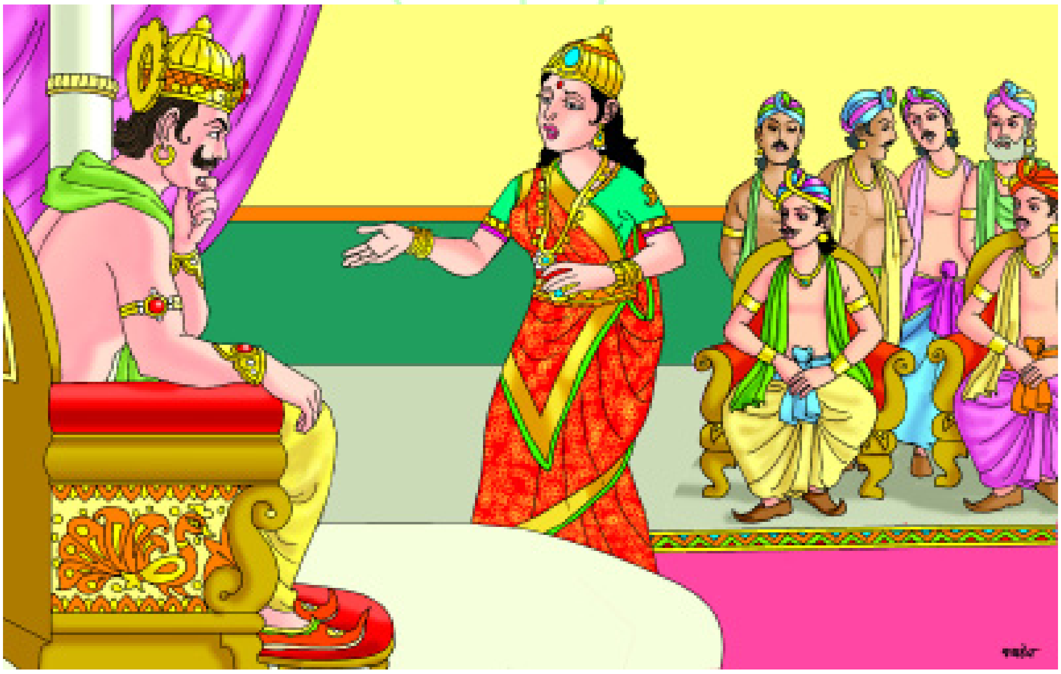

प्रधानों सहितकी सभामें रानी द्वारा राजाको स्वप्नके फल पूछना

भी अवधिज्ञानसे उन स्वप्नोंका फल तीर्थंकर प्रभुका अवतरण जानकर रानीको प्रमोदपूर्वक बतलाया। जिन्हें सुनकर वे बहुत ही हर्षित हुईं। श्री, ह्रीं, धृति आदि देवियाँ उस माताकी कान्ति, लज्जा, धैर्य, कीर्ति, बुद्धि और सौभाग्य सम्पत्तिको सदा बढ़ाती रहती थीं। इस प्रकार कितने ही दिन व्यतीत हो जाने पर पौषकृष्ण एकादशीके दिन शक्रयोगमें देवपूजित, अचिन्त्य प्रभाके धारक और तीन ज्ञानसे संपन्न अहमिन्द्ररूप पुत्रका अवतार हुआ।

उसी समय इन्द्रने आकर महामेरुके शिखर पर विद्यमान सिंहासन पर उक्त जिन-बालकको विराजमान किया, क्षीरसागरके जलसे उनका अभिषेक कर, सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित किया, तीनलोकके राज्यकी कण्ठी बाँधी और फिर प्रसन्नतासे हजार नेत्र बनाकर उन्हें देखा। उनके उत्पन्न होते ही यह पृथ्वी-मण्डलका समूह अथवा नील-कमलोंका समूह अत्यन्त विकसित हो गया था। इसलिए इन्द्रने व्यवहारकी प्रसिद्धिके लिए उनका 'चन्द्रप्रभ' यह सार्थक नाम रखा। इन्द्रने इन त्रिलोकीनाथके आगे 'आनन्द' नामक नाटक किया। तदनन्तर उन्हें लाकर माता-पिताको सौंप दिया। 'तुम भोगोपभोगकी योग्य वस्तुओंके द्वारा भगवानकी सेवा करो'। इस प्रकार कुबेरके लिए सन्देश देकर इन्द्र अपने स्थान पर चला गया। यद्यपि विद्वान लोग स्त्री-पर्यायको निन्द्य बतलाते हें, तथापि लोगोंका कल्याण करनेवाले जगत्पति भगवानको धारण करनेसे यह लक्ष्मणा रानी बड़ी ही पुण्यवंती है, बड़ी ही पवित्र है', इस प्रकार देव लोग उसकी स्तुति कर महान फलको प्राप्त हुए थे तथा 'इस प्रकारकी स्त्री-पर्याय श्रेष्ठ है' ऐसा देवीयोंने भी स्वीकृत किया था।

भगवान श्री सुपार्श्वनाथके मोक्ष जानेके बाद जब नौ सौ करोड़ सागरका अन्तर बीत चुका तब भगवान श्री चन्द्रप्रभ उत्पन्न हुए थे। उनकी आयु भी इसी अन्तरमें सम्मिलित थी। दश लाख पूर्वकी उनकी आयु थी, एक सौ पचास धनुष ऊँचा शरीर

था, द्वितीयाके चन्द्रमाकी तरह वे बढ़ रहे थे तथा समस्त संसार उनकी स्तुति करता था। 'हे स्वामिन्! आप इधर आइये', इस प्रकार कुतूहलवश कोई देवी उन्हें बुलाती थी। वे उसके फैलाये हुए हाथों पर कमलोंके समान अपनी हथेलियाँ रख देते थे। उस समय कारणके बिना ही प्रकट हुई मन्द मुस्कानसे उनका मुखकमल बहुत ही सुन्दर दिखता था। वे कभी मणिजड़ित पृथ्वी पर लड़खडाते हुए पैर रखते थे।

इस प्रकार उस अवस्थाके योग्य भोलीभाली शुद्ध चेष्टाओंसे बाल्यकालको बिताकर वे सुखाभिलाषी मनुष्योंके द्वारा चाहने योग्य कौमार्य अवस्थाको प्राप्त हुए। उस समय वहाँके लोगोंमें कौतुकवश इस प्रकारकी बातचीत होती थी, कि हम ऐसा समझते हैं, कि विधाताने इनका शरीर अमृतसे ही बनाया है। उनका शरीर शुक्ल था और भाव भी शुक्ल उज्ज्वल थे। उनके शरीरकी कान्ति ऐसी सुशोभित होती थी मानो सूर्य और चन्द्रमाकी मिली हुई कान्ति हो। इसीलिए तो उनके समीप निरन्तर कमल और कुमुद दोनों ही खिले रहते थे। उनके गुण निर्मल थे अतः उनसे जो लक्ष्मी और कीर्ति उत्पन्न हुई थी, वह भी निर्मल ही थी। जो बहुत भारी विभूतिसे सम्पन्न हैं, जो स्नान आदि मांगलिक कार्योंसे सजे रहते हैं और अलंकारोंसे सुशोभित हैं, ऐसे अतिशय कुशल भगवान कभी वीणा बजाते थे, मृदंग आदि बाजोंके साथ गाना गाते थे, कभी कुबेरके द्वारा लाये हुए आभूषण तथा वस्त्र आदि देखते थे, कभी वादि-प्रतिवादियोंके द्वारा उपस्थापित पक्ष आदिकी परीक्षा करते थे और कभी कुतूहलवश अपने दर्शन करनेके लिए आये हुए भव्य जीवोंको दर्शन देते थे। इस प्रकार आनंदसे अपना समय व्यतीत करते थे।

जब भगवान कौमार्य अवस्थामें ही थे, तभी धर्म आदि गुणोंकी वृद्धि हो गयी थी और पाप आदिका क्षय हो गया था, फिर संयम धारण करनेपर तो कहना ही क्या है? इस प्रकार दो लाख पचास हजार पूर्व व्यतीत होने पर राज्याभिषेक प्राप्त हुआ था और उससे वे बहुत ही हर्षित तथा सुन्दर जान पड़ते थे। वे तीन लोककी रक्षा करते थे। जिनके जन्मके पहले ही इन्द्र आदि देव किंकरता स्वीकृत कर लेते हैं ऐसे अन्य ऐश्वर्य आदिसे घिरे हुए इन श्री चन्द्रप्रभ भगवानको किसकी उपमा दी जाय?

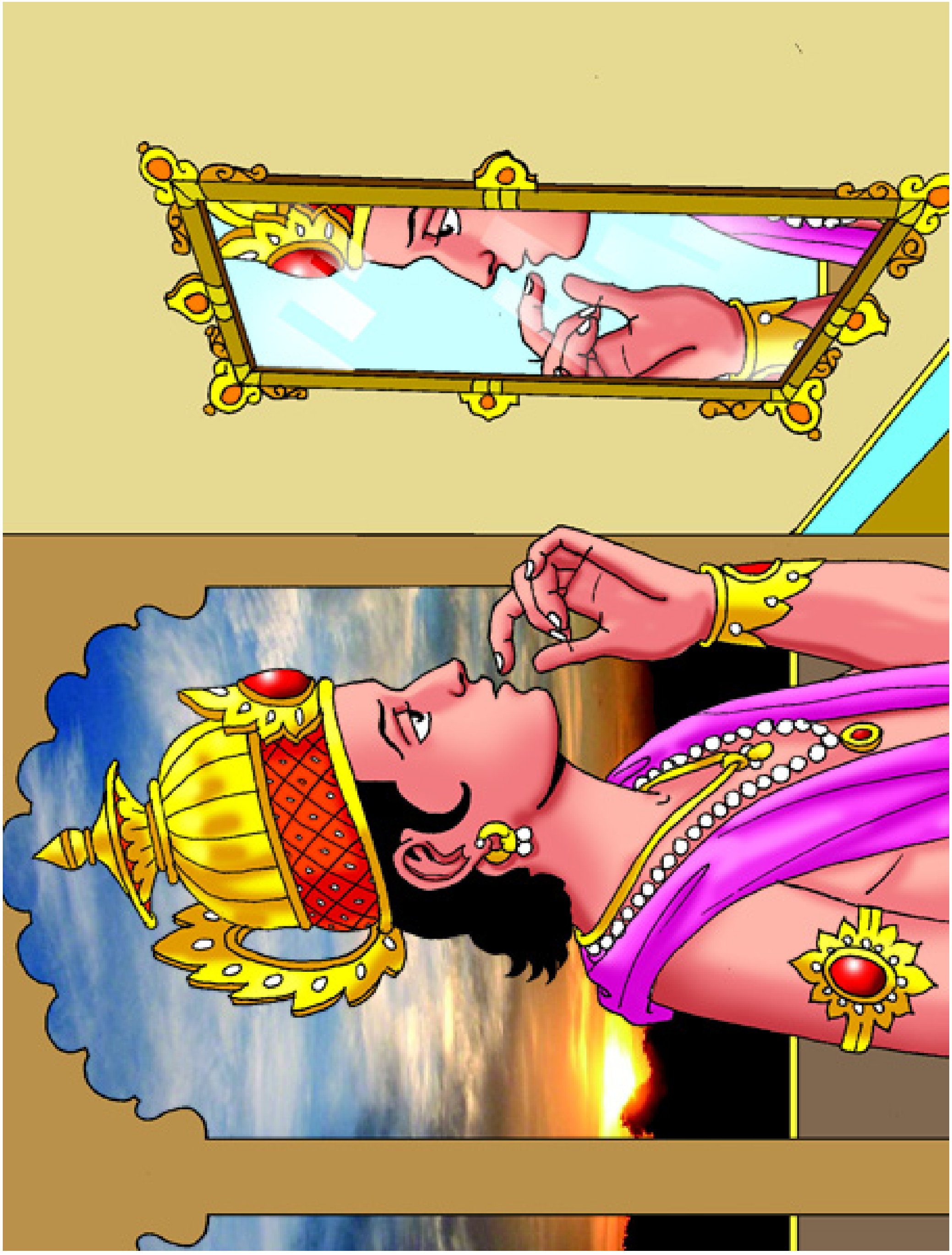

आभूषणयुक्त राजा चंद्रप्रभका अपना मुख दर्पणमें देखते वैराग्य

इस प्रकार साम्राज्य-सम्पदाका उपभोग करते हुए जब उनका छह लाख पचास हजार पूर्व तथा चौबीस पूर्वांगका लम्बा समय सुखपूर्वक क्षण-भरके समान बीत गया, तब वे एक दिन आभूषण धारण करके घरमें दर्पणमें अपना मुखकमल देख रहे थे, वहाँ उन्होंने मुखपर स्थित किसी वस्तुको वैराग्यका कारण निश्चित किया और इस प्रकार विचार करने लगे। 'देखो यह शरीर नश्वर है तथा इससे जो प्रीति की जाती है, वह भी इतिके समान दुःखदायी है। वह सुख ही क्या है? जो अपनी आत्मासे उत्पन्न न हो, वह लक्ष्मी ही क्या है? जो चंचल हो, वह यौवन ही क्या है जो नष्ट हो जानेवाला हो, और वह आयु ही क्या है? जो अवधिसे सहित हो—सान्त हो। जिसका आगे वियोग होनेवाला है, ऐसा बन्धुजनोंके साथ समागम किस कामका? मैं वही हूँ, पदार्थ वही है, इन्द्रियाँ भी वही है, प्रीति और सहानुभूति भी वही है, तथा प्रवृत्ति भी वही है, किन्तु इस संसारकी भूमिमें यह सब बार-बार बदलता रहता है। इस संसारमें अबतक क्या हुआ है और आगे क्या होनेवाला है! यह मैं जानता हूँ, फिर भी बार-बार मोहको प्राप्त हो रहा हूँ, यह आश्चर्य है। मैं आज तक अनित्य पदार्थोंको नित्य समझता रहा, दुःखको सुख स्मरण करता रहा, अपवित्र पदार्थोंको पवित्र मानता रहा और परको आत्मा जानता रहा।

इस प्रकार यह जीव अज्ञानसे आक्रान्त हुआ, जिसका अन्त अत्यन्त कठिन है, ऐसे संसाररूपी सागरमें चार प्रकारके विशाल दुःख तथा भयंकर रोगोंके द्वारा चिरकालसे पीड़ित हो रहा है। इस प्रकार [१]काललब्धिको पाकर संसारका मार्ग छोड़नेकी इच्छासे वे बड़े लम्बे पुण्यकर्मके द्वारा व्याकुल हो गये। आगे होनेवाले केवलज्ञानादि गुणोंसे मुझे समृद्ध होना चाहिए, ऐसा स्मरण करते हुए वे मुक्तिकी दूतीके समान सद्बुद्धिके साथ समागमको प्राप्त हुए थे। मोक्ष प्राप्त करनेवाली उनकी सद्बुद्धि अपने आप दीक्षालक्ष्मीको प्राप्त हो गयी थी। इस प्रकार जिन्होंने मुनिपनेके योग्य आत्मतत्त्वको समझ लिया है, ऐसे भगवान श्री चन्द्रप्रभके समीप लौकान्तिक देव आये और यथायोग्य स्तुति कर ब्रह्मस्वर्गको वापस चले गये।

काललब्धि : काललब्धि व होनहार तो कोई वस्तु नहीं, जिस कालमें कार्य बनता है वही काललब्धि और जो कार्य हुआ वही होनहार। —मोक्षमार्ग प्रकाशक

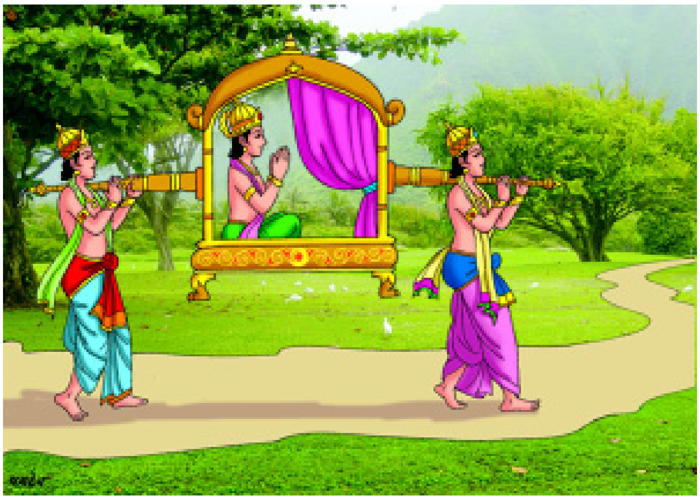

तदनन्तर महाराज चन्द्रप्रभु भी वरचन्द्र नामक पुत्रका राज्याभिषेक कर, देवोंके द्वारा की हुई दीक्षाकल्याणककी पूजाको प्राप्त हुए और मनुष्यों तथा देवोंके द्वारा उठाई हुई विमला नामकी पालकीमें सवार होकर सर्वर्तुक नामक

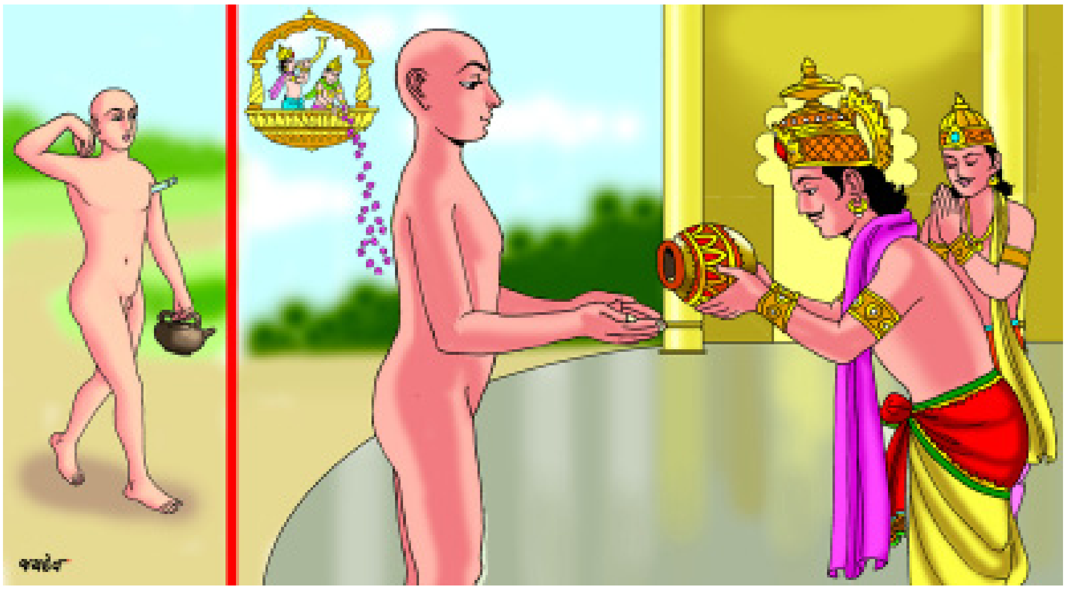

मुनिराज चन्द्रप्रभका आहारदान हेतु गमन व राजा सोमप्रभके यहाँ आहारदान व पंचाश्चर्य

वनमें गये। वहाँ उन्होंने दो दिनके उपवासका नियम लेकर पौष कृष्ण एकादशीके दिन अनुराधा नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा लेते ही उन्हें मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो गया। दूसरे दिन वे चर्याके लिए नलिन नामक नगरमें गये। वहाँ गौर वर्णवाले सोमदत्त राजाने, उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक उत्तम आहार देकर, दानसे संतुष्ट हुए देवोंके द्वारा बरसाये गये रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्य प्राप्त किये। भगवान अहिंसा आदि पाँच महाव्रतोंको धारण करते थे, ईर्या आदि पाँच समितियोंका पालन

करते थे, मन, वचन, कायकी निरर्थक प्रवृत्तिरूप तीन दण्डोंका त्याग करते थे। उन्होंने कषायरूपी शत्रुका निग्रह कर दिया था, उनकी विशुद्धता निरन्तर बढ़ती रहती थी, वे तीन गुप्तियोंसे युक्त थे, शील सहित थे, गुणी थे, अन्तरंग और बहिरंग दोनों तपोंको धारण करते थे, उत्तम क्षमा आदि दश धर्मोंमें स्थित रहते थे, समस्त परिषह सहन करते थे, 'यह शरीरादि पदार्थ अनित्य हैं, अशुचि हैं और दुःखरूप हैं'; ऐसा बार-बार स्मरण रखते थे तथा समस्त पदार्थोंमें माध्यस्थ भाव रखकर परमयोगको प्राप्त हुए थे।

इस प्रकार जिन-कल्प-मुद्राके द्वारा तीन माह बिताकर वे दीक्षा वनमें नागवृक्षके नीचे बेलाका नियम लेकर स्थित हुए। वह फाल्गुन कृष्ण सप्तमीके सायंकालका समय था और उस दिन अनुराधा नक्षत्रका उदय था। सम्यग्दर्शनको घातनेवाली प्रकृतियोंका तो उन्होंने पहले ही क्षय कर दिया था। अब अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप तीन परिणामोंके संयोगसे क्षपकश्रेणीको प्राप्त हुए। वहाँ उनके द्रव्य तथा भाव दोनों ही रूपसे चौथा सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र प्रकट हो गया। वहाँ उन्होंने प्रथम शुक्लध्यानके प्रभावसे मोहरूपी शत्रुको नष्ट कर दिया, जिससे उनका सम्यग्दर्शन अवगाढ़ सम्यग्दर्शन हो गया। उस समय चार ज्ञानोंसे दैदीप्यमान श्री चन्द्रप्रभ भगवान अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे।

बारहवें गुणस्थानके अन्तमें उन्होंने द्वितीय शुक्लध्यानके प्रभावसे मोहातिरिक्त तीन घातिया कर्मोंका क्षय कर दिया। उपयोग जीवका प्रधान गुण है, क्योंकि वह जीवके सिवाय अन्य द्रव्योंमें नहीं पाया जाता। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोह और अन्तराय कर्म जीवके उपयोगगुणका घात करते हैं, इसलिए घातिया कहलाते हैं। उन भगवानके घातिया कर्मोंका नाश हुआ था और अघातिया कर्मोंकी भी कितनी ही प्रकृतियोंका नाश हो गया था। इस प्रकार वे अन्तिम यथाख्यात चारित्र, प्राप्त कर सम्यक्त्व क्षायिक ज्ञान, दर्शन तथा दानादि पाँच लब्धियाँ पाकर शरीर सहित सयोगकेवली जिनेन्द्र हो गये।

भगवान पार्श्वनाथ व कमठकी भवावली

राजा अरविंद

भव नं.	(दोनों भाई) मंत्री		मंत्री
९	मरुभूति	षडयंत्र द्वारा मरुभूतिको मार डालता है	कमठ
८	वज्रघोष हाथी (इस भवमें सम्यक्त्व, व्रतादि अंगीकार)	पूर्व वैरसे हाथीको काटता है, जिससे हाथी मर जाता है	कुक्कुट सर्प
७	सहस्रार स्वर्गमें		धूमप्रभा नरकमें नारकी
६	रश्मिवेग विद्याधर	पूर्व वैरसे मुनिराजको खा जाता है	अजगर
५	अच्युत स्वर्गमें इन्द्रक		छठ्ठी नरकका नारकी
४	वज्रनाभि चक्रवर्ती अंतमें मुनिराज	उपसर्ग किया	कुरंग नामक भील
३	मध्यम ग्रैवेयकमें अहमिन्द्र		नरकमें नारकी
२	आनंद नामक मंडलेश्वर राजा (इस भवमें सोलहकारण भावना भाकर तीर्थंकर प्रकृतिका बंध बांधते है	पूर्व वैरके कारण मुनिराज पर उपसर्ग कर खा जाता है	सिंह
१	प्राणत स्वर्गमें इन्द्र		पांचवीं नरकका नारकी
०	पार्श्वनाथ तीर्थंकरका जीव	महिपाल पंचाग्नि तप करता है पार्श्वकुमार द्वारा जीवहिंसाके बारेमें समझाना, नाग नागिनका महिपाल द्वारा मरण पार्श्वकुमार द्वारा संबोधन शांत परिणाम	महिपाल नामके महिपाल राजा, जो पार्श्वप्रभुके नाना होते हैं
	पार्श्वनाथ मुनिराज ध्यानमें	सर्प–धरणेन्द्र, सर्पिणी–पद्मावती — उपसर्ग निवारण करते है	शम्बर नामक ज्योतिष देव — मुनिराज पर उपसर्ग

श्री पार्श्वनाथ भगवानका दीक्षा कल्याणक

इसी जम्बूद्वीपके दक्षिण भरतक्षेत्रमें एक सुरम्य नामका बड़ा भारी देश है और उसमें बड़ा विस्तृत पोदनपुर नगर है। उस नगरमें पराक्रम आदिसे प्रसिद्ध अरविन्द नामके राजा राज्य करते थे उन्हें पाकर प्रजा ऐसी सन्तुष्ट थी, जैसी कि प्रजापति भगवान श्री आदिनाथको पाकर संतुष्ट थी। उसी नगरमें वेद-शास्त्रोंको जाननेवाला एक विश्वभूति नामका ब्राह्मण रहता था। उसे प्रसन्न करनेवाली दूसरी श्रुतिके समान अनुन्धरी नामकी उसकी ब्राह्मणी थी। उन दोनोंके कमठ और मरुभूति नामके दो पुत्र थे, जो विष और अमृतसे बनाये हुएके समान थे अथवा पाप और धर्मके समान जान पड़ते थे। कमठकी स्त्रीका नाम वरुणा था और मरूभूतिकी स्त्रीका नाम वसुन्धरी था। ये दोनों राजाके मन्त्री थे और इनमें छोटा मरूभूति नीतिका अच्छा जानकार था। नीच तथा दुराचारी कमठने वसुन्धरीके निमित्तसे सदाचारी एवं सज्जनोंको प्रिय मरुभूतिको मार डाला।

कमठ (बडाभाई) द्वारा मंत्री मरुभूति (छोटाभाई)को मार डालना

मरुभूति मरकर मलय देशके कुब्जक नामक सल्लकीके बड़े भारी वनमें वज्रघोष नामका हाथी हुआ। वरुणा उसी वनमें मरकर हाथिन हुई और वज्रघोषके साथ क्रीड़ा करने लगी। इस प्रकार दोनोंका समय प्रीतिपूर्वक व्यतीत हो गया।

किसी एक समय राजा अरविन्दने विरक्त होकर राज्य छोड़ दिया और संयम धारण कर सब संघके साथ वन्दना करनेके लिए सम्मेदशिखरकी ओर प्रस्थान किया। चलते-चलते वे उसी वनमें पहुँचे और सामायिकका समय होने पर प्रतिमायोग धारण

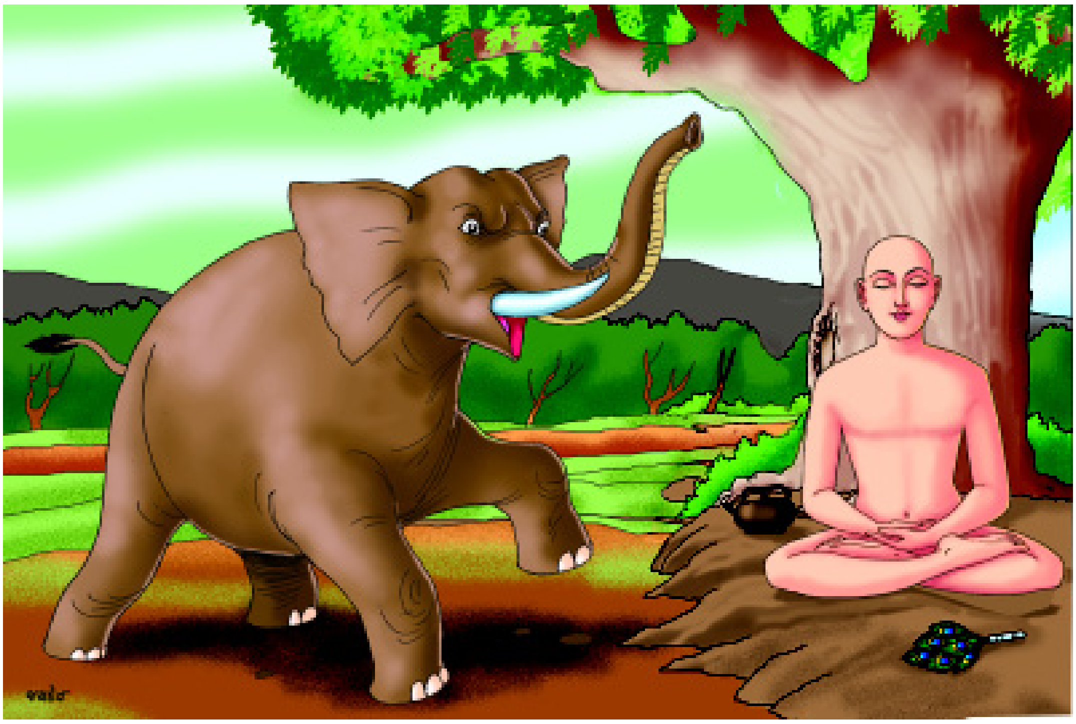

चिल्लाते हुए हाथी द्वारा ध्यानस्थ मुनिवर पर शुभ लक्षण देखकर स्थंभित होना

कर विराजमान हो गये सो ठीक ही है, क्योंकि तेजस्वी मनुष्य अपने नियमका थोड़ा भी उल्लंघन नहीं करते हैं। उन्हें देखकर जिनके दोनों कपोल तथा ललाटसे मद झर रहा था, ऐसा वह मदोन्मत्त महाहाथी, उन प्रतिमायोगके धारक अरविन्द मुनिराजको मारनेके लिए उद्यत हुआ। परन्तु उनके वक्षःस्थल पर जो वत्सका चिह्न था, उसे देखकर उसके हृदयमें अपने पूर्वभवका सम्बन्ध साक्षात् दिखाई देने लगा। मुनिराज प्रति पूर्वजन्मका स्नेह होनेके कारण वह महाहाथी चुपचाप खड़ा हो गया सो ठीक ही है, क्योंकि तिर्यंच भी तो बन्धुजनोंमें मैत्रीभावका पालन करते हैं।

उस हाथीने मुनिराजसे हेतुपूर्वक धर्मका स्वरूप अच्छी तरह जानकर प्रोषधोपवास आदि श्रावकके व्रत ग्रहण किये। उस समयसे वह हाथी पापसे डरकर, दूसरे हाथियोंके द्वारा तोड़ी हुई वृक्षकी शाखाओं और सूखे पत्तोंको खाने लगा। पत्थरों पर गिरनेसे अथवा हाथियोंके समुहके संघटनसे जो पानी प्रासुक हो जाता था उसे ही पीता था। प्रोषधोपवासके बाद पारणा करता था। इस प्रकार चिरकाल तक तपश्चरण करता हुआ, वह महाबलवान् हाथी अत्यंत दुर्बल हो गया। किसी एक दिन वह पानी पीनेके लिए

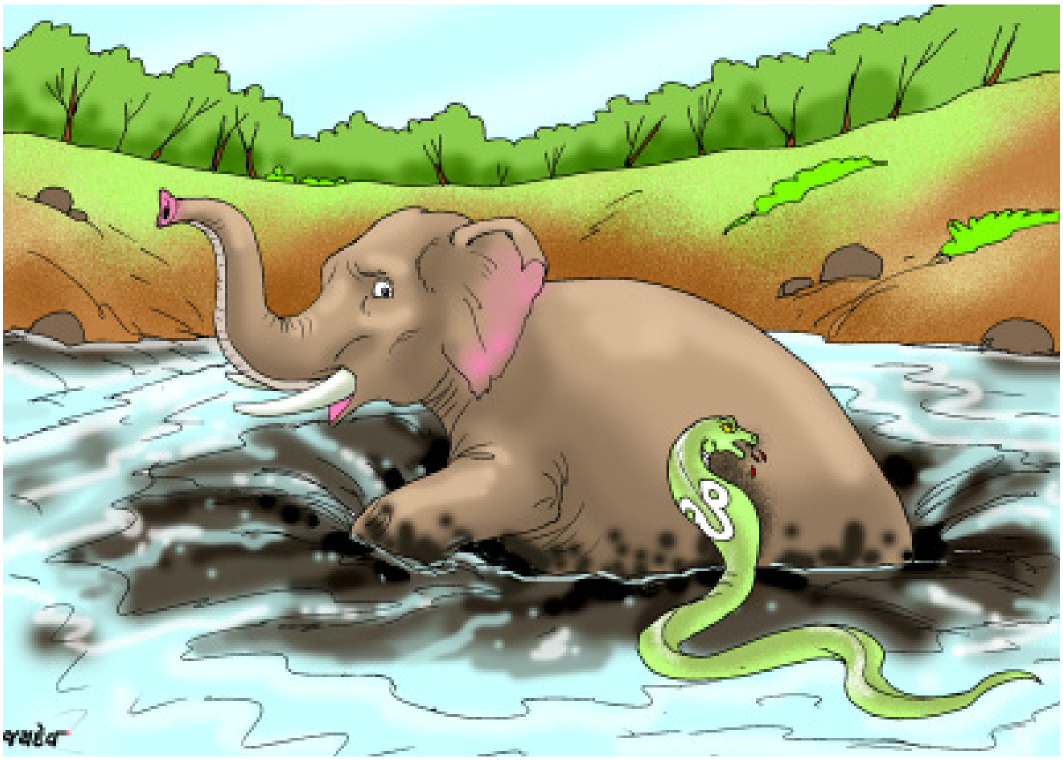

हाथीका तलाबके कीचड़में गिरना व भयंकर कुक्कुट सर्प द्वारा उसे डसना

वेगवती नदीके द्रहमें जाकर वहाँ कीचड़में गिर गया। यद्यपि कीचड़से निकलनेके लिए उसने बहुत भारी उद्यम किया, परन्तु समर्थ नहीं हो सका। वहींपर दुराचारी कमठका जीव मरकर कुक्कुट साँप हुआ था। उसने पूर्व पर्यायके वैरके कारण उस हाथीको काट खाया जिससे वह (हाथी) मरकर सहस्रार स्वर्गमें सोलह सागरकी आयुवाला देव हुआ।

यथायोग्य रीतिसे वहाँके भोग भोगकर वह आयुके अन्तमें वहाँसे च्युत हुआ और इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें जो पुष्कलावती देश है, उसके विजयार्ध पर्वतपर

विद्यमान त्रिलोकोत्तम नामक नगरमें वहाँके राजा विद्युद्गति और रानी विद्युन्मालीके रश्मिवेग नामका पुत्र हुआ। जिसके संसारकी अवधि अत्यंत निकट रह गयी है, ऐसे उस बुद्धिमान रश्मिवेगने सम्पूर्ण यौवनमें ही समाधिगुप्त मुनिराजके समीप दीक्षा धारण कर ली तथा सर्वतोभद्र आदि श्रेष्ठ उपवास धारण किये। किसी एक दिन वे हिमगिरि

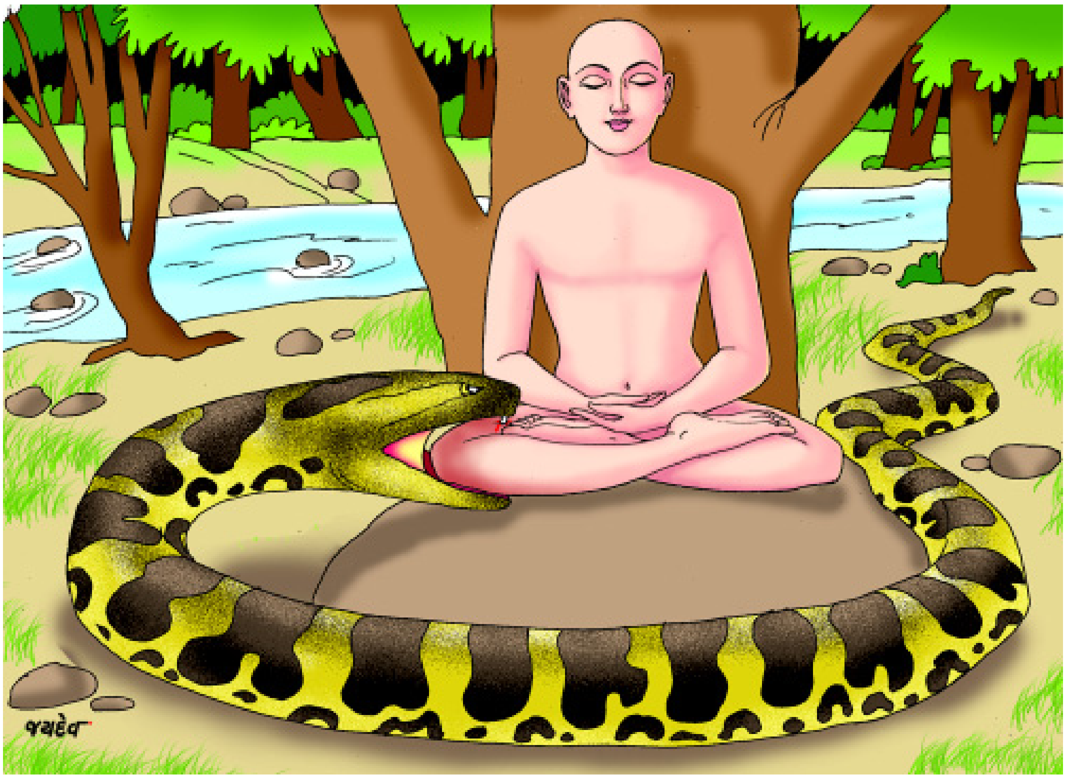

ध्यानस्थ मुनिराजको खाता अजगर

पर्वतकी गुफामें योग धारण कर बिराजमान थे कि इतनेमें जिस कुक्कुट सर्पने वज्रघोष हाथीको काटा था, वही पापी धूमप्रभा नरकके दुःख भोगकर निकला और वहींपर अजगर हुआ था। उन मुनिराजको देखते ही अजगर क्रोधित हुआ और उन्हें निगल गया। जिससे उनका (मुनिराजका) जीव अच्युत स्वर्गके पुष्कर विमानमें बाईस सागरकी आयुवाला देव हुआ।

वहाँकी आयु समाप्त कर वे पुण्यात्मा, जम्बूद्वीपके पश्चिम विदेहक्षेत्रमें पद्म नामक देश सम्बन्धी अश्वपुर नगरमें वहाँके राजा वज्रवीर्य और रानी विजयाके वज्रनाभि नामके

पुत्र हुये। वे पुण्यके द्वारा रक्षित वज्रनाभि, चक्रवर्तीकी अखण्ड लक्ष्मीका उपभोग कर भी सन्तुष्ट नहीं हुये इसलिए मोक्षलक्ष्मीका उपभोग करनेके लिए उद्यत हुये। उन्होंने क्षेमंकर भट्टारकके मुखकमलसे निकले हुए धर्मरूपी अमृतरसका पानकर, अन्य समस्त रसोंकी इच्छा छोड़ दी तथा अपने राज्यपर पुत्रको स्थापित कर अनेक राजाओंके साथ समस्त जीवों पर अनुकम्पा करनेवाला संयम अच्छी तरह धारण कर लिया।

कमठका जीव, जो कि पहले अजगर हुआ था मरकर छट्ठे नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ बाईस सागर तक अत्यन्त दुःख भोगता रहा। चिरकाल बाद वहाँसे निकलकर कुरंग नामका भील हुआ। यह भील उस वनमें उत्पन्न हुए समस्त जीवोंको कम्पित करता रहता था। किसी एक दिन शरीर सम्बन्धी बलसे शोभायमान तथा शरीरसे स्नेह छोड़नेवाले तपस्वी चक्रवर्ती वज्रनाभि आर्तध्यान छोड़कर उस वनमें आतापन योगसे विराजमान थे। उन्हें देखते ही जिसका वैर भड़क उठा है, ऐसे पापी भीलने उन मुनिराज पर कायरजनोंके द्वारा असहनीय अनेक प्रकारका भयंकर उपसर्ग किया। उक्त

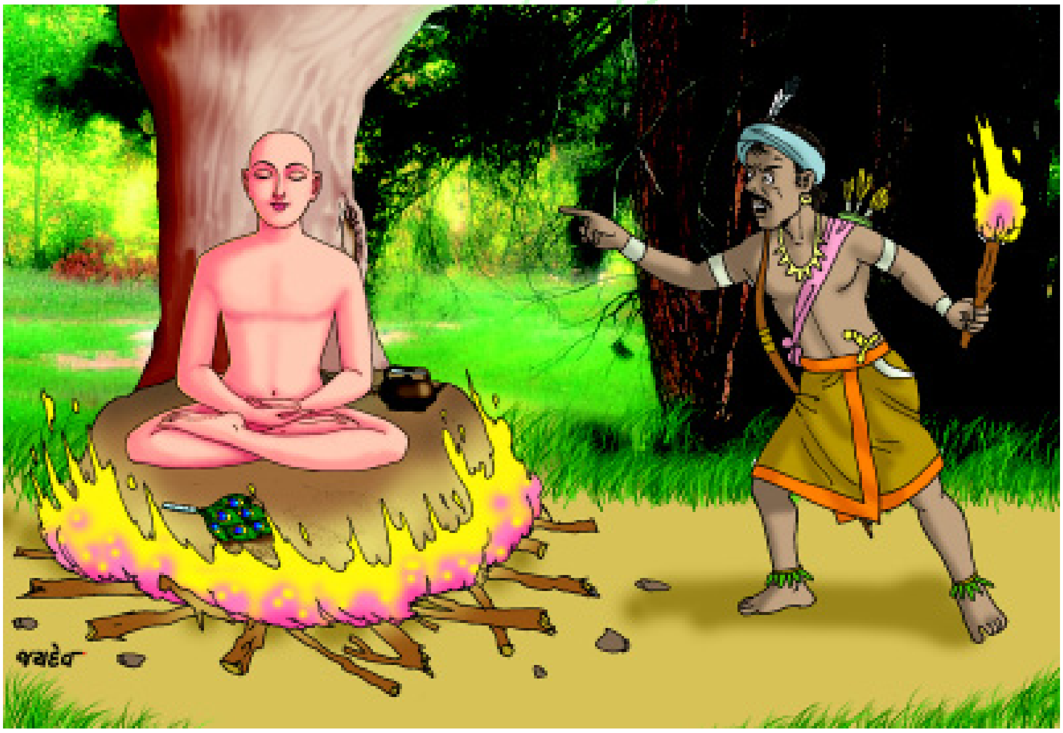

ध्यानस्थ मुनिराज पर भील द्वारा उपसर्ग

मुनिराजका जीव धर्मध्यानमें प्रवेश कर तथा अच्छी तरह आराधनाओंकी आराधना कर सुभद्र नामक मध्यम ग्रैवेयकके मध्यम विमानमें सम्यग्दर्शनका धारक श्रेष्ठ अहमिन्द्र हुआ। वहाँ वह सत्ताईस सागरकी आयु तक दिव्य भोग भोगता रहा। आयुके अन्तमें वहाँसे च्युत होकर इसी जम्बूद्वीपके कौशल देश सम्बन्धी अयोध्या नगरमें काश्यपगोत्री इक्ष्वाकुवंशी राजा वज्रबाहु और रानी प्रभंकरीके आनन्द नामका प्रिय पुत्र हुआ। बड़ा होने पर वह महावैभवका धारक मण्डलेश्वर राजा हुआ। किसी एक दिन उसने अपने स्वामिहित नामक महामंत्रीके कहनेसे वसन्तऋतुकी अष्टाह्निकामें पूजा करायी। उसे देखनेके लिए वहाँ श्री विपुलमति नामके मुनिराज पधारे।

आनन्दने उनकी बड़ी विनयसे वन्दना की तथा उनसे सब जीवोंको सुख देनेवाला समीचीन धर्मका स्वरूप सुना और तदनन्तर कहा, कि हे भगवान! मुझे कुछ आशंका हो रही है, उसको आपसे समझना चाहता हूँ। उसने पूछा, कि जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमा तो अचेतन है, उसमें भला-बुरा करनेकी शक्ति नहीं है, फिर उसकी की हुई पूजा भक्तजनोंको पुण्यरूप फल किस तरह प्रदान करती है। इसके उत्तरमें मुनिराजने हेतु सहित निम्न प्रकार वचन कहे, कि हे राजन्! सुन, यद्यपि जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमा और जिनेन्द्र मन्दिर अचेतन हैं, तथापि भव्य जीवोंके पुण्य-बन्धके ही कारण हैं। यथार्थमें पुण्यबन्ध परिणामोंसे होता है और उन परिणामोंकी उत्पत्तिमें जिनेन्द्रकी प्रतिमा तथा मन्दिर (निमित्त)कारण पड़ते हैं। जिनेन्द्र भगवान रागादि दोषोंसे रहित हैं, शस्त्र तथा आभूषण आदिसे विमुख हैं, उनके मुखकी शोभा प्रसन्न चन्द्रमाके समान निर्मल है, लोक-अलोकके जाननेवाले हैं, कृतकृत्य हैं, जटा आदिसे रहित हैं तथा परमात्मा हैं। इसलिए उनके मन्दिरों और उनकी प्रतिमाओंका दर्शन करनेवाले लोगोंके शुभ परिणामोंमें जैसी प्रकर्षता होती है, वैसी अन्य कारणोंसे नहीं हो सकती; क्योंकि समस्त कार्योंकी उत्पत्ति अन्तरंग और बहिरंग दोनों कारणोंसे होती है, इसलिए जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमा पुण्यबंधके कारणभूत शुभ परिणामोंका कारण है। यह बात अच्छी तरह जान लेने योग्य है।

इसी उपदेशके समय उक्त मुनिराजने तीनोंलोक सम्बन्धी चैत्यालयोंके आकार आदिका वर्णन करना चाहा और सबसे पहले उन्होंने सूर्यके विमानमें स्थित जिनमन्दिरकी

विभूतिका अच्छी तरहसे वर्णन किया। उस असाधारण विभूतिको सुनकर राजा आनन्दको बहुत ही श्रद्धा हुई। वह उस समयसे प्रतिदिन प्रातः और शामके समयमें दोनों हाथ जोड़कर तथा मुकुट झुकाकर सूर्यके विमानमें स्थित जिन-प्रतिमाओंकी स्तुति करने लगा।

सुवर्णके सूर्यविमानमें जिनमन्दिर बनाकर राजाका भक्तिपूर्वक अष्टाह्निका आदि पूजाका करना

यही नहीं, उसने कारीगरोंके द्वारा मणि और सुवर्णका एक सूर्य विमान बनवाया और उसके भीतर फैलती हुई कान्तिका धारक जिनमन्दिर बनवाया। तदनन्तर उसने शास्त्रोक्तविधिसे भक्तिपूर्वक अष्टाह्निक पूजा की। चर्तुर्मुख, रथावर्त, सबसे बड़ी सर्वतोभद्र और दीनोंके लिए मनचाहा दान देनेवाली कल्पवृक्ष-पूजा की। इस प्रकार उस राजाको सूर्यकी पूजा करते देख, उनकी प्रामाणिकतासे अन्य लोग भी स्वयं भक्तिपूर्वक सूर्य-मण्डलकी स्तुति करने लगे। आचार्य कहते हैं, कि इस लोकमें उसी समयसे सूर्यकी उपासना चल पड़ी है।

किसी एक दिन राजा आनन्दने 'यौवन चाहनेवाले लोगोंके हृदयको दो टूक करनेवाला सफेद बाल' अपने शिर पर देखा। इस निमित्तसे उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। विरक्त होते ही उन्होंने बड़े पुत्रके लिए अभिषेकपूर्वक अपना राज्य दे दिया और समुद्रगुप्त मुनिराजके समीप राजसी भाव छोड़कर अनेक राजाओंके साथ निःस्पृह तप धारण कर लिया। शुभ लेश्याके द्वारा उन्होंने चारों आराधनाओंकी विशुद्धता प्राप्त कर, ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया, तीर्थंकरनामकर्मके बन्धमें कारणभूत सोलहकारण

भावनाओंका चिन्तवन किया, शास्त्रानुसार सोलहकारण भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध किया और चिरकाल तक घोर तपश्चरण किया। आयुके अन्तमें जिनकी अन्तरात्मा अत्यंत शांत हो गयी है, जो धीर वीर है, धर्मध्यानके आधीन है और आकुलतारहित है ऐसे वे आनन्द मुनि प्रायोपगमन संन्यास लेकर क्षीरवनमें प्रतिमायोगसे विराजमान हुए। पूर्वजन्मके पापी कमठका जीव नरकसे निकलकर उसी वनमें सिंह हुआ था, सो उसने आकर उन मुनिका कण्ठ पकड़ लिया। इस प्रकार सिंहका उपसर्ग सहकर चार आराधनारूपी धनको धारण करनेवाले वे मुनि

ध्यानस्थ मुनिराजको खाता भयंकर सिंह

प्राणरहित हो अच्युत स्वर्गके प्राणत विमानमें इन्द्र हुए। दूसरी ओर सिंह क्रूर परिणामके फलस्वरूप फिरसे पांचवीं नरकमें गया।

वहाँपर (अच्युत स्वर्गमें) उनकी बीस सागरकी आयु थी, साढ़े तीन हाथ ऊँचा शरीर था, शुक्ल लेश्या थी, वे दश माह बाद श्वास लेते थे, और बीस हजार वर्ष

बाद मानसिक अमृताहार ग्रहण करते थे। उनके मानसिक स्त्रीप्रविचार था, पाँचवीं पृथ्वी तक अवधिज्ञानका विषय था, उतनी दूरी तक ही उनकी कान्ति और बल था, सब ऋद्धियोंके धारक सामानिक आदि देव उनकी पूजा करते थे, और वे इच्छानुसार काम प्रदान करनेवाली अनेक देवियोंके द्वारा उत्पादित सुखकी खान थे। इस प्रकार समस्त विषय-भोग प्राप्त कर वे उनका निरन्तर अनुभव करते रहते थे। जिस समय उनकी आयुके अन्तिम छह माह रह गये और वे इस पृथ्वी पर आनेके लिए सन्मुख हुए।

उस समय इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र-सम्बन्धी काशी देशमें बनारस नामका एक नगर था। उसमें काश्यपगोत्री राजा अश्वसेन राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम वामा था। देवोंने रत्नोंकी धारा बरसाकर उनकी पूजा की थी। रानी वामाने वैशाख कृष्ण द्वितीयाके दिन प्रातःकालके समय विशाखा नक्षत्रमें सोलह शुभ स्वप्न देखे और उसके बाद अपने मुख-कमलमें प्रवेश करता हुआ एक हाथी देखा। प्रातःकाल मंगलाभिषेकसे संतुष्ट होकर तथा वस्त्राभरण पहनकर वह राजाके समीप पहुँचीं और रात्रिको देखे स्वप्न यथाक्रमसे कहने लगी। महाराज अश्वसेन अवधिज्ञानी थे, अतः स्वप्न सुनकर खूब प्रमोदपूर्वक इस प्रकार फल कहने लगे। हाथीके स्वप्नसे पुत्र होगा। बैल देखनेसे वह तीनोंलोकोंका स्वामी होगा, सिंहके देखनेसे अनन्त वीर्यका धारक होगा, लक्ष्मीका अभिषेक देखनेसे उसे मेरु पर्वत पर अभिषेककी प्राप्ति होगी, दो मालाओंको देखनेसे वह गृहस्थ धर्म और मुनिधर्मरूप तीर्थकी प्रवृत्ति करनेवाला होगा, चन्द्रमंडलके देखनेसे वह तीन लोकका चन्द्रमा होगा, सूर्यके देखनेसे तेजस्वी होगा, मत्स्योंका जोड़ा देखनेसे सुखी होगा, कलश देखनेसे निधियोंका स्वामी होगा, सरोवर देखनेसे समस्त लक्षणोंसे युक्त होगा, समुद्रके देखनेसे सर्वज्ञ होगा, सिंहासन देखनेसे समस्त लोगोंके द्वारा पूजनीय होगा। विमान देखनेसे स्वर्गसे अवतार लेनेवाला होगा, निर्धूम अग्निके देखनेसे पापोंको जलानेवाला होगा और हे कृशोदरि! मुखकमलमें हाथीका प्रवेश देखनेसे सूचित होता है, कि देवोंके द्वारा पूजित होनेवाला वह पुत्र आज तेरे उदरमें आकर विराजमान हुआ है।

इस प्रकार मृगनयनी, पतिसे स्वप्नोंका फल सुनकर बहुत संतुष्ट हुई। उसी समय समस्त इन्द्रोंने आकर बड़े हर्षसे तीर्थंकरावतरणकी वेलामें भगवानके माता-पिताका कल्याणाभिषेक कर उत्सव किया। उस समय महाराज अश्वसेनका राजमन्दिर अपनी

सम्पदाके द्वारा स्वर्गलोकका भी उल्लंघन कर रहा था, सो ठीक ही है, क्योंकि पुण्यात्मा जीवोंका समागम कौन-सा कल्याण नहीं करता है? अर्थात् सभी कल्याण करता है।

नौ माह पूर्ण होने पर पौषकृष्ण एकादशीके दिन अनिलयोगमें वह पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी समय अपने आसनोंके कम्पायमान होनेसे सौधर्म आदि सभी इन्द्रोंने तीर्थंकर भगवानके जन्मका समाचार जान लिया तथा सभीने आकर सुमेरु पर्वतके मस्तक पर उनके जन्मकल्याणककी पूजा कर, 'पार्श्वनाथ' नाम रखा और फिर उन्हें माता-पिताके लिए समर्पित कर दिया। श्री नेमिनाथ भगवानके तिरासी हजार सात सो पचास वर्ष बीत जानेपर मृत्युको जीतनेवाले भगवान पार्श्वनाथ उत्पन्न हुए थे। उनकी आयु सौ वर्षकी थी जो कि उसी पूर्वोक्त अन्तरालमें शामिल थी। उनके शरीरकी कांति धानके छोटे पौधेके समान हरे रंगकी थी, वे समस्त लक्षणोंसे सुशोभित थे, नौ हाथ ऊँचा उनका शरीर था, वे लक्ष्मीवान थे और उग्रवंशमें उत्पन्न हुए थे।

सोलह वर्ष बाद जब भगवान नव यौवनसे युक्त हुए तब वे किसी समय क्रीड़ा

कुमार पार्श्वनाथ अपने मित्रो सहित । पंचाग्नि तप तपते तपस्वी द्वारा लकड़ी काटनेमें सर्पके टुकड़े देख तपस्वी और सर्पको उपदेश

करनेके लिए अपनी सेनाके और मित्र सुभौमकुमारके साथ वहाँसे नगरके बाहर गये। वहाँ कमठका जीव पांचवीं नरकके दुःख भोगकर वहाँसे निकल आश्रमके वनमें पार्श्वकुमारकी माताका पिता महीपाल नगरका राजा महीपाल अपनी रानीके वियोगसे तपस्वी होकर तप कर रहा था, वह पंचाग्नियोंके बीचमें बैठा हुआ तपश्चरण कर रहा था। देवोंके द्वारा पूजित भगवान श्री पार्श्वनाथ उसके समीप जाकर उसे नमस्कार किये बिना ही खड़े हो गये। यह देख, वह खोटा साधु, बिना कुछ विचार किये ही क्रोधसे युक्त हो गया। वह मनमें सोचने लगा, कि 'मैं कुलीन हूँ—उच्च कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, तपोवृद्ध हूँ—तपके द्वारा बड़ा हूँ और इसकी माताका पिता हूँ, फिर भी यह अज्ञानी कुमार अहंकारसे विह्वल हुआ मुझे नमस्कार किये बिना ही खड़ा है'। ऐसा विचार कर वह अज्ञानी बहुत ही क्षोभको प्राप्त हुआ और बुझती हुई अग्निमें डालनेके लिए वहाँ पर पड़ी हुई लकड़ीको काटनेकी इच्छासे उसने अपना मजबूत फरसा उठाया था, कि अवधिज्ञानी भगवान श्री पार्श्वनाथने 'इसे मत काटो इसमें जीव है' यह कहते हुए मना किया, परन्तु उनके मना करने पर भी उसने लकड़ी काट ही डाली।

इस कर्मसे उस लकड़ीके भीतर रहनेवाले सर्प और सर्पिणीके दो-दो टुकड़े हो गये। यह देखकर सुभौमकुमार (पार्श्वकुमारके मित्र) महीपाल तपस्वीसे कहने लगे, कि तुम 'मैं गुरु हूँ, तपस्वी हूँ' यह समझकर, यद्यपि भारी अहंकार कर रहे हो परन्तु यह नहीं जानते कि इस कुतपसे पापास्रव होता है। इस अज्ञान तपसे तुम्हें इस लोकमें दुःख हो रहा है और परलोकमें भी दुःख प्राप्त होगा। सुभौमकुमार(पार्श्वकुमारके मित्र)के यह वचन सुनकर वह तपस्वी और भी कुपित हुआ।

वह कुपित हो करके कहने लगा कि 'मैं प्रभु हूँ, यह मेरा क्या कर सकता है' इस प्रकारकी अवज्ञासे मेरे तपका माहात्म्य बिना जाने ही तू ऐसा क्यों बक रहा है? पंचाग्निके मध्यमें बैठना, वायु भक्षण कर ही जीवित रहना, ऊपर भुजा उठाकर चिरकाल तक एक ही पैरसे खड़े रहना, और उपवास कर अपने-आप गिरे हुए पत्ते आदिसे पारणा करना इस प्रकार शरीरको सन्तापित करनेवाला तपस्वियोंका तप बहुत ही कठिन है। इस तपश्चरणसे बढ़कर दूसरा तपश्चरण हो ही नहीं सकता। उस तपस्वीके ऐसे वचन सुन पार्श्वकुमार हँसकर कहने लगे कि ''मैं न तो आपको गुरु मानता

हूँ और न आपका तिरस्कार ही करता हूँ, किन्तु जो आप्त तथा आगम आदिको छोड़कर मिथ्यात्व एवं क्रोधादि चार कषायोंके वशीभूत हो, पृथ्वीकायिक आदि छहकायके जीवोंकी हिंसामें मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे प्रवृत्ति करते हैं और इस तरह अनाप्तके कहे हुए मतका आश्रय लेकर निर्वाणकी प्रार्थना करते हैं— मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, सो उनकी यह इच्छा 'चावल पानेकी इच्छासे धानके भूसेको कूटनेके प्रयासके समान है, अथवा 'जल मथकर घी प्राप्त करने की इच्छाके समान है, अथवा 'अन्धपाषाणके समूहको जलाकर सुवर्णकी इच्छा'के समान है, अथवा जिस प्रकार 'अन्ध मनुष्य दावानलके डरसे भागकर अग्निमें पड़े' उसके समान है। ज्ञानहीन मनुष्यका कायक्लेश भावी दुःखका कारण है। यह बात मैं, आप पर बहुत भारी स्नेहके कारण कह रहा हूँ'।

इस प्रकार पार्श्वकुमारके कहे वचन विपरीत बुद्धिवाले तापसने समझ तो लिये, परन्तु पूर्व वैरके संस्कार होनेसे अथवा अपने पक्षका अनुराग होनेसे अथवा दुःखमय संसारमें भ्रमणके कारण अथवा स्वभावसे ही अत्यन्त दुष्ट होनेके कारण, उसने स्वीकार नही किये। प्रत्युत, यह पार्श्वकुमार अहंकारी होकर मेरा इस तरह तिरस्कार कर रहा है, यह सोचकर वह भगवान श्री पार्श्वनाथ पर अधिक क्रोध करने लगा। इसी शल्यसे वह मरकर शम्बर नामका ज्योतिषी देव हुआ। सो ठीक ही है, क्योंकि क्रोधी मनुष्योंकी तपसे ऐसी ही गति होती है। इधर सर्प और सर्पिणी कुमारके उपदेशसे शान्त भावको प्राप्त हुए और मरकर बहुत भारी लक्ष्मीको धारण करनेवाले धरणेन्द्र और पद्मावती हुए।

तदनन्तर भगवान श्री पार्श्वनाथका जब तीस वर्ष प्रमाण कुमारकाल बीत गया तब एक दिन अयोध्याके राजा जयसेनने भगली देशमें उत्पन्न हुए घोड़े आदिकी भेंटके साथ अपना दूत भगवान श्री पार्श्वनाथके समीप भेजा। भगवान श्री पार्श्वनाथने भेंट लेकर उस श्रेष्ठ दूतका हर्षपूर्वक बड़ा सन्मान किया और उससे अयोध्याकी विभूति पूछी। इसके उत्तरमें दूतने सबसे पहले भगवान ऋषभदेवका वर्णन किया और उसके पश्चात् अयोध्या नगरका हाल कहा। सो ठीक ही है, क्योंकि बुद्धिमान लोग अनुक्रमको जानते ही हैं।

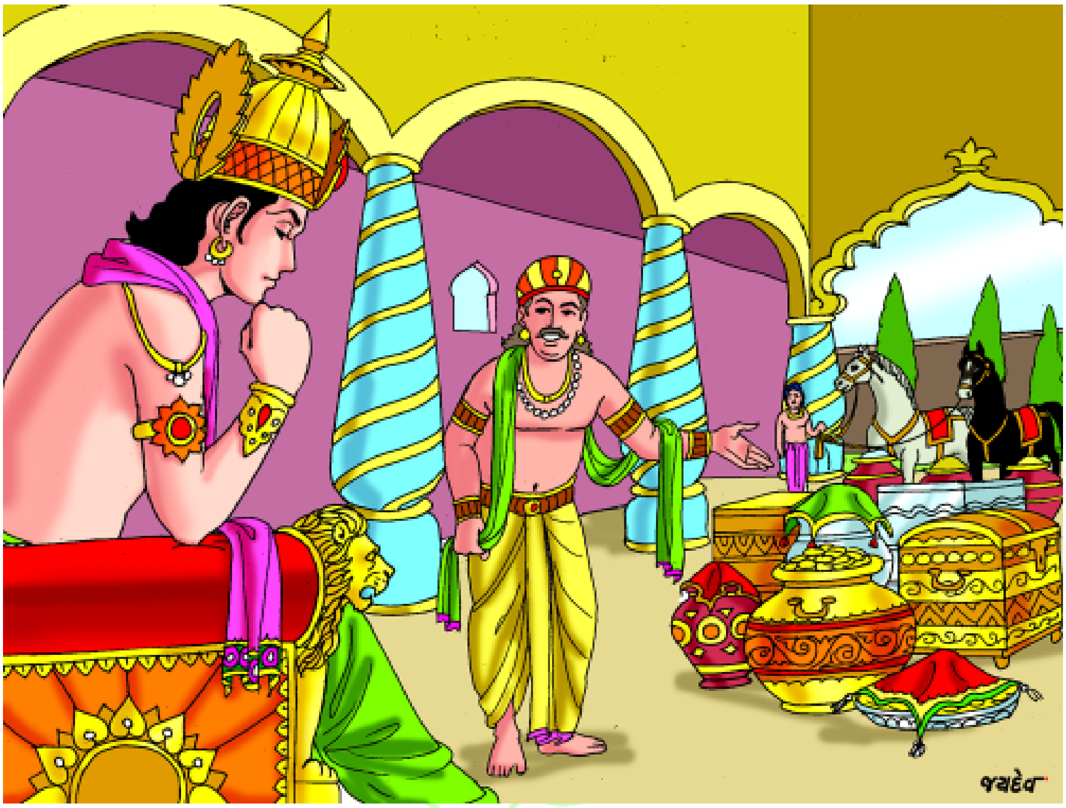

अयोध्या नगरीके दूतके घोड़े सहित अनेक भेट लेकर राजा पार्श्वनाथ पास आना व राजा विचारमग्न

दूतके वचन सुनकर भगवान विचारने लगे, कि मुझे तीर्थंकर नामकर्मका बन्ध हुआ है, इससे क्या लाभ हुआ? भगवान ऋषभदेवको ही धन्य है, कि जिन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया। ऐसा विचार करते ही उन्होंने अपने अतीत भवोंकी परम्पराका साक्षात्कार कर लिया–पिछले सब भव देख लिये। मतिज्ञानावरण कर्मके बढ़ते हुए क्षयोपशमके वैभवसे उन्हें जातिस्मरणज्ञान प्राप्त हो गया तभी लौकान्तिक देवोंने आकर उन्हें सम्बोधित किया। उसी समय इन्द्र आदि देवोंने आकर प्रसिद्ध दीक्षा-कल्याणकका अभिषेक आदि महोत्सव मनाया। तदनन्तर भगवान, विश्वास करने योग्य युक्तियुक्त वचनोंके द्वारा भाई-बन्धुओंको विदा कर विमला नामकी पालकी पर सवार हो अश्ववनमें पहुँचे। वहाँ अतिशय धीर वीर भगवान तेलाका नियम लेकर एक बड़ी शिलातल पर उत्तराभिमुख हो पर्यंकासनसे बिराजमान हुए। इस प्रकार पौष कृष्ण एकादशीके दिन प्रातःकालके समय उन्होंने सिद्ध भगवानको नमस्कार कर तीन सौ राजाओंके साथ दीक्षारूपी लक्ष्मीको स्वीकृत कर लिया।

वह दीक्षा-लक्ष्मी क्या थी? मानो कार्य सिद्ध करनेवाली मुक्तिरूपी कन्याकी माननीय दूती थी। भगवानने पंच मुष्टियोंके द्वारा उखाड़कर जो केश दूर फेंक दिये थे इन्द्रने उनकी पूजा की तथा बड़े आदरसे ले जाकर उन्हें क्षीरसमुद्रमें डाल दिये। जिन्होंने दीक्षा लेते समय सामायिक चारित्र प्राप्त किया है और विशुद्धताके कारण प्राप्त हुए चतुर्थ–मनःपर्ययज्ञानसे दैदीप्यमान हैं, ऐसे भगवान पारणाके दिन आहार लेनेके लिए गुल्मखेट नामके नगरमें गये। वहाँ श्यामवर्णवाले धन्य नामके राजाने अष्ट मंगल द्रव्योंके द्वारा पड़गाहकर उन्हें शुद्ध आहार दिया और आहार देकर उत्तम फल पंचाश्चर्य प्राप्त किये।

तदनन्तर जिस वनमें दीक्षा ली थी उसी वनमें जाकर वे देवदारु नामक एक बड़े वृक्षके नीचे विराजमान हुए। वहाँ तेलाका नियम लेनेसे उनकी विशुद्धता बढ़ रही थी, उनके संसारका अन्त निकट आ चुका था और उनकी (विशुद्धितारूप) शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी, इस प्रकार वे सात दिनका योग लेकर धर्मध्यानको बढ़ाते हुए विराजमान थे। इसी समय कमठका जीव शम्बर नामका असुर आकाशमार्गसे जा

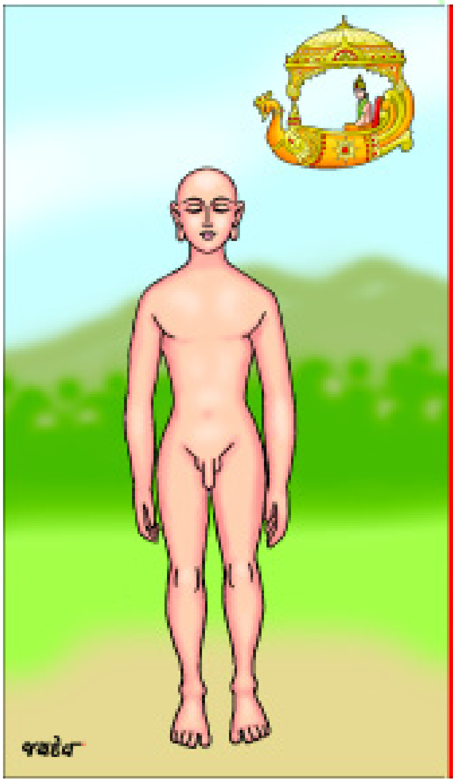

ध्यानस्थ पार्श्वनाथ पर देव विमान अटकना

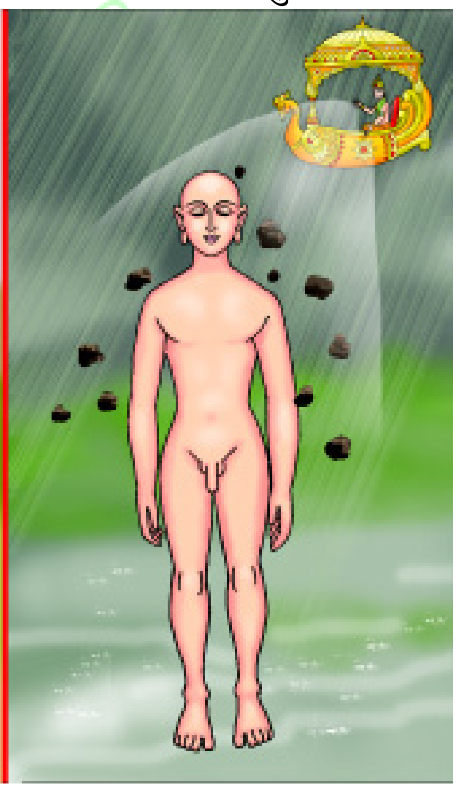

देव द्वारा मुनिराज पर पत्थर, वर्षा द्वारा भयंकर उपसर्ग

रहा था, कि अकस्मात् उसका विमान रुक गया। जब उसने विभंगावधिज्ञानसे इसका कारण देखा तो उसे अपने पूर्वभवका सब वैर-बन्धन दिखने लगा। फिर क्या था, क्रोधवश उसने महा गर्जना की और महावृष्टि करना शुरू कर दिया। इस प्रकार

नागदेव द्वारा भगवान पार्श्वनाथ पर गिरतेपत्थर आदिके उपसर्गका निवारण

यमराजके समान अतिशय दुष्ट उस दुर्बुद्धिने सात दिन तक लगातार भिन्न-भिन्न प्रकारके महा उपसर्ग किये। यहाँ तक कि छोटे-मोटे पहाड़ तक लाकर उनके समीप गिराये। अवधिज्ञानसे यह उपसर्ग जानकर धरणेन्द्र अपनी पत्नीके साथ पृथ्वीतलसे बाहर निकला, उस समय धरणेन्द्र जिस पर रत्न चमक रहे हैं, ऐसे फणारूपी मुकुटसे सुशोभित था। धरणेन्द्रने भगवानको सब ओरसे घेरकर उन्हें फणाओंके उपर उठा लिया और उसकी पत्नी वज्रमय छत्र तानकर खड़ी हो गयी। आचार्य कहते हैं, कि देखो, स्वभावसे ही क्रूर रहनेवाले सर्प-सर्पिणीने अपने उपर किया उपकार याद रखा। सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुष अपने उपर किये उपकारको कभी नहीं भूलते हैं।

तदनन्तर भगवानके ध्यानके प्रभावसे उनका मोहनीय कर्म क्षीण हो गया। इसलिए वैरी कमठका सब उपसर्ग दूर हो गया। मुनिराज पार्श्वनाथने द्वितीय शुक्लध्यानके द्वारा अवशिष्ट तीन घातिया कर्मोंको और भी जीत लिया, जिससे उन्हें चैत्रकृष्ण चतुर्दशीके दिन, प्रातःकालके समय, विशाखा नक्षत्रमें, लोक-अलोकको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान प्राप्त हो गया और इस कारण उनका अभ्युदय बहुत भारी हो गया। उसी समय इन्द्रोंने केवलज्ञानकी पूजा की। शम्बर नामका ज्योतिषि देव भी काललब्धि पाकर शान्त हो गया और उसने सम्यग्दर्शन सम्बन्धी विशुद्धता प्राप्त कर ली। यह देख, उस वनमें रहनेवाले सात सौ तपस्वियोंने मिथ्यादर्शन छोड़कर संयम धारण कर लिया, सभी शुद्ध सम्यग्दृष्टि हो गये और बड़े आदरके साथ प्रदक्षिणा देकर भगवान श्री पार्श्वनाथके चरणोंमें नमस्कार करने लगे। आचार्य कहते हैं, कि पापी कमठके जीवका कहाँ तो निष्कारण वैर और कहाँ ऐसी शान्ति? सच कहा है, कि महापुरुषोंके साथ मित्रता तो दूर रहो, शत्रुता भी शुद्धिका कारण हो जाती है।

समस्त आचार्य परम्परा

भगवान श्री महावीरस्वामीके निर्वाणके पश्चात् करीब ६८३ वर्ष तक तो अंग, पूर्व व अंग-पूर्वांशका ज्ञानप्रवाह क्रमशः क्षीण होता हुआ भी अविरतरूपसे चलता रहा। तब तक श्रुत-प्रवाहकी मौखिक परम्परा ही थी। तत्पश्चात् ज्ञान विशेष-विशेष क्षीण हो जानेसे ग्रंथ लिखनेकी परम्पराकी शुरूआत हुई।

तत्पश्चात् कई महासमर्थ श्रुतधर आचार्य भगवंत श्री धरसेनाचार्यदेव, पुष्पदंत, भूतबलि, कुंदकुंदस्वामी, समन्तभद्रस्वामी आदि आचार्यको उन आचार्य परम्परा द्वारा प्राप्त जो श्रुतज्ञान, उससे उन्होंने षट्खंडागम, कसायपाहुड, समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र, आप्तमीमांसा, समाधितंत्र, इष्टोपदेश आदि विविध ग्रंथोंकी रचना करके उस श्रुतज्ञानको चेतनवंत किया। तत्पश्चात् कई सारस्वताचार्य हुए, जिन्होंने श्रुत परम्परासे मिले श्रुतज्ञानको अपने आत्मज्ञान व अंतरंग विशुद्धिके बलसे मौलिक ग्रंथ और टीका ग्रंथोंको लिखकर जिनधर्मको सरल व विशदरूपसे सुदृढ किया।

इस भांति भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवाहित ज्ञान शनैः शनैः क्षीणताकी ओर बहता गया। इस तरह परम्परासे प्रवाहित श्रुतज्ञान करीब २५०० वर्ष तक चला। भगवान श्री महावीरके पश्चात् २५०० वर्षोंमें, उस ज्ञान गंगाने कई उतार–चढ़ाव देखे थे। २५००वीं शताब्दीमें तो भगवान श्री महावीरके शासनका मूलभूत अंग–अध्यात्मज्ञान लुप्तप्रायः हो गया था। उसके अन्तर्गत वी.नि. २४१६ (वि.सं. १९४६, ई.स. १८९०)में परम कृपालु सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका जन्म हुआ। उन्होंने पूर्वमें प्राप्त विदेहक्षेत्रस्थ भगवान श्री सीमंधरस्वामीकी देशनाके संस्कार और वर्तमानमें ग्रंथाधिराज समयसार आदि द्वारा निज आत्मसाक्षात्कार किया। इतना ही नहीं, उक्त दिगम्बर परम्परामें हुए सभी आचार्योंके ग्रंथोंका रसास्वादन कर उन्होंने अपनी आत्म-परिणति विशेष निर्मल बनाई।

पूज्य गुरुदेवश्री उन आचार्य भगवन्तों पर सर्वस्व समर्पित थे, वे हंमेशा कहते

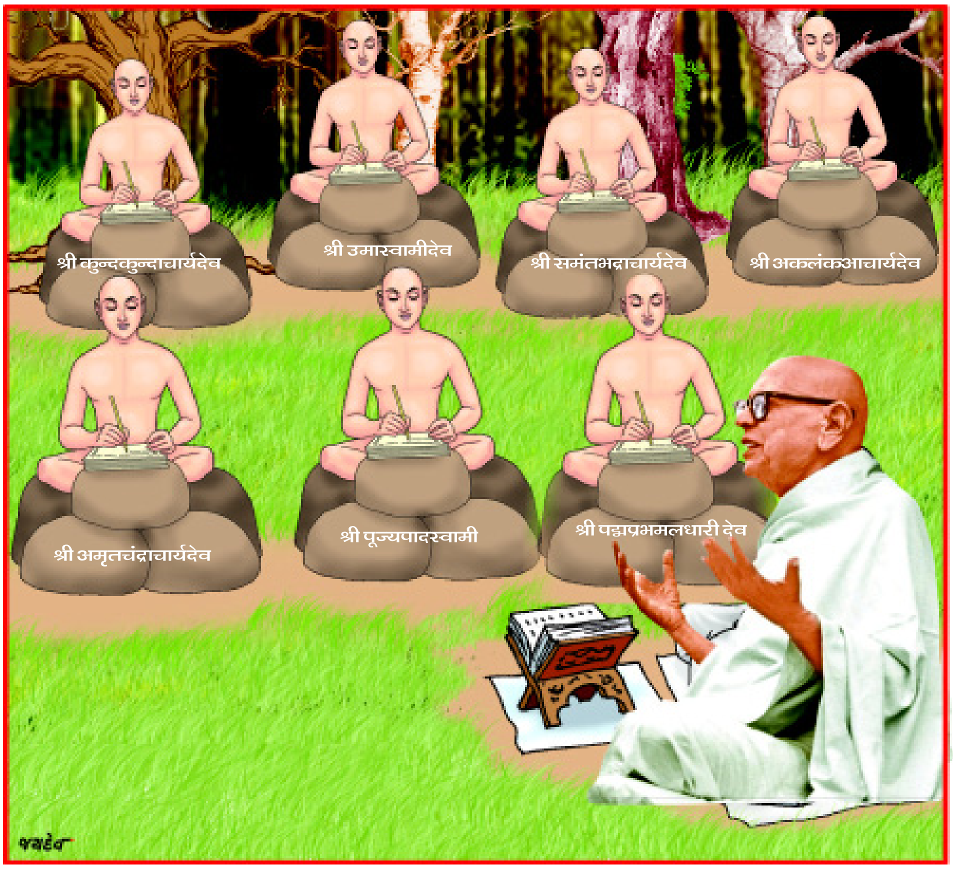

थे, कि 'हम तो उनके दासानुदास हैं।' तदुपरांत वे कई बार इस भांति भी कहते थे, कि 'कब ऐसा भाग्य हो, कि ऐसे भावलिंगी सन्त मिलें तो हम उनके चरणोंमें ही रहें। पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी निरन्तर ऐसे भावलिंगी सन्तोंके व ज्ञानीयोंके शास्त्र ही पढ़ते थे व प्रवचनमें भी वे आचार्योंके शास्त्रोंमें लिखे शब्दोंका भाव-अर्थ कहते थे। वे श्रोताओंको कहते थे, कि वे भी वही शास्त्र लेकर मिलान करें कि किस शब्दका क्या अर्थ हो रहा है? श्रोताको कुछ शंका हो तो, तुरन्त अन्य शास्त्रोंको खोलकर उसका आधार भी दिखाते थे।

इस भांति पूज्य सद्गुरुदेवश्री भगवान श्री महावीरस्वामीकी परम्परामें हुए भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यादि सभी भावलिंगी वीतरागी आचार्य भगवंतों पर बड़े भक्तिभावसे समर्पित हृदयवंत थे।

देवों द्वारा बीस विहरमान तीर्थंकरोंके दर्शन

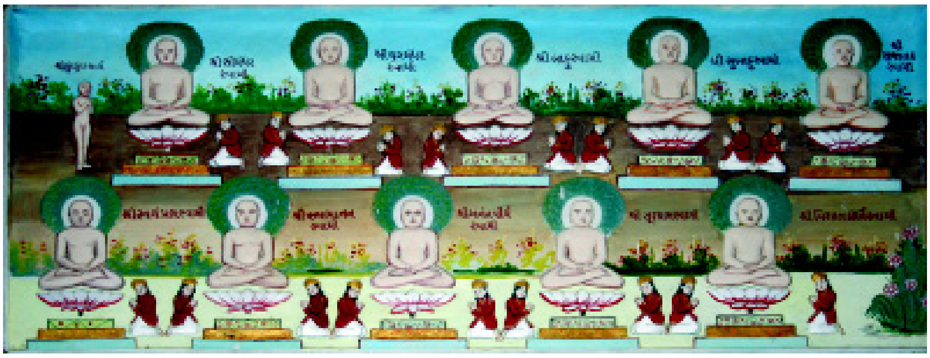

दिव्यज्ञाननेत्रधारक जिनेन्द्र भगवानके ज्ञानदर्पणमें समस्त लोकालोक झलक रहा है। उनके ज्ञानानुसार अरूपी आकाशके जिस मध्यभागमें जीव-पुद्गलादि छः जातिके द्रव्य-(पदार्थ) पाए जाते हैं उसे लोक कहते हैं, अन्य दसों दिशाओंमें रहे इस आकाशमात्रको अलोक–आकाश कहते हैं।

अन्य प्रकारसे कहें तो जहाँ जीव अपने शुभ-अशुभ और शुद्ध परिणामोंका फल भोगता है, ऐसे स्थानको लोक कहते हैं। यह लोक नीचे रखे आधे मृदंगके ऊपर पूरा मृदंग रखा जाय ऐसी आकृतिका धारक है। अथवा पैर फैलाकर कटिपर हाथ रखे हुए पुरुषके आकार जैसा है। यह रचना किसीके द्वारा निर्मित नहीं है, अतः उसे 'शाश्वती रचना' या 'अकृत्रिम रचना' भी कही जाती है।

इसके बीच मध्यभागकी एक राजू लम्बाई-चौड़ाई परिमाणवाला भाग जिसे 'त्रस-नाड़ी' भी कहते हैं। इसी भागमें त्रस-जीव बसते हैं—परन्तु स्थावर जीव लोकमें सभी स्थानमें बसते हैं।

इस रचनाके बिल्कुल मध्यभागको 'मध्यलोक' कहते हैं। (यहाँ वर्तमानमें हम सब रह रहे हैं।) मध्यलोकमें मनुष्य व तिर्यंचजीवोंको अपने मध्यम परिणामरूप शुभ-अशुभ परिणामके फल मध्यम इन्द्रिय सुख भोगनेके स्थान हैं। यद्यपि वहाँ मध्यम पुण्यके

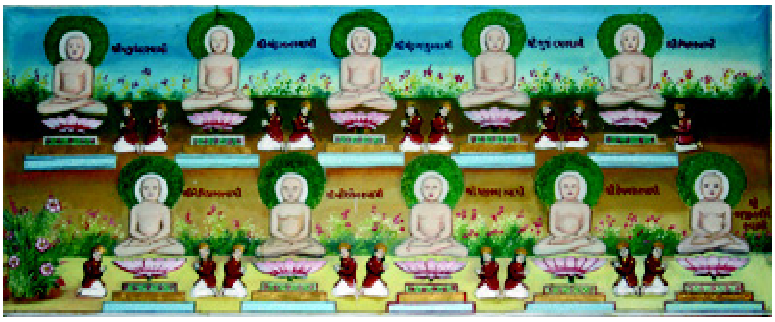

भोगनेके स्थानरूप व्यंतरदेवोंके स्थान भी होते हैं। परन्तु मुख्यरूपेण मनुष्य-तिर्यञ्चोंके स्थानकी अपेक्षासे यहाँ मनुष्य-तिर्यञ्च बसते हैं। मध्यलोककी 'चित्रा पृथ्वी'के ऊपर सुदर्शन मेरु पर्वतकी चोटी तक ९९०००योजन तक विस्तार-वाला भाग मध्यलोक है। उसकी लंबाई-चौड़ाई क्रमशः सात राजू व एक राजू है।

मध्यलोककी चित्रा पृथ्वीसे ७९० योजन ऊपर जाने पर वहाँसे ११० योजन ऊँचाईका असंख्यात द्वीप-समुद्र जितनी लम्बाईवाला ज्योतिष-लोक हैं। मध्यलोकमें चूड़ीके आकारके असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं उसमें पहला द्वीप व अन्तिम समुद्र है।

उस रचनाके बहुमध्यभागमें एक लाख योजन व्यासवाला जम्बूद्वीप है। उससे भिड़कर दो लाख योजन प्रमाण लवण समुद्र, उससे भिड़कर चार लाख योजन धातकीखण्ड, इस भांति दुगने-दुगने विस्तारवाले द्वीप-समुद्र हैं। उसमें जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड व अर्ध पुष्करद्वीपके भाग तक ही मनुष्योंका विचरण होनेसे उसे मनुष्यलोक कहते हैं—इस विस्तारका परिमाण पैंतालीस लाख योजन है। यहाँसे ही मनुष्य सिद्ध होते है इसलिए मनुष्यलोकके सीधे ऊपर पैतालीस लाख योजनकी सिद्धशिला है वहाँ लोकके उत्कृष्टभागमें 'सिद्ध भगवंत' बिराजते हैं।

उक्त ढाई द्वीपके मध्यमें जम्बूद्वीपकी जो रचना है, वैसी ही दूनी रचना धातकीखंड व पुष्करार्द्धद्वीपके अर्धभागमें है। अतः जम्बूद्वीपमें एक मेरु पर्वत व धातकीखण्ड तथा पुष्करार्द्धद्वीपमें दो-दो मेरु पर्वत है। इस भांति ढाई द्वीपोंमें पाँच मेरु पर्वत हैं। ये पांचों मेरु प्रत्येक क्षेत्रके मध्यमें पूर्व-पश्चिम स्थित हैं। इन प्रत्येक मेरु पर्वतकी पूर्व व पश्चिम दिशामें विदेहक्षेत्र हैं। इन विदेहक्षेत्रमें सीता-सीतोदा नदी, वक्षार पर्वत व विभंगा नदीयों द्वारा, भद्रसाल वनकी वेदियोंसे आगे इस क्षेत्रके नदीके उत्तर-

दक्षिण तट पर प्रत्येक क्षेत्रके आठ-आठ भाग हो जाते हैं। इस भांति प्रत्येक मेरु सम्बन्धित बत्तीस-बत्तीस विदेह इस क्षेत्रमें हो जाते हैं। इस भांति पाँचों मेरु सम्बन्धित विदेहके १६० विजय शाश्वत हैं। जैसे भरत–ऐरावत क्षेत्रमें उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी कालमें एक से छह प्रकारके काल परिवर्तन होते हैं, वैसे यहाँ इन विदेहोंमें नहीं होते। यहाँ सदा कर्मभूमिकी रचना चतुर्थकाल जैसी होती है। यहाँ हंमेशा धर्मकाल ही रहता है, अर्थात् यहाँसे जीव सदा पुरुषार्थ करके उस ही भवमें मोक्ष प्राप्त कर सकता है। यहाँ सदा तीर्थंकर भगवंत विराजमान रहते हैं। यहाँ जघन्यरूपसे पाँचों विदेहमें मिलकर कुल बीस तीर्थंकर व उत्कृष्टरूपसे १६० तीर्थंकर विराजमान रहते हैं। प्रवर्तमानकालमें इन पाँचों मेरु सम्बन्धित विदेहक्षेत्रमें बीस तीर्थंकर विराजमान हैं। इनमेंसे प्रत्येक मेरुके पूर्व व पश्चिमके विदेहमें दो-दो तीर्थंकर शाश्वत विराजमान रहते हैं और इन तीर्थंकरोंके [1]सीमंधर आदि बीस शाश्वत नाम हैं अर्थात् त्रिकाल इन बीस नामवाले तीर्थंकर यहाँ बिराजमान रहते हैं। जब ये सिद्धदशाको प्राप्त होते हैं, उस ही समय उन विदेहोंमें इन्हीं नामवाले अन्य तीर्थंकरका ज्ञानकल्याणक हो जाता है। अतः ये बीस विहरमान तीर्थंकर भगवंत शाश्वत जिनेन्द्र भगवान माने जाते हैं।

चतुर्निकायके देव यहाँ भगवानके दर्शन-पूजन आदि करने आते हैं। [(तदुपरांत भरत-ऐरावतके समर्थ ऋद्धिधारक आचार्य–मुनिराज भी ऋद्धि द्वारा या पूर्व पुण्यसे देवों द्वारा यहाँ भगवानके दर्शन करने आते हैं। इस भरतक्षेत्रके भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेवने चारणऋद्धिके बलसे या देवों द्वारा भगवान श्री सीमंधरस्वामीके दर्शन किये व सप्ताहभर वहाँ भगवानकी दिव्यध्वनिका व गणधरों-केवली-श्रुतकेवली भगवंतोंका लाभ लिया था। (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी व पूज्य भगवती माता बहिनश्री अपने पूर्वभवमें उस समय वहाँ विद्यमान थे।)] यहाँ बीस विहरमान भगवंतोंको देव भक्ति-भावसे दर्शन करते हुए दिख रहे हैं।

---

१. सीमंधर आदि २० तीर्थंकरोंके नाम : १. सीमंधर, २. युगमंधर, ३. बाहु, ४. सुबाहु, ५. संजात, ६. स्वयंप्रभ, ७. ऋषभानन, ८. अनन्तवीर्य, ९. सूरिप्रभ, १०. विशालप्रभ, ११. वज्रधर, १२. चन्द्रानन, १३. चन्द्रबाहु, १४. भुजंगम, १५. ईश्वर, १६. नेमिप्रभ, १७. वीरसेन, १८. महाभद्र, १९. देवयश, २०. अजितवीर्य

श्री अजितनाथ भगवानका दीक्षा कल्याणक

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें सीता नदीके दक्षिण किनारे पर एक वत्सा नामका देश है। उसमें धन-धान्यसे संपन्न एक सुसीमा नगरी है। वहाँ किसी समय विमलवाहन राजा राज्य करते थे। राजा विमलवाहन समस्त गुणोंसे विभूषित थे। वे उत्साह, मन्त्र और प्रभाव—इन तीन शक्तियोंसे सतत् न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करते थे। राज्यकार्य करते हुए भी वे आत्म-धर्म, संयम, सामायिक आदिको नहीं भूलते थे। वे बहुत ही मन्द-कषायी थे।

एक दिन राजा विमलवाहनको कुछ कारणवश वैराग्य उत्पन्न हो गया। विरक्त होकर वे सोचने लगे—संसारके भीतर कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है। यह मेरा आत्मा भी एक दिन इस शरीरको छोड़कर चला जायगा, क्योंकि आत्मा और शरीरका सम्बन्ध तब तक रहता है, जब तक कि आयु शेष रहती है। यह आयु भी धीरे-धीरे घटती जा रही है; इसलिए आयु पूर्ण होनेके पहिले ही आत्म-कल्याणकी ओर प्रवृत्ति करनी चाहिये।

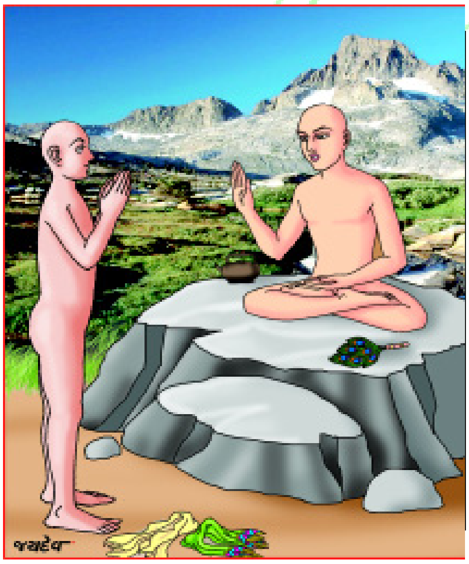

इस प्रकार विचार कर वे वनमें गये और वहाँ एक दिगम्बर यतीके सानिध्यमें दीक्षित हो गये। उनके साथ और भी बहुत से राजा दीक्षित हुए थे। गुरुके चरणोंके समीप रहकर उन्होंने खूब विद्याध्ययन किया, जिससे उन्हें ग्यारह अङ्गका ज्ञान हो गया था। उसी समय उन्होंने दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन भी किया था, जिससे उन्हें 'तीर्थंकर' नामक महापुण्य-प्रकृतिका बन्ध हो गया था।

राजा विमलवाहन आयुके अन्तमें संन्यासपूर्वक मर कर विजय विमानमें अहमिन्द्र हुये। वहाँ उनकी आयु तेतीस सागरकी थी। उनका शरीर जैसा शुक्ल था, वैसा ही हृदय भी शुक्ल था। उन्हें वहाँ संकल्प मात्रसे ही सब पदार्थ प्राप्त हो जाते थे। पहिलेकी तरह वहाँ भी उनका चित्त विषयोंसे उदासीन रहता था। वे वहाँ विषयानन्दको छोड़कर आत्मानन्दमें ही लीन रहते थे। तेतीस हजार वर्ष बीत जाने पर उन्हें एक बार आहारकी इच्छा होती थी और तेतीस पक्ष बाद एक बार श्वासोच्छ्‌वास लिया करते थे। वहाँ उनके शरीरकी ऊँचाई एक हाथकी थी। अहमिन्द्र (राजा विमलवाहन)को विजय विमानमें पहुँचते ही 'अवधिज्ञान' हो गया था, जिससे वे त्रस नाड़ीके भीतरके सभी पदार्थोंको प्रत्यक्षकी तरह स्पष्ट जान लेते थे। ये ही अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान श्री अजितनाथ होंगे।

इसी भारत वसुन्धरा पर अत्यन्त शोभायमान एक साकेतपुरी नगरी (अयोध्यापुरी) है। उसमें किसी समय इक्ष्वाकुवंशीय काश्यपगोत्रीय राजा जितशत्रु राज्य करते थे। उनकी महारानीका नाम विजयसेना था। ऊपर जिन अहमिन्द्रका कथन कर आये हैं, उनकी आयु जब वहाँ छः माह बाकी रह गई, तब यहाँ राजा जितशत्रुके गृह पर प्रतिदिन तीन-तीन बार साढे तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा होने लगी। इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेर रत्न बरसाते थे। यह अतिशय देखकर राजा जितशत्रु बहुत ही आनन्दित होते थे। इसके बाद ज्येष्ठ महिनेकी अमावस्याके दिन रात्रिके पिछले भागमें जब कि रोहिणी नक्षत्रका उदय था, तब ब्रह्म मुहूर्तके कुछ पहिले महारानी विजयसेनाने ऐरावत आदि सोलह स्वप्न देखे और उसके बाद अपने मुंहमें एक मत्त हाथीको प्रवेश करते हुए देखा।

प्रातः होते ही महारानी ने स्वप्नोंका फल राजा जितशत्रुसे पूछा, तो उन्होंने देशावधिरूप लोचनसे देखकर कहा, कि हे देवी! तुम्हारे तीर्थंकर पुत्र होगा। उसीके पुण्यबलके कारण छ माह पहिलेसे प्रतिदिन ये रत्न बरस रहे हैं और आज तुमने ये सोलह स्वप्न देखे हैं। स्वप्नोंका फल सुनकर विजयसेना आनन्दसे फूली न समाती थी। जिस समय उसने स्वप्नमें मुंहमें प्रवेश करते हुए गन्ध हस्तीको देखा था, उसी समय अहमिन्द्र राजा विमलवाहनका जीव विजय विमानसे चयकर उनके गर्भमें अवतीर्ण हुआ

था। उस दिन देवोंने आकर साकेतपुरीमें खूब उत्सव किया था।

धीरे-धीरे गर्भ पुष्ट होता गया। महाराज जितशत्रुके घर रत्नोंकी धारा गर्भके दिनोंमें भी, पहलेकी तरह ही बरसती रहती थी। भावी पुत्रके अनुपम अतिशयका ध्यान कर महाराज जितशत्रुको बहुत आनन्द होता था। जब गर्भका समय व्यतीत हो गया, तब माघ शुक्ला दशमीके दिन महारानी विजयसेनाने पुत्र-रत्नको जन्म दिया। वह पुत्र जन्मसे ही मति, श्रुत और अवधि–इन तीनों ज्ञानोंसे शोभायमान था। उसकी उत्पत्तिके समय अनेक शुभ शकुन हुए थे। उसी समय देवोंने सुमेरु पर्वत पर ले जा कर उनका जन्माभिषेक किया और 'अजित' नाम रखा। भगवान श्री अजितनाथ धीरे-धीरे बढ़ने लगे। वे अपनी बाल-सुलभ चेष्टाओंसे माता-पिता तथा बन्धुवर्ग आदिका मन प्रमुदित करते थे। आपसके खेल-कूदमें भी जब इनके भाई इनसे पराजित हो जाते थे, तब वे इनका 'अजित' नाम सार्थक समझने लगते थे।

भगवान श्री आदिनाथको मुक्त हुए पचास लाख करोड़ सागर बीत जाने पर इनका जन्म हुआ था। उक्त अंतरालमें लोगोंके हृदयमें धर्मके प्रति जो कुछ शिथिलता-सी आ गयी थी; इन्होंने उसे दूर कर फिरसे धर्मका प्रद्योत किया था। इनके शरीरका रंग तपे हुए सुवर्णकी भाँति था। ये बहुत ही वीर और क्रीड़ा-करनेमें चतुर पुरुष थे। अनेक तरहकी क्रीड़ा करते हुए जब इनके अठारह लाख पूर्व बीत गये, तब इन्होंने युवावस्थामें पदार्पण किया। उस समय उनके शरीरकी शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई थी। महाराज जितशत्रुने अनेक सुन्दर कन्याओंके साथ उनका विवाह कर दिया और शुभ मुहूर्तमें उन्हें राज्य देकर स्वयं धर्म-सेवन करते हुए सद्गतिको प्राप्त हुए।

भगवान श्री अजितनाथने राज्य पाकर प्रजाका बहुत अच्छी तरह पालन किया, इनके गुणोंसे मुग्ध होकर प्रजाके मनमें महाराजा जितशत्रुकी स्मृति भी मिट गई। इन्होंने समयोपयोगी अनेक सुधार करते हुए त्रेपन लाख पूर्व तक राज्य-लक्ष्मीका भोग किया।

एक दिन भगवान श्री अजितनाथ महलकी छत पर बैठे हुए थे, कि उन्होंने चमकती हुई बिजलीको अचानक नीचे गिरकर नष्ट होते देखा। उसे देखकर उनका हृदय विषयोंसे विरक्त हो गया। वे सोचने लगे कि 'संसारका हर एक पदार्थ इसी बिजलीकी तरह क्षणभंगुर है। मेरा यह सुन्दर शरीर और यह मनुष्य पर्याय भी एक

अपने महलकी छतमें खड़े आकाशमें चमकती बिजली देख वैराग्य प्राप्त राजा अजितनाथ

दिन इसी तरह नष्ट हो जावेंगे। जिस उद्देश्यके लिए मेरा जन्म हुआ था, उसके लिए मैंने अभी तक कुछ भी नहीं किया। खेद है, कि मैंने सामान्य अज्ञ मनुष्योंकी तरह अपनी आयुका बहुभाग व्यर्थ ही खो दिया। अब आजसे मैं सर्वथा विरक्त होकर दिगम्बर मुद्राको धारण कर वनमें रहूँगा, क्योंकि इन रंग-बिरंगे महलोंमें रहनेसे चित्तको शान्ति नहीं मिल सकती।'

इधर इनके चित्तमें ऐसा विचार चल रहा था, उधर लौकान्तिक देवोंके आसन काँपने लगे। आसन काँपनेसे उन्हें निश्चय हो गया था, कि 'भगवान श्री अजितनाथका चित्त वैराग्यकी ओर बढ़ रहा है।' निश्चयानुसार वे शीघ्र ही भगवानके पास आये और तरह-तरहके सुभाषणोंसे प्रभुकी वैराग्य-धाराको अत्याधिक प्रवर्द्धित कर अपने-अपने स्थान पर चले गये। उसी समय तपकल्याणकका उत्सव मनानेके लिए वहाँ समस्त देव आकर उपस्थित हुए। सबसे पहिले भगवानने अभिषेकपूर्वक 'अजितसेन' नामक पुत्रको राज्यका भार सौंपा और फिर अनाकुल हो वनमें जानेके लिए तैयार हो गये।

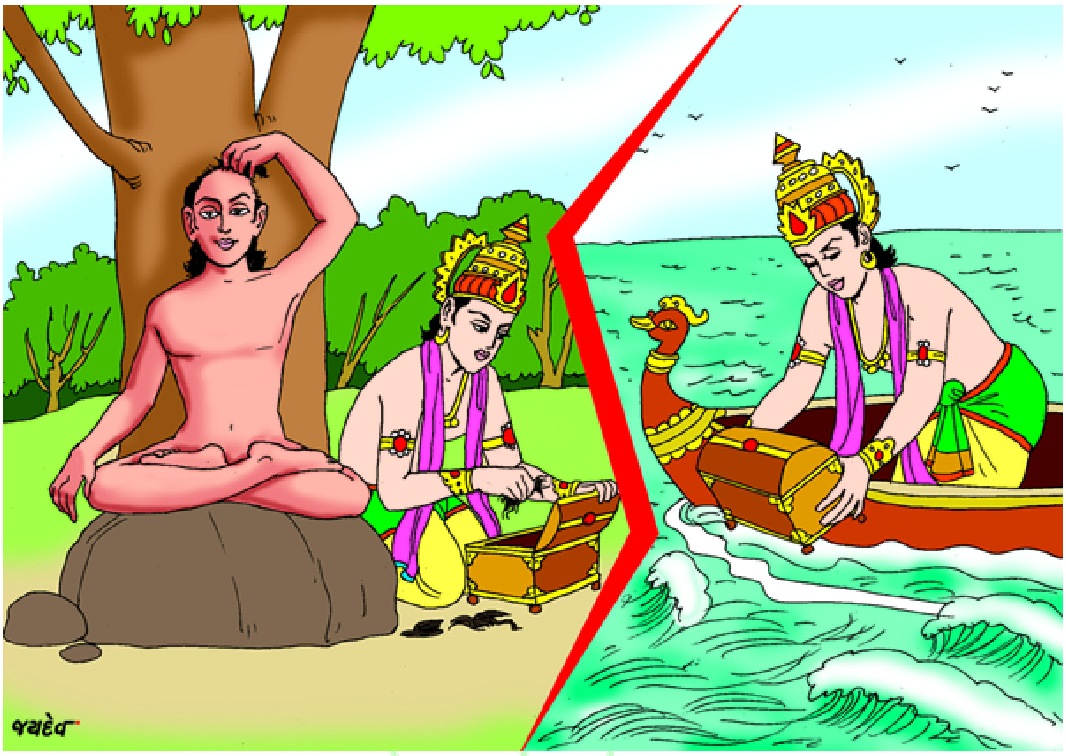

भगवान अजितनाथका जंगलमें पंचमुष्टि केशलोंचपूर्वक दीक्षा। इन पवित्र केशोंका इन्द्र द्वारा पिटारेमें लेकर क्षीर समुद्रमें क्षेपण।

देवोंने उनका तीर्थजलसे अभिषेक किया और उन्हें तरह-तरहके मनोहर आभूषण पहनाये अवश्य, पर उनकी इस रागवर्द्धक क्रियामें भगवान श्री अजितनाथको कुछ भी आनन्द नहीं मिला। वे 'सुप्रभा' नामक पालकी पर सवार हो गये। पालकीको मनुष्य, विद्याधर और देवलोग क्रम-क्रमसे अयोध्याके सहेतुक वनमें ले गये। वहाँ वे सप्तपर्ण वृक्षके नीचे पालकीसे उतरकर एक सुन्दर शिला पर बैठ गये। जिस शिला पर वे बैठ गये थे, उस पर देवांगनाओंने रत्नोंके चूर्णसे कई तरहके चौक पूरे थे। सप्तपर्ण वृक्षके नीचे विराजमान द्वितीय जिनेन्द्र भगवान श्री अजितनाथने पहले सबकी ओर विरक्त दृष्टिसे देखकर दीक्षित होनेके लिए सम्मति ली। फिर पूर्वकी ओर मुंह कर 'ॐ नमः सिद्धेभ्य' कहते हुए वस्त्राभूषण उतार कर फेंक दिये और पञ्च मुष्टियोंसे केश उखाड़ डाले। इन्द्रने केशोंको उठाकर रत्नोंके पिटारेमें रख लिया और उत्सव समाप्त होनेके बाद क्षीर-सागरमें क्षेपण कर दिया। दीक्षा लेते समय उन्होंने षष्ठोपवास धारण किया था। जिस दिन भगवान श्री अजितनाथने दीक्षा धारण की थी, उस दिन माघ

मासके शुक्लपक्षकी नवमी थी और रोहिणी नक्षत्रका उदय था। उन्होंने दीक्षा सायंकालके समय ली थी। उनके साथ एक हजार अन्य राजाओंने दीक्षा धारण की थी। उस समय भगवान श्री अजितनाथकी विशुद्धता इतनी अधिक बढ़ गई थी, कि उन्हें दीक्षा लेते ही मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो गया था।

जब प्रथम योग षष्ठोपवास समाप्त हुआ, तब वे आहारके लिए अयोध्यापुरीमें आये। वहाँ ब्रह्मा नामक श्रेष्ठीने उन्हें उत्तम आहार दिया, जिससे उनके घर पर देवोंने पञ्चाश्चर्य प्रकट किये। भगवान श्री अजितनाथ आहार ले कर चुपचाप वनको चले गये और वहाँ आत्मध्यानमें लीन हो गये। योग पूरा होने पर वे आहारके लिए नगरोंमें जाते और आहार लेकर पुनः वनमें लौट आते थे। इस तरह बारह वर्ष तक उन्होंने कठिन तपस्या की, जिसके फलस्वरूप उन्हें पौष मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीके दिन सायंकालके समय रोहिणी नक्षत्रके उदयमें 'केवलज्ञान' प्राप्त हो गया।

अब श्री भगवान अजितनाथ अपने दिव्यज्ञान (केवलज्ञान)से तीनों लोकके सब चराचर पदार्थोंको एक साथ जानने लगे। देवोंने आकर ज्ञान-कल्याणकका उत्सव मनाया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर धनपति कुबेरने विशाल समवसरणकी रचना की। उसमें गन्धकुटीके मध्यभागमें भगवान श्री अजितनाथ विराजमान हुए। वह सभा देव, मनुष्य, तिर्यंच आदिसे खचाखच भर गई, भगवानने अपनी दिव्य-ध्वनिके द्वारा सबको सद्धर्मोपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर लोग आत्मधर्ममें पुनः दृढ हो गये।

पावापुरी तीर्थक्षेत्र–जलमन्दिर

यह पावापुरी सिद्धक्षेत्र है। यहाँसे अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमानस्वामीने निर्वाण प्राप्त किया है। जैसा कि निर्वाणकांड व निर्वाणभक्ति आदि अनेक शास्त्रोंमें इसे भगवान श्री महावीरकी निर्वाणभूमि माना है।

"इस बारेमें कथानक इस प्रकार है, कि : भगवान श्री महावीर निरन्तर सब ओरके भव्य समूहको सम्बोधित कर पावानगरी पहुँचे और वहाँके 'मनोहरोद्यान' नामक वनमें विराजमान हो गये। जब चतुर्थकालमें तीन वर्ष साढ़े आठ मास बाकी रहे, तब स्वाति नक्षत्रमें कार्तिकी अमावस्याके दिन प्रातःकालमें, स्वभावसे ही योग निरोध कर घातियाकर्मोके समान अघातियाकर्मोको भी नष्ट कर, बन्धन रहित हो संसारके प्राणीयोंको सुख उपजाते हुए, निरन्तराय तथा विशाल सुखसे सहित निर्बन्ध-मोक्ष-स्थानको प्राप्त हुए। गर्भादि पाँच कल्याणकोंके महान अधिपति, भगवान श्री महावीरके निर्वाण महोत्सवके समय चारों निकायके देवोंने विधिपूर्वक उनके शरीरकी पूजा की। उस समय सुर और असुरोंके द्वारा जलायी हुई देदीप्यमान दीपकोंकी पंक्तिसे पावानगरीका आकाश सब ओरसे जगमगा उठा। उस समयसे लेकर भगवानके निर्वाण कल्याणककी भक्तिसे युक्त संसारके प्राणी इस भरतक्षेत्रमें प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिकाके द्वारा भगवान श्री महावीरकी पूजा करनेके लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् उन्हींकी स्मृतिमें दीपावलीका उत्सव मनाने लगे।

जिस स्थान पर भगवानका निर्वाण हुआ था, वहाँ अब एक विशाल सरोवर बना हुआ है। इस तालाबके सम्बन्धमें जनतामें एक विचित्र किवदन्ती प्रचलित है। कहा जाता है, कि भगवानके निर्वाणके समय यहाँ भारी देवगण एवं जनसमूह एकत्रित हुआ था। प्रत्येक व्यक्तिने इस पवित्र भूमिकी एक-एक चुटकी मिट्टी उठाकर अपने भालमें श्रद्धापूर्वक लगायी थी। तबहीसे यह तालाब बन गया है। आम जनतामें इस सरोवरको पहले नोखुर सरोवर कहा जाता था जिसका अर्थ है, नाखूनोंसे खोदा गया।

यह भी कहा जाता है, कि यह सरोवर पहले चौरासी बीघेमें फैला हुआ था। किन्तु आजकल यह चौथाई मील लम्बा और इतना ही चौड़ा है। सरोवर अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। विविध रंगोंमें खिले हुए कमल-पुष्पोंके कारण इस सरोवरकी शोभा अद्‌भुत लगती है। पुष्पों पर सौरभ और रसके लोभी भ्रमर गुंजारव करते रहते हैं। तालाबमें मछलियाँ और सर्प किलोल करते रहते हैं। आरतीके समय दीपक लेकर भक्तगण आरती उतारकर पानीमें बहाते हैं वह दीपावलि मनोरम्य होती है।

इस सरोवरके मध्यमें श्वेत संगमरमरसे निर्मित एक जैन मंदिर है। जिसे जलमन्दिर कहते हैं। इस जलमन्दिरमें जानेके लिए सड़कके किनारे लाल पाषाणका बना हुआ एक बड़ा प्रवेशद्वार मिलता है। इस द्वारसे मन्दिर तक लाल पाषाणका ही ६००फुट लम्बा पुल बना हुआ है। रात्रिमें जब बिजलीका प्रकाश होता है और उसका प्रतिबिम्ब जलमें पड़ता है, तो वहाँका दृश्य बड़ा ही भव्य और सुहावना लगता है। जहाँ पुल समाप्त होता है, वहाँ संगमरमरका द्वार बना हुआ है। उसमें प्रवेश करने पर संगमरमरका विशाल चबूतरा मिलता है। उसके मध्यमें संगमरमरका भव्य और कलापूर्ण जैनमन्दिर बना हुआ है। जिस टापूपर मन्दिर बना हुआ है, वह १०४ वर्ग गज है। कहते हैं, इस मन्दिरका निर्माण किसी नन्दिवर्धन नामक राजाने कराया था और वेदीकी नींव सोनेकी ईंटोंसे भरी गयी थी। प्रारम्भमें यह मन्दिर संगमरमरका नहीं था, संगमरमर बादमें लगाया गया। मूल मन्दिर ईंटोंका बना हुआ है। कुछ वर्ष पूर्व इस मन्दिरका जीर्णोद्धार हुआ था। उस समय प्राचीन मन्दिर और उसमें लगी हुई बड़ी-बड़ी ईंटोंको हजारों व्यक्तियोंने देखा था। पुरातत्त्ववेत्ताओंके मतसे ये ईंटें दो-ढाई हजार वर्ष प्राचीन हैं। संक्षेपमें यह निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि यह मन्दिर अपने मूलरूपमें बहुत प्राचीन है।

मन्दिरमें केवल गर्भगृह है और बाहरकी ओर उसके चारों ओर बरामदा है। मन्दिरमें तीन दीवार-वेदियाँ बनी हुई हैं। मध्यकी वेदीमें भगवान श्री महावीरके चरण विराजमान हैं। इसी प्रकार बायीं ओरकी वेदीमें भगवानके मुख्य गणधर श्री गौतमस्वामीके तथा दायीं ओरकी वेदीमें सुधर्मा स्वामीके चरण स्थापित हैं। मन्दिरमें कोई मूर्ति नहीं है। मन्दिर शिखरबद्ध है।

इस क्षेत्र पर पहले दो मन्दिर थे और एक धर्मशाला। इनपर दोनों सम्प्रदायवालोंका समान अधिकार था। बादमें दिगम्बर समाजने पृथक् धर्मशालाओं और मन्दिरोंका निर्माण किया। आजकल जलमन्दिर और समवसरण मन्दिर पर दर्शन-पूजनकी दृष्टिसे दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंका समान अधिकार है। जलमन्दिरके निकट ही 'पावापुरी सिद्धक्षेत्र दिगम्बर जैन कार्यालय' है। यहाँ पर सात दिगम्बर जैन मन्दिरोंका समूह है। सभी मन्दिर अति दर्शनीय हैं। दिगम्बर जैनोंकी बनाई हुई दो धर्मशालाएँ हैं। यहाँ सभी सुविधा है।

आजकल पावा और पुरी दो पृथक् गाँव हैं। वर्तमान पावापुरी मन्दिर न पावामें है और न पुरीमें, बल्कि पोखरपुर मौजेमें है। प्राचीनकालमें इस तरह दो गाँव नहीं थे। एक ही गाँव था। एक समय ऐसा आया, कि नगरकी आबादीके बीचमें अन्तराल पड़ गया। तब एक ओरकी आबादीवाले पावामें और दूसरी ओरकी आबादीवाले पुरीमें माने जाने लगे। भगवान श्री महावीरका निर्वाण पावानगरके बाह्य उद्यानमें हुआ था– ऐसा शास्त्रोक्त है। भगवानके निर्वाण पश्चात् अब उसी स्थान पर सरोवर अर्थात् पोखर बन गया और निकट बस्ती बसने पर यह पोखरपुर कहलाने लगा।

बौद्धोंके शास्त्रोंमें भी भगवान श्री महावीरके निर्वाण आदिकी काफी चर्चा मिलती है।

बिहार प्रान्तमें पटना जिलेके बिहार शरीफकी ओर चौदह कि.मी. दूर यह पावापुरी सिद्धक्षेत्र है।

पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने वि.सं. २०१३ (ई.स. १९५७) व वि.सं. २०२३में ससंघ इस पावन तीर्थकी भक्तिभाव सहित वन्दना की थी।

श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र

श्री सम्मेदशिखर सभी तीर्थक्षेत्रोंमें प्रमुख तीर्थक्षेत्र है। इसीलिए इसे तीर्थराज कहा जाता है। इसकी आत्म-आराधनापूर्वक भाव सहित वन्दना-यात्रा करनेसे कोटि-कोटि जन्मोंसे संचित कर्मोंका नाश हो जाता है। निर्वाणक्षेत्र-पूजामें कविवर द्यानतरायजीने सत्य ही लिखा है—''एक बार बन्दै जो कोई। ताहि नरक-पशुगति नहिं होई।'' एक बार (अंतरंग शुद्धिपूर्वक समर्पण भावमय भक्तिपूर्वककी) वन्दना करनेका फल नरक और पशुगतिसे ही छुटकारा नहीं है, अपितु परम्परासे संसारसे भी छुटकारा है। किन्तु यह वन्दना द्रव्य-वन्दना या क्षेत्र-वन्दना नहीं, (अंतरंग शुद्धिपूर्वक समर्पण भावमय भक्तिपूर्वककी) भाव-वन्दना जाननी चाहिए।

ऐसी अनुश्रुति है, कि श्री सम्मेदशिखर और अयोध्या ये दो तीर्थ अनादि-निधन शाश्वत हैं। अयोध्यामें सभी तीर्थंकरोंका जन्म होता है और सम्मेदशिखरमें सभी

तीर्थंकरोंका निर्वाण होता है। किन्तु हुण्डावसर्पिणीके काल-दोषसे इस शाश्वत नियममें व्यतिक्रम हो गया। अतः अयोध्यामें केवल पाँच तीर्थंकरोंका ही जन्म हुआ और सम्मेदशिखरसे केवल बीस तीर्थंकरोंने निर्वाण-प्राप्त किया। किन्तु इनके अतिरिक्त भी असंख्य मुनियोंने यहीं पर तपश्चरण करके मुक्ति प्राप्त की। सम्मेदशिखरकी भाव-वन्दनासे तात्पर्य यह है, कि इस क्षेत्रसे जो तीर्थंकर और अन्य मुनिवर मुक्तिको प्राप्त हुए हैं, उनके गुणोंको (सम्यग्दर्शनपूर्वक) अपने हृदयमें उतारें और तद्नुसार अपनी आत्माके (श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रादि) गुणोंका विकास करें। ऐसा करनेसे मुक्तिका मार्ग प्रशस्त होगा, इसमें सन्देह नहीं।

ढाई द्वीपमें कुल १७० सम्मेदशिखर होते हैं। उनमें जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रका सम्मेदशिखर वही है जो पारसनाथ हिलके नामसे विख्यात है। प्राकृत निर्वाणकाण्डमें सम्मेदशिखरसे बीस तीर्थंकरोंको निर्वाण-प्राप्तिका उल्लेख करते हुए उन्हें नमस्कार किया गया है।

सगर चक्रवर्ती व उनके ६०००० पुत्रोंने इसी क्षेत्रसे दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त किया था।

दिगम्बर परम्परामें इस प्रकारकी मान्यता प्रचलित है, कि तीर्थंकर भगवान जिस स्थानसे मुक्त होते हैं, उस स्थान पर सौधर्मेन्द्र द्वारा चिह्न स्वरूप 'स्वस्तिक' बना दिया जाता है। इस मान्यताके आधार पर यह कहा जा सकता है, कि भक्त श्रावकोंने उन स्थानों पर तीर्थंकरोंके चरण स्थापित किये। (मानसिंहके मन्त्री) महामात्य नानूने जिन मन्दिरोंका निर्माण किया था, वे पुराने जीर्ण मन्दिरोंके स्थानपर ही बनाये गये थे। (यहाँ मन्दिरोंका अर्थ टोंके हैं।)

ऐसा भी कहा जाता है कि (१) इस क्षेत्रपर सौधर्म इन्द्रने बीस तीर्थंकरोंकी प्रतिमा स्थापित की थी। (२) उन प्रतिमाओंका प्रभामण्डल प्रतिमाओंके आकारका था, इसलिए उनकी ओर देखनेके लिए श्रद्धाकी आँखें ही समर्थ होती थीं। जिनके हृदयमें श्रद्धा नहीं होती थी, वे इन प्रभा-पुंज स्वरूप प्रतिमाओंको देख नहीं सकते थे। (३) यतिजीके काल तक अर्थात् तेरहवीं शताब्दी तक इस तीर्थराज पर दिगम्बर समाजका ही आधिपत्य था।

इस वर्णनसे यह फलितार्थ निकलता है, कि पहले सम्मेदशिखरके ऊपर बीस मन्दिर बने हुए थे और उनमें सौधर्मेन्द्र द्वारा प्रतिष्ठित बीस तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ विराजमान थीं। ये मन्दिर कितने बड़े थे और इनका क्या हुआ, यह तो पता नहीं चलता। लेकिन ऐसा लगता है, कि ये मन्दिर नहीं, बल्कि टोंकोंके रूपमें थे और पहले इन्हींमें मूर्ति विराजमान होंगी। पश्चात् असुरक्षा आदि कारणोंसे इन मूर्तियोंके स्थान पर चरण विराजमान कर दिये होंगे और जीर्ण होने पर महामात्य नानूने इनके स्थानपर ही बीस टोंके या मन्दिर बनवा दिये होंगे।

प्राचीनकालमें कई लोग ससंघ यात्राके लिये यहाँ आते थे, वैराग्य पाते थे, व मुनिदीक्षा लेते थे।

सम्मेदशिखरका माहात्म्य पूजा, शास्त्रों आदिमें कई स्थानों पर मिलता है।

मार्ग : तीर्थराज सम्मेदशिखरजी, जिसका दूसरा नाम 'पारसनाथ-हिल' है, बिहार प्रदेशके हजारीबाग जिलेमें स्थित है। यहाँ पहुँचनेके लिए रेलवेके कई मार्ग हैं—(१) गया, दिल्ली अथवा कलकत्ताकी ओरसे आनेवालोंको पारसनाथ स्टेशन उतरना चाहिए। कलकत्ताकी ओरसे आनेवाले गिरीडीह स्टेशन भी उतर सकते हैं। पटनासे राँची जानेवाली ट्रेनोंसे पारसनाथ उतर सकते हैं। ये सभी ईस्टर्न रेल्वेकी मेन लाईन हैं।

सम्मेदशिखरकी यात्राके लिए ऊपर जानेके दो मार्ग हैं—एक तो नीमिया घाट होकर और दूसरा मधुवनकी ओरसे। नीमिया घाट पर्वतके दक्षिणकी ओर है। यहाँ एक डाक बंगला, जैन धर्मशाला बनी हुई है। इधरसे जाने पर पर्वतकी वन्दना उलटी पड़ती है और सबसे पहले पार्श्वनाथ टोंक पड़ती है।

नीमियाघाटकी ओरसे सम्मेदशिखरकी यात्रा करनेमें छः मीलकी चढ़ाई पड़ती है। ऊपर टोंकोंकी वन्दना छः मील (९ कि.मी.) और वापसी छः मील। चढ़ाईमें एक मील तो मोटरसे जाने योग्य मार्ग है, शेष पाँच मील पैदल यात्रा करनी होती है।

मधुवनकी ओरसे भी कुल मिलाकर अठारह मील(२७ कि.मी.)की यात्रा करनी पड़ती है। किन्तु अधिकांश यात्री मधुवनकी ओरसे ही यात्रा करते हैं। इधरसे यात्रा करनेमें कई सुविधाएँ हैं। सबसे बड़ी सुविधा तो यह है कि इधर अन्य अनेक

यात्रियोंका साथ मिल जाता है और इतनी लम्बी यात्रा अन्य साथियोंके कारण सुगम बन जाती है, इसके विपरीत नीमिया घाटकी ओरसे यात्रा करनेसे यात्रीको प्रायः अकेले ही चढ़ना-उतरना पड़ता है। इससे यात्रा दुरूह मालूम पड़ने लगती है।

अठारह मीलकी यह लम्बी यात्रा किशोर, युवक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी, कहीं सीढ़ियोंके द्वारा, कहीं कंकरीली-पथरीली राहसे, तीर्थंकरोंका जय-घोष करते, स्तुति, विनती पढ़ते आनन्दपूर्वक कर लेते हैं। साँस फूल जाती है, किन्तु मनमें क्षण-भरको भी खिन्नताके भाव नहीं आते। बल्कि अपनी धार्मिक श्रद्धा, उल्लास, उत्साह और प्रकृतिकी अनिद्य सुषमामें विभोर होकर, यात्री यात्रा पूरी करके जब वापस अपने डेरे पर लौटता है, तो उसे अनुभव होता है, कि भगवानकी भक्तिमें अद्भुत शक्ति है, वरना इतनी लम्बी यात्रा कैसे सम्भव थी।

यहाँ पर कई धर्मशालाएँ, मन्दिर व प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं।

बीस तीर्थंकरोंका इसी पर्वत पर अन्तिम योग-निरोध होकर निर्वाण प्राप्त हुआ है। इनके अतिरिक्त यहाँसे असंख्य मुनियोंको मोक्ष प्राप्त हुआ है। यहाँसे मुक्ति प्राप्त करनेवाले मुनियोंकी संख्या शास्त्रोंमें दी हुई है। कुल टोंकोंकी संख्या बीस है, जो बीस तीर्थंकरोंके निर्वाणस्थान हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि इस क्षेत्रसे असंख्य मुनिजन अनादिकालसे समय-समय पर मुक्त हुए हैं। इसलिए यह क्षेत्र परम पवित्र है, उसका कण कण पवित्र है। यही कारण है, कि इस तीर्थ पर सिंह, व्याघ्र, हिरण आदि अनेक जाति विरोधी और हिंसक प्राणी विचरते देखे गये हैं। किन्तु कभी किसीने एक दूसरे पर आक्रमण किया हो या किसी यात्रीके साथ कभी कोई दुर्घटना घटी हो, ऐसा सुना नहीं गया। एक बार किसीको शेर मिला वो एक ओर चला गया और यात्री अपनी राहपर आगे बढ़ता गया। यह सब तीर्थराजका एक प्रकारका अतिशय ही कहा जा सकता है।

यहाँ टोंक पर जीर्णोद्धारके समय प्राचीन चरणचिह्न हटाकर नये चरण चिह्न विराजमान किये हैं, जिससे इस क्षेत्रका सही इतिहास या पुरातत्त्व ही समाप्त हो गया है।

यहाँकी वन्दना करनेवालोंको पालगंज और गिरीडीहके मन्दिरोंके दर्शन भी करना चाहिए। पालगंज यहाँसे लगभग दस मील है। वहाँ किलेमें प्राचीन मन्दिर है। उसमें भूगर्भसे निकली हुई भगवान महावीरकी अत्यन्त प्राचीन मूर्ति है। इसी प्रकार गिरीडीहमें दो मन्दिर हैं, एक तो बीसपन्थी कोठी मधुवनकी ओरसे बनवाया हुआ है और दूसरा तेरापन्थी पंचायती मन्दिर है, मन्दिरसे लगी हुई धर्मशाला भी है।

यहाँ तलहटीमें ठहरनेकी कई-धर्मशालाएँ हैं। तलहटीमें कई जिनमंदिर हैं वे दर्शनीय हैं।

क्षुल्लकश्री गणेशप्रसादजी वर्णीजीके साथ प्रसन्नमुद्रामें पूज्य गुरुदेवश्री

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने वि.सं. २०१३ (ई.स. १९५७) व वि.सं. २०२३ (ई.स. १९६७)में इस तीर्थकी ससंघ भक्ति-भाव सह वन्दना की थी। यहीं पर स्वामीजीके साथ क्षु. गणेशप्रसादजी वर्णीजीसे कई विद्वानोंकी उपस्थितिमें सुंदर तात्त्विक चर्चा हुई थी।

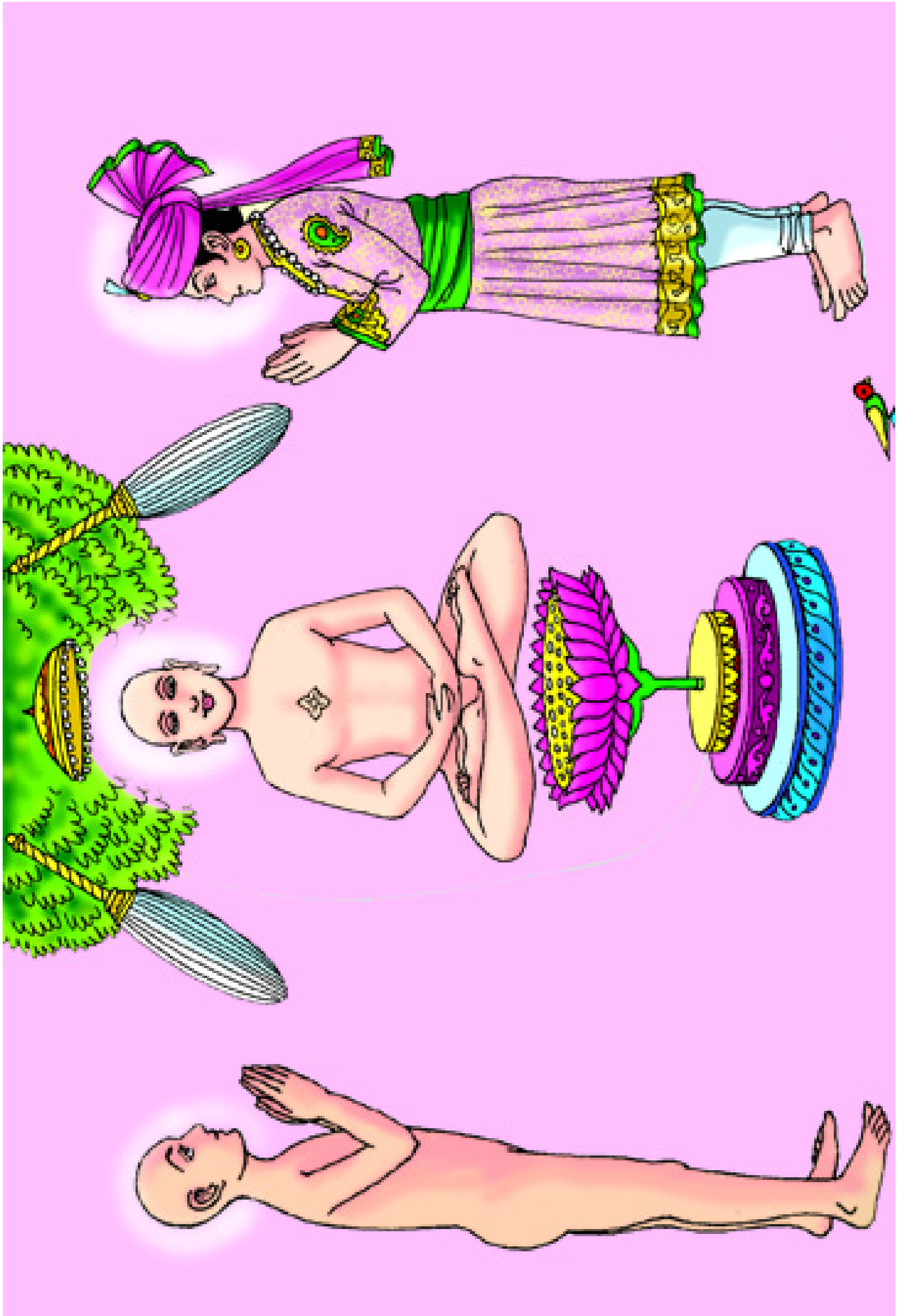

भगवान श्री सीमंधरनाथकी सभामें भरतक्षेत्रके समर्थ आचार्य कुन्दकुन्दाचार्यदेव और फतेहमंद राजकुमार

श्री सीमन्धर भगवानकी सभामें भगवान
श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव व गुणवान राजकुमार

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती विजयके करीब आजसे २००० वर्ष पूर्व पुण्डरीकिणी नगरीमें समवसरणमें भगवान सीमंधरनाथस्वामी शोभायमान हैं। उस समय जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके अति शुद्धात्मपरिणामी व चारणऋद्धिधारी, पुण्य व पवित्रतामें अजोड़ भगवत् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवको भगवानका अतिशय विरह महसूस हुआ। जिससे भगवानके दर्शन व रत्नत्रयकी विशेष निर्मलता हेतु चारणऋद्धिके बल या देवों द्वारा वे सदेह सीमंधर भगवानके समवसरणमें पहुँचे थे। उस समय भगवानकी वाणीमें 'सद्धर्मवृद्धिः अस्तुः' ऐसा मंगल आशीर्वाद आनेसे चक्रवर्तीने आश्चर्यसे पूछा प्रभु! 'ये छोटेसे मुनिराज कौन है?' प्रत्युत्तरमें सीमंधर भगवानने उन्हें भरतके समर्थ आचार्य होनेका बताया था।

उस समय वहाँ विदेहक्षेत्रस्थ कुण्डलपुर नगरीके गुणवान फतेहमंद राजकुमार— भगवानके दर्शनार्थ पधारे थे। वे भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवको वंदन कर रहे हैं।

उन्हीं दिनों चक्रवर्तीके प्रश्न करने पर भगवानकी वाणीमें आया, कि 'ये राजकुमार यहाँसे भरतक्षेत्रमें जन्मेंगे व वहाँ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवका धर्मतीर्थ प्रवर्तावेंगे।' तथा 'आगे जाकर चौथे भवमें धातकीखंडके पूर्व विदेहमें सूर्यकीर्ति व सर्वांगस्वामी दो नामके धारक तीर्थंकर होंगे।' यह बात सारे लोकसमुदायमें प्रसरित हो गई थी। सभी ओर राजकुमार राजकुमार, राजकुमार ऐसी महिमा वर्तती थी।

वे फतेहमंद राजकुमार और कोई नहीं, हमारे परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी ही हैं। ये सब बातें पूज्य बहिनश्रीके जातिस्मरणज्ञानसे अखिल विश्वके सारे मुमुक्षु समाजमें खूब हर्षोल्लास सह प्रचलित है। वे गुणवान राजकुमार व भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव भगवान श्री सीमन्धरस्वामीके प्रत्यक्ष दर्शन करते हुए दिखाई दे रहे हैं।

श्री ऋषभदेव तीर्थंकर पूर्व पाँचवें भवमें
श्रीधर नामक देव

कई वर्षों पूर्व मुनिराजको प्रीतिसे आहारदान देनेके फलसे वज्रजंघ और श्रीमतीके जीव भोगभूमिमें उत्पन्न हुए थे। वे पूर्वमें एक बार वज्रजंघ आर्य (भोगभूमिका जीव) अपनी स्त्री आर्याके साथ कल्पवृक्षकी शोभा निहारते हुए क्षण-भर बैठे ही थे, कि इतनेमें आकाशमेंसे जाते हुए सूर्यप्रभदेवके विमानको देखकर उन्हें अपनी स्त्रीके साथ-साथ ही जातिस्मरण हो गया और उसी क्षण दोनोंको संसारके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो गया। उसी समय वज्रजंघके जीवने दूरसे आते हुए दो चारणमुनि देखे। वे मुनि भी उनपर अनुग्रह करते हुए आकाशमार्गसे नीचे उतरे।

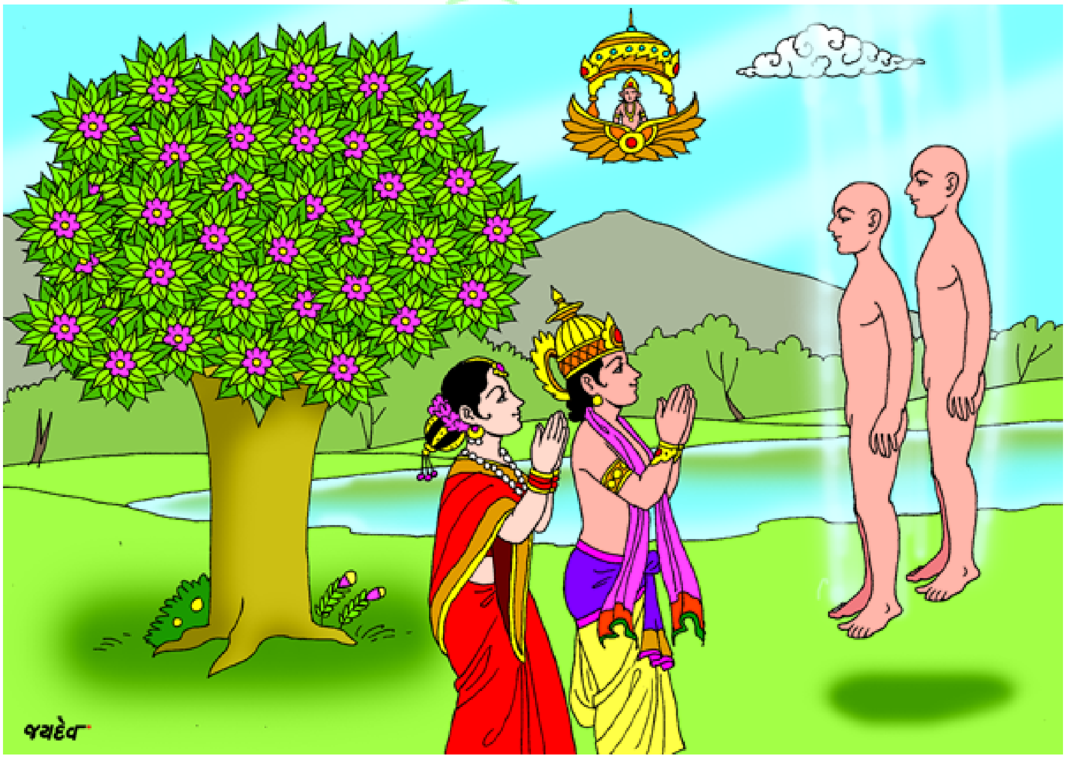

राजा वज्रजंघ और श्रीमतीको सूर्यप्रभ विमान देखकर जातिस्मरण व दो चारणऋद्धिधारी मुनियोंके दर्शन

आर्य (वज्रजंघका जीव) मुनिराजको आते देखकर शीघ्र ही खड़े हो गये। सच है, पूर्व जन्मके संस्कार जीवोंको हित-कार्यमें प्रेरित करते रहते हैं। दोनों मुनियोंके समक्ष अपनी स्त्रीके साथ खड़ा होता हुआ वज्रजंघका जीव ऐसा शोभायमान हो रहा था जैसे उदित होते हुए सूर्य और प्रतिसूर्यके समक्ष कमलिनीके साथ दिन शोभायमान होता है।

वज्रजंघके जीवने दोनों मुनियोंके चरणयुगलमें अर्घ चढ़ाया और नमस्कार किया। उस समय उसके नेत्रोंसे हर्षके आँसू निकल-निकल कर मुनिराजके चरणों पर पड़ रहे थे, जिससे वह ऐसा जान पड़ता था मानों अश्रुजलसे उनके चरणोंका प्रक्षालन ही हो रहा हो। उन दोनों मुनियोंने, स्त्रीके साथ प्रणाम करते हुए आर्य वज्रजंघको आशीर्वाद द्वारा आश्वासन देकर योग्य स्थानपर यथाक्रम बैठ गये।

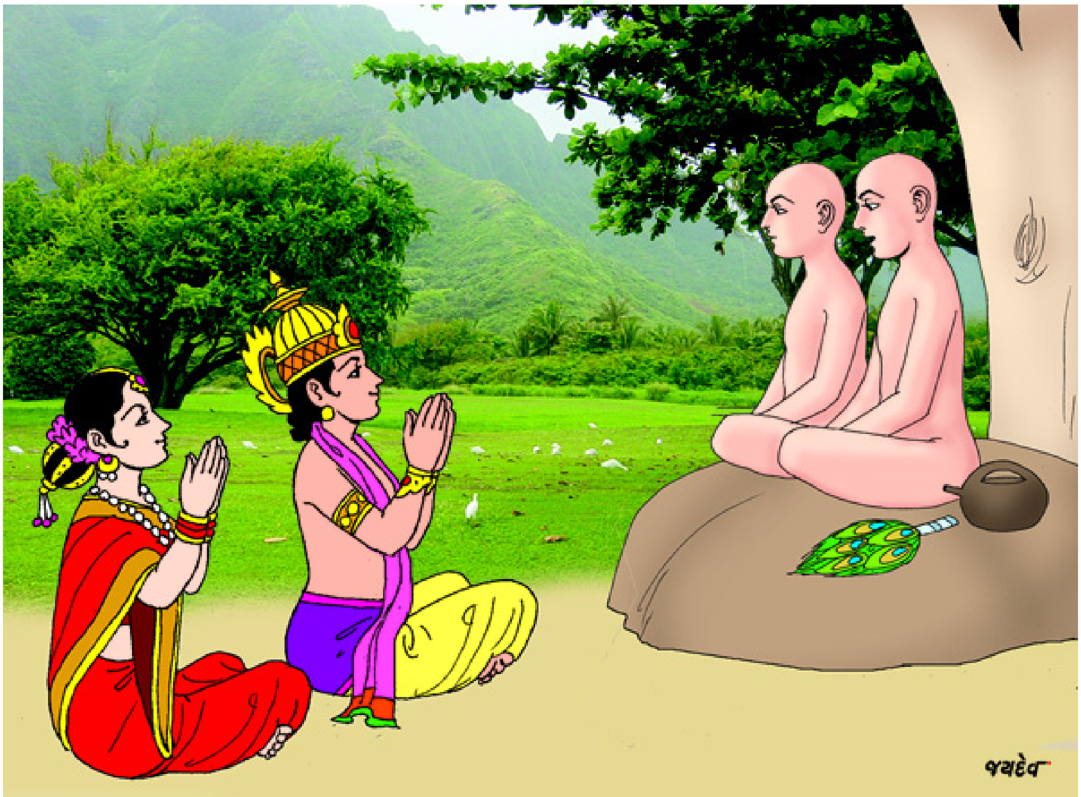

जंगलमें राजा वज्रजंघ व श्रीमती द्वारा मुनिराजका उपदेश श्रवण

तदनन्तर सुखपूर्वक बैठे हुए दोनों चारण मुनियोंसे वज्रजंघका जीव निम्नानुसार पूछने लगा। पूछते समय उसके मुखसे दाँतोंकी किरणोंका समूह निकल रहा था, जिससे ऐसा मालूम होता था, मानो वह पुष्पाञ्जलि ही बिखेर रहा हो। वह बोला—हे भगवन, आप कहाँके रहनेवाले हैं? आप कहाँसे आये हैं और आपके आनेका कारण क्या है? यह सब आप मुझे कहिए। हे प्रभो! आपके दर्शनसे मेरे हृदयमें मित्रताका भाव उमड़ रहा है, चित्त बहुत ही प्रसन्न हो रहा है और मुझे ऐसा मालूम होता है, कि मानों आप मेरे परिचित बन्धु हैं।

इस प्रकार वज्रजंघके जीवका प्रश्न समाप्त होते ही ज्येष्ठ मुनि नीचे लिखे अनुसार उत्तर देने लगे। हे आर्य, तू मुझे स्वयंबुद्ध मन्त्रीका जीव जान, जिससे कि तूने 'महाबल'के भवमें सच्चा तत्त्वज्ञान प्राप्त कर कर्मोंका क्षय करनेवाले जैनधर्मका ज्ञान प्राप्त किया था। उस भवमें तेरे वियोगसे मैंने दीक्षा धारण की थी और आयुके अन्तमें संन्यासपूर्वक शरीर छोड़ सौधर्म स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें मणिचूल नामका देव हुआ था। वहाँ मेरी आयु एक सागरसे कुछ अधिक थी। तत्पश्चात् वहाँसे च्युत होकर जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहक्षेत्रमें स्थित पुष्कलावती देशसम्बन्धी पुण्डरीकिणी नगरीमें प्रियसेन राजा और उनकी महाराणी सुन्दरी देवीके प्रीतिंकर नामका बड़ा पुत्र हुआ हूँ और यह महातपस्वी प्रीतिदेव मेरा छोटा भाई है। हम दोनों भाईयोंने भी स्वयंप्रभ जिनेन्द्रके समीप दीक्षा लेकर तपोबलसे अवधिज्ञान तथा आकाशगामिनी चारण ऋद्धि प्राप्त की है।

हे आर्य! हम दोनोंने अपने अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे जाना है, कि आप यहाँ उत्पन्न हुए हैं। चूँकि आप हमारे परम मित्र थे। इसलिए आपको समझानेके लिए हम लोग यहाँ आये हैं। हे आर्य, तू निर्मल सम्यग्दर्शनके बिना केवल पात्रदानकी विशेषतासे ही यहाँ उत्पन्न हुआ है। यह निश्चय समझ। महाबलके भवमें तूने हमसे ही तत्त्वज्ञान प्राप्त कर शरीर छोड़ा था, परन्तु उस समय भोगोंकी आकांक्षाके वशसे तू सम्यग्दर्शनकी विशुद्धताको प्राप्त नहीं कर सका था। अब हम दोनों, सर्वश्रेष्ठ तथा स्वर्ग और मोक्षसम्बन्धी सुखके प्रधान कारणरूप सम्यग्दर्शनको देनेकी इच्छासे यहाँ आये हैं। इसलिए हे आर्य, आज सम्यग्दर्शन ग्रहण कर। सम्यक्त्वके ग्रहण करनेका यह समय

है, क्योंकि [1]काललब्धिके बिना इस संसारमें जीवोंको सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति नहीं होती है। जब देशनालब्धि और काललब्धि युक्त बहिरङ्ग कारण तथा पुरुषार्थरूप अन्तरङ्ग कारण (सामग्री)की प्राप्ति होती है, तभी यह भव्यप्राणी विशुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक हो सकता है।

जो जीव अनादिकालसे लगे हुए मिथ्यात्वरूपी कलंकसे दूषित हो रहा है, उस जीवको सबसे पहले दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम होनेसे औपशमिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है। जिस प्रकार पित्तके उदयसे उदभ्रान्त हुई चित्तवृत्तिका अभाव होने पर, क्षीर आदि पदार्थोंका यथार्थस्वरूपका परिज्ञान होने लगता है, उसी प्रकार अन्तरङ्ग कारणरूप मोहनीय कर्मका उपशम होने पर जीवादि पदार्थोंके यथार्थस्वरूपका परिज्ञान होने लगता है। जिस प्रकार सूर्य रात्रिसम्बन्धी अन्धकारको दूर किये बिना उदित नहीं होता, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, पुरुषार्थ द्वारा मिथ्यात्वरूपी अन्धकारको दूर किये बिना उदित नहीं होता—प्राप्त नहीं होता। यह भव्य जीव, अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन करणों द्वारा मिथ्यात्वप्रकृतिके मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप तीन खण्ड करके कर्मोंकी स्थिति कम करता हुआ सम्यग्दृष्टि होता है।

वीतराग सर्वज्ञदेव, आप्तोपज्ञ आगम और जीवादि पदार्थोंका बड़ी निष्ठासे श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह 'सम्यग्दर्शन', सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका मूल कारण है। इसके बिना वे दोनों नहीं हो सकते। जीवादि सात तत्त्वोंका तीन मूढतारहित और आठ अंगसहित यथार्थ श्रद्धान करना वह सम्यग्दर्शन है। प्रशम, संवेग, आस्तिक्य और अनुकम्पा ये चार सम्यग्दर्शनके गुण हैं और श्रद्धा, रुचि, स्पर्श तथा प्रत्यय ये उसके पर्याय(दूसरे नाम) हैं। निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, वात्सल्य, स्थितिकरण और प्रभावना ये सम्यग्दर्शनके आठ अंग हैं। इन आठ अंगरूपी किरणोंसे सम्यग्दर्शनरूपी रत्न बहुत ही शोभायमान होता है।

इस प्रकार वे मुनिराज आर्य वज्रजंघको समझाकर आर्या श्रीमतीसे कहने लगे, कि माता! तू बहुत शीघ्र ही संसाररूपी समुद्रसे पार करनेके लिए नौकाके समान इस

१. काललब्धि : काललब्धि व होनहार तो कोई वस्तु नहीं, जिस कालमें कार्य बनता है वही काललब्धि और जो कार्य हुआ वही होनहार। —मोक्षमार्ग प्रकाशक

सम्यग्दर्शनको ग्रहण कर। वृथा ही स्त्रीपर्यायमें क्यों खेद-खिन्न हो रही है? हे माता! सब स्त्रियोंमें, रत्नप्रभाको छोड़कर नीचेकी छह पृथ्वीयोंमें, भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी देवोंमें तथा अन्य नीच पर्यायोंमें सम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती। इस निन्द्य स्त्रीपर्यायको धिक्कार है, जो निर्ग्रन्थ-दिगम्बर मुनिधर्म पालन करनेके लिए बाधक है और जिसमें विद्वानोंने करीष (कण्डाकी आग)की अग्निके समान कामका सन्ताप कहा है। हे माता! अब तू निर्दोष सम्यग्दर्शनकी आराधना कर और इस स्त्रीपर्यायको छोड़कर [१]क्रमसे सप्त परम स्थानोंको प्राप्त कर। सम्यग्दृष्टि जीव क्रम-क्रमसे इन परम स्थानोंको प्राप्त होता है। आप लोग कुछ पुण्य भवोंको धारण कर ध्यानरूपी अग्निसे समस्त कर्मोंको भस्म कर परम पदको प्राप्त करोगे।

इस प्रकार प्रीतिंकर आचार्यके वचनोंको प्रमाण मानते हुए आर्य (वज्रजंघके जीव)ने अपनी स्त्रीके साथ-साथ प्रसन्नचित्त होकर सम्यग्दर्शन धारण किया। वह वज्रजंघका जीव अपनी प्रियाके साथ-साथ सम्यग्दर्शन पाकर बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। सो ठीक ही है, अपूर्व वस्तुका लाभ प्राणियोंके महान् सन्तोषको पुष्ट करता ही है। जिस प्रकार कोई राजकुमार सूत्रमें पिरोयी हुई मनोहर मालाको प्राप्त कर, अपनी राज्यलक्ष्मीके युवराज पदपर स्थित होता है। उसी प्रकार वह वज्रजंघका जीव भी सूत्रमें पिरोयी हुई, मनोहर सम्यग्दर्शनरूपी कण्ठमालको प्राप्त कर मुक्तिरूपी राज्यसम्पदाके युवराज-पद पर स्थित हुआ था। विशुद्ध पुरुषपर्यायके संयोगसे निर्वाण प्राप्त करनेकी इच्छा करती हुई वह सती आर्या भी सम्यक्त्वकी प्राप्तिसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुई थी। जो पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ है, ऐसे सम्यग्दर्शनरूपी रसायनका आस्वाद कर, वे दोनों ही दम्पती कर्म नष्ट करनेवाले, जैनधर्ममें बड़ी दृढ़ताको प्राप्त हुए।

इस प्रकार प्रीतिपूर्वक भोग भोगते हुए उन दोनों दम्पत्तियोंका तीन पल्य प्रमाण काल व्यतीत हो गया और दोनोंने जीवनके अन्तमें सुखपूर्वक प्राण छोड़कर पुण्यके प्रभावसे वह वज्रजंघका जीव भोगभूमिसे निकलकर ऐशान स्वर्गमें हमेंशा प्रकाशमान रहनेवाले श्रीप्रभ विमानमें देदीप्यमान कान्तिका धारक 'श्रीधर' (आदिप्रभुका पूर्व पाँचवाँ

---

१. १ 'सज्जाति', २ 'सद्गृहस्थता' (श्रावकके व्रत), ३ 'पारिव्रिज्य (मुनियोंके व्रत) ४ 'सुरेन्द्र पद', ५ 'राज्यपद' ६ 'अरहन्तपद' ७ 'सिद्धपद' ये सात परम स्थान (उत्कृष्टपद) कहलाते हैं।

भव) नामका ऋद्धिधारी देव हुआ और आर्या श्रीमती भी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे स्त्रीलिंगसे छुटकारा पाकर उसी ऐशान स्वर्गमें स्वयंप्रभ विमानमें स्वयंप्रभ नामका उत्तम देव हुई।

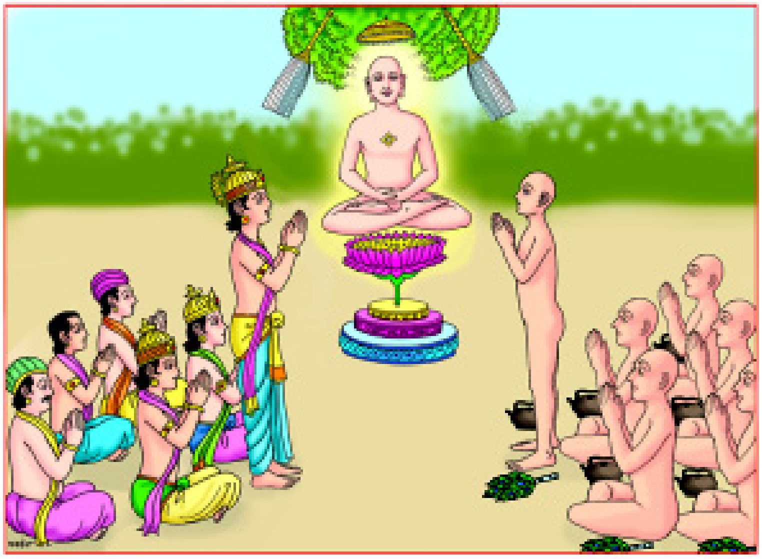

उपकारी गुरुके केवलज्ञानकी पूजा करते श्रीधर देव

अथानन्तर किसी एक दिन श्रीधरदेवको अवधिज्ञानका प्रयोग करने पर यथार्थरूपसे मालूम हुआ, कि हमारे गुरु प्रीतिंकर श्रीप्रभ पर्वत पर बिराजमान हैं और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। संसारके समस्त प्राणीयोंके साथ प्रीति करनेवाले जो प्रीतिंकर मुनिराज थे; वे ही हमारे गुरु थे। इन्हींकी पूजा करनेके लिए अच्छी-अच्छी सामग्री लेकर श्रीधरदेव उनके सन्मुख गया। जाते ही उसने श्रीप्रभ पर्वत पर विद्यमान सर्वज्ञ प्रीतिंकर महाराजकी पूजा की, उन्हें नमस्कार किया, धर्मका स्वरूप सुना और फिर अपने मनकी बात पूछी। हे प्रभो! मेरे महाबल भवमें जो मेरे तीन मिथ्यादृष्टि मंत्री थे, वे इस समय कहाँ उत्पन्न हुए हैं? वे कौनसी गतिको प्राप्त हुए हैं?

इस प्रकार श्रीधरदेवने पूछा तब सर्वज्ञदेव, अपने वचनरूपी किरणोंके द्वारा उसके हृदयगत समस्त अज्ञानान्धकारको नष्ट करते हुए कहने लगे, कि हे भव्य! जब तू महाबलका शरीर छोड़कर स्वर्ग चला गया और मैंने रत्नत्रयको प्राप्त कर दीक्षा धारण कर ली तब खेद है, कि वे तीनों ढ़ीठ मन्त्री कुमरणसे मरकर दुर्गतिको प्राप्त हुए थे। उन तीनोंमेंसे महामति और संभिन्नमति ये दो तो निगोदको प्राप्त हुए हैं, जहाँ मात्र सघन अज्ञान अंधकारका ही अधिकार है और जहाँ अत्यन्त तपते हुए, खौलते

हुए जलमें उठनेवाली खलबलाहटके समान अनेक बार जन्म-मरण होते रहते हैं। तथा शतमति मन्त्री अपने मिथ्यात्वके कारण नरकगति गया है। यथार्थमें खोटे कर्मोंका फल भोगनेके लिए नरक ही मुख्यक्षेत्र है। जो जीव मिथ्यात्वरूपी विषसे मूर्च्छित होकर समीचीन जैनमार्गका विरोध करते हैं, वे कुयोनिरूपी भँवरोंसे व्याप्त इस संसाररूपी मार्गमें दीर्घकाल तक घूमते रहते हैं। चूँकि सम्यग्ज्ञानके विरोधी जीव अवश्य ही नरकरूपी गाढ़ अन्धकारमें निमग्न होते हैं। इसलिए विद्वान पुरुषोंको आप्तप्रणीत सम्यग्ज्ञानका ही निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। यह आत्मा धर्मके प्रभावसे स्वर्ग-मोक्षरूप उच्च स्थानोंको प्राप्त होता है। अधर्मके प्रभावसे अधोगति अर्थात् नरकको प्राप्त होता है और धर्म, अधर्म दोनोंके संयोगसे मनुष्य पर्यायको प्राप्त होता है।

हे भद्र! तू उपर्युक्त अर्हन्तदेवके वचनोंका निश्चय कर। वह तुम्हारा शतबुद्धि मंत्री मिथ्याज्ञानकी दृढ़तासे दूसरे नरकमें अत्यन्त दुःख भोग रहा है। पापसे पराजित आत्माको स्वयं किये हुए अनर्थका फल यह है, जो उसका धर्मसे द्वेष और अधर्मसे प्रेम होता है। 'धर्मसे सुख प्राप्त होता है और अधर्मसे दुःख मिलता है' यह बात निर्विवाद प्रसिद्ध है। इसलिए तो बुद्धिमान पुरुष अनर्थोंको छोड़नेकी इच्छासे धर्ममें ही तत्परता धारण करते हैं। प्राणियों पर दया करना, सच बोलना, क्षमा धारण करना, लोभका त्याग करना, तृष्णाका अभाव करना, सम्यग्ज्ञान और वैराग्यरूपी संपत्तिका इकट्ठा करना ही धर्म है और उससे उलटे अदया आदि भाव अधर्म हैं। विषयासक्ति, जीवोंके इन्द्रियजन्य सुखकी तृष्णाको बढ़ाती है, इन्द्रियजन्य सुखकी तृष्णा प्रज्वलित अग्निके समान भारी सन्ताप पैदा करती है। तृष्णासे सन्तप्त हुआ प्राणी उसे दूर करनेकी इच्छासे पापमें अनुरक्त हो जाता है, पापमें अनुराग करनेवाला प्राणी धर्मसे द्वेष करने लगता है और धर्मसे द्वेष करनेवाले जीव अधर्मके कारण अधोगतिको प्राप्त होते है।

इस भांति नरकादि दुःखों सम्बन्धी विस्तृत भगवानकी वाणी श्रीधरदेवने अत्यन्त विनय व संवेगभाव सह सुनी। ऐसे उन प्रीतिंकर जिनेन्द्रके वचन सुनकर पवित्र बुद्धिका धारक श्रीधरदेव अतिशय धर्मप्रेमको प्राप्त हुआ।

श्री ऋषभदेव भगवानका प्रथम पूर्वभव

सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्र

भगवान श्री ऋषभदेव अपने पूर्वभवमें अहमिन्द्र थे। वहाँ उपपाद शय्यापर बैठे हुए वे दिव्यहंस (अहमिन्द्र) ऐसे शोभायमान होते रहे जैसा कि गंगानदीके बालूके टीले पर अकेला बैठा हुआ तरुण हंस शोभायमान होता है। उत्पन्न होनेके बाद वे अहमिन्द्र निकटवर्ती सिंहासन पर आरूढ हुए थे। वे अहमिन्द्र अपने पुण्यरूपी जलके द्वारा केवल अभिषिक्त ही नहीं हुए थे, किन्तु शारीरिक गुणोंके समान अनेक अलंकारोंके द्वारा अलंकृत भी हुए थे। उनने अपने वक्षःस्थलपर केवल फूलोंकी माला ही धारण नहीं की थी, किन्तु जीवनपर्यंत नष्ट नहीं होनेवाली, साथ-साथ उत्पन्न हुई स्वर्गकी लक्ष्मी भी धारण की थी। स्नान और विलेपनके बिना ही जिनका शरीर सदा देदीप्यमान रहता है और जो स्वयं साथ-साथ उत्पन्न हुए वस्त्र तथा आभूषणोंसे शोभायमान हैं, वे वस्त्राभूषण अहमिन्द्र देवके मस्तक पर ऐसे सुशोभित होते थे मानो स्वर्गलोकका एक शिखामणि ही हो अथवा सूर्य ही हो, क्योंकि शिखामणि अथवा सूर्य भी स्नान

जिनेन्द्र पूजा, दर्शन, अन्य अहमिन्द्रोंके साथ धर्म संभाषण आदि धर्मकथा करते हुए भगवान ऋषभदेवका जीव सर्वार्थसिद्धिके भवमें

और विलेपनके बिना ही देदीप्यमान रहता है और स्वभावसे ही अपनी प्रभा-द्वारा आकाशको भूषित करता रहता है।

जिनका निर्मल और उत्कृष्ट शरीर शुद्ध स्फटिकके समान अत्यन्त शोभायमान था वे अनेक आभूषणमाला और वस्त्र आदिको धारण करनेवाले किसी कल्पवृक्षके समान जान पड़ते थे। अणिमा, महिमा आदि गुणोंसे प्रशंसनीय वैक्रियिक शरीरको धारण करनेवाले वे अहमिन्द्र जिनेन्द्रदेवकी अकृत्रिम प्रतिमाओंकी पूजा करते हुये, अपने ही क्षेत्रमें विहार करते थे और इच्छामात्रसे तृप्त हुए मनोहर गन्ध, अक्षत आदिके द्वारा विधिपूर्वक पुण्यका बन्ध करनेवाली श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा करते थे। वे अहमिन्द्र पुण्यात्मा जीवोंमें सबसे प्रधान थे, इसलिए उसी सर्वार्थसिद्धि विमानमें स्थित रहकर ही समस्त लोकके मध्यमें विद्यमान जिनप्रतिमाओंकी पूजा करते थे। उन पुण्यात्मा अहमिन्द्रने अपने वचनोंकी प्रवृत्ति जिनप्रतिमाओंके स्तवन करनेमें लगायी थी, अपना मन उनके गुण-चिन्तवन करनेमें लगाया था और अपना शरीर उन्हें नमस्कार करनेमें लगाया था। धर्मगोष्ठियोंमें बिना बुलाये सम्मिलित होनेवाले अपने ही समान ऋद्धियोंको धारण करनेवाले और शुभभावोंसे युक्त अन्य अहमिन्द्रोंके साथ संभाषण करनेमें उन्हें बड़ा आनंद होता था। अतिशय शोभाके धारक वे अहमिन्द्र कभी तो अपने मन्दहास्यके किरणरूपी जलके पूरोंसे दिशारूपी दीवालोंका प्रक्षालन करते हुये अहमिन्द्रोंके साथ तत्त्वचर्चा करते थे और कभी अपने निवासस्थानके समीपवर्ती उपवनके सरोवरके किनारेकी भूमिमें राजहंस पक्षीके समान अपनी इच्छानुसार विहार करते हुए, चिरकाल तक क्रीड़ा करते थे। अहमिन्द्रोंका परक्षेत्रमें विहार नहीं होता, क्योंकि शुक्ललेश्याके प्रभावसे अपने ही भोगों-द्वारा सन्तोषको प्राप्त होनेवाले अहमिन्द्रोंको अपने निरुपद्रव सुखमय स्थानमें जो उत्तम प्रीति होती है वह उन्हें अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होती। यही कारण है, कि उनकी परक्षेत्रमें क्रीड़ा करनेकी इच्छा नहीं होती है। 'मैं ही इन्द्र हूँ, मेरे लिये अन्य कोई इन्द्र नहीं है' इस प्रकार वे स्वयं मानते रहते थे और इसलिए वे उत्तमदेव अहमिन्द्र नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त होते थे। उन अहमिन्द्रके न तो परस्परमें असूया (ईर्ष्या) है, न परनिन्दा है, न आत्मप्रशंसा है और न ईर्ष्या ही है। वे केवल सुखमय होकर हर्षयुक्त होते हुए निरन्तर क्रीड़ा करते रहते हैं।

भगवान श्री ऋषभदेवको वैराग्य

महादैदीप्यमान भगवान श्री ऋषभदेवने अयोध्याके राज्यसिंहासन पर आसीन होकर पुण्योदयसे प्राप्त हुई राज्यलक्ष्मीका सुखसे अनुभव किया था। इस प्रकार सुर और असुरोंके गुरु तथा अचिन्त्य धैर्यको धारण करनेवाले भगवान श्री वृषभदेवको इन्द्र उनके विशाल पुण्यके संयोगसे भोगोपभोगकी सामग्री भेजता रहता था। जिससे वे सुखपूर्वक सन्तोषको प्राप्त होते रहते थे। इसलिए हे पण्डितजन! पुण्योपार्जन करनेमें प्रयत्न करो।

इस संसारमें पुण्यसे ही सुख प्राप्त होता है। जिस प्रकार बीजके बिना अंकुर उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार पुण्यके बिना सुख नहीं होता। दान देना, इन्द्रियोंको वश करना, संयम धारण करना, सत्यभाषण करना, लोभका त्याग करना और क्षमाभाव धारण करना आदि शुभ चेष्टाओंसे अभिलषित पुण्यकी प्राप्ति होती है। सुर, असुर, मनुष्य और नागेन्द्र आदिके उत्तम भोग, लक्ष्मी, दीर्घ आयु, अनुपम रूप, समृद्धि, उत्तम वाणी, चक्रवर्तीका साम्राज्य, इन्द्रपद, जिसे पाकर फिर संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता— ऐसा अरहन्त पद और अन्त रहित समस्त सुख देनेवाला श्रेष्ठ निर्वाण पद, इन सभीकी प्राप्ति (रत्नत्रय धर्मयुक्त) एक पुण्यसे ही होती है। इसलिए हे पण्डितजन! यदि स्वर्ग और मोक्षके अचिन्त्य महिमावाले श्रेष्ठ सुख प्राप्त करना चाहते हो तो धर्म करो क्योंकि वह धर्म ही स्वर्गोंके भोग और मोक्षके अविनाशी अनन्त सुखकी प्राप्ति कराता है। वास्तवमें सुखप्राप्ति होना धर्मका ही फल है। हे सुधीजन! यदि तुम सुख प्राप्त करना चाहते हो तो हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनियोंके लिए दान दो, तीर्थंकरोंको नमस्कार कर उनकी पूजा करो, शीलव्रतोंका पालन करो और पर्वके दिनोंमें उपवास करना नहीं भूलो।

इसप्रकार धर्म धारण करनेके कारण जो प्रशस्त लक्ष्मीके स्वामी थे, वे स्थिर रहनेवाले भोगोंका अनुभव करते थे, स्नेह रखनेवाले अपने पुत्र पौत्रोंके साथ सन्तोष

धारण करते थे, इन्द्र सूर्य और चन्द्रमा आदि उत्तम-उत्तम देव जिनकी आज्ञा धारण करते थे, और जिनपर किसीकी आज्ञा नहीं चलती थी ऐसे भगवान श्री वृषभदेव सिंहासनपर आरूढ होकर इस समुद्रान्त पृथ्वीका शासन करते थे।

अथानन्तर किसी एक दिन सैंकड़ों राजाओंसे घिरे हुए भगवान श्री वृषभदेव विशाल सभामण्डपके मध्यभागमें सिंहासनपर ऐसे विराजमान थे, जैसे निषध पर्वतके तटभागपर सूर्य विराजमान होता है। इस प्रकार सिंहासनपर विराजमान भगवानकी सेवा करनेके लिए इन्द्र, अप्सराओं और देवोंके साथ पूजा सामग्री लेकर वहाँ आये और अपने तेजसे उदयाचलके मस्तकपर स्थित सूर्यको जीतते हुये अपने योग्य सिंहासनपर जा बैठे। भक्तिविभोर इन्द्रने भगवानकी आराधना करनेकी इच्छासे उस समय अप्सराओं और गन्धर्वोंका नृत्य प्रारम्भ किया। उस नृत्यने भगवान श्री वृषभदेवके मनको भी अनुरक्त बना दिया था सो ठीक ही है, अत्यन्त शुद्ध स्फटिकमणि भी अन्य पदार्थोंके संसर्गसे राग अर्थात् लालिमा धारण करता है। भगवान राज्य और भोगोंसे किस प्रकार विरक्त होंगे? यह विचारकर इन्द्रने उस समय नृत्य करेनेके लिए एक ऐसे पात्रको नियुक्त किया जिसकी आयु अत्यन्त क्षीण हो गयी थी। तदनन्तर वह अत्यन्त सुन्दर नीलांजना नामकी देवनर्तकी रस, भाव और लयसहित फिरकी लगाती हुई नृत्य कर रही थी, कि इतनेमें ही आयुरूपी दीपकके क्षय होनेसे वह क्षण-भरमें अदृश्य हो गयी। जिस प्रकार बिजलीरूपी लता देखते-देखते क्षण-भरमें नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार प्रभासे चंचल और बिजलीके समान उज्ज्वल मूर्तिको धारण करनेवाली वह देवी देखते-देखते ही क्षण-भरमें नष्ट हो गयी थी।

उसके नष्ट होते ही इन्द्रने रसभंगके भयसे उस स्थान पर उसीके समान शरीरवाली दूसरी देवी खड़ी कर दी, जिससे नृत्य ज्योंका-त्यों चलता रहा। यद्यपि दूसरी देवी खड़ी कर देने बाद भी वही मनोहर स्थान था, वही मनोहर भूमि थी और वही नृत्यका परिक्रम था, तथापि भगवान श्री वृषभदेवने उसी समय उसके स्वरूपका अन्तर जान लिया था। शरीरकी यह नश्वरता देख वे भोगोंसे विरक्त होकर अत्यन्त संवेग तथा वैराग्य भावनाको प्राप्त हुए।

भगवानके चित्तमें इस प्रकार चिंतवन होने लगा, कि बड़े आश्चर्यकी बात है,

सभा सहित राजा ऋषभदेवका राज्यसभामें अप्सराका नृत्य-दर्शन व राजाका वैराग्य

यह जगत् विनश्वर है, लक्ष्मी बिजलीरूपी लताके समान चञ्चल है, यौवन, शरीर, आरोग्य और ऐश्वर्य आदि सभी चलाचल हैं। रूप, यौवन और सौभाग्यके मदसे उन्मत्त हुआ अज्ञ पुरुष इन सबमें स्थिरबुद्धि करता है, परन्तु उनमें कौन-सी वस्तु विनश्वर नहीं है? अर्थात् सभी वस्तुएँ विनश्वर हैं। यह रूपकी शोभा सन्ध्याकालकी लालीके समान क्षणभरमें नष्ट हो जाती है और उज्ज्वल तारुण्य अवस्था पल्लवकी कान्तिके समान शीघ्र ही म्लान हो जाती है। वनमें पैदा हुई लताओंके पुष्पोंके समान यह यौवन शीघ्र ही नष्ट हो जानेवाला है, भोग सम्पदाएँ विषवेलके समान हैं और जीवन विनश्वर है। यह आयुकी स्थिति घटीयन्त्रके जलकी धाराके समान शीघ्रताके साथ गलती जा रही है–कम होती जा रही है और यह शरीर अत्यन्त दुर्गन्धित तथा घृणा उत्पन्न करनेवाला है। यह निश्चय है, कि इस असार संसारमें सुखका लेशमात्र भी दुर्लभ है और दुःख भारी है फिर भी आश्चर्य है कि मन्दबुद्धि पुरुष इसीमें सुखकी इच्छा करते हैं।

इस जीवने नरकोंमें जो महान दुःख भोगे हैं यदि उनका स्मरण भी हो जाय तो फिर ऐसा कौन है, जो उन भोगोंकी इच्छा करे। निरन्तर आर्तध्यान करनेवाले जीव जितने कुछ भोगोंका अनुभव करते हैं, वे सब उन्हें अत्यन्त असाताके उदयसे भरे हुए नरकोंमें दुःखरूप होकर उदय आते हैं। दुःखोंसे भरे हुए नरकोंमें कभी स्वप्नमें भी सुख प्राप्त नहीं होता, क्योंकि वहाँ रात-दिन दुःख ही दुःख रहता है और ऐसा दुःख जो कि दुःखके कारणभूत असाता कर्मका बन्ध करनेवाला होता है। उन नरकोंसे किसी तरह निकलकर यह मूर्ख जीव अनेक योनियोंमें परिभ्रमण करता हुआ तिर्यंच गतिके बड़े भारी दुःख भोगता है।

बड़े दुःखकी बात है, कि यह अज्ञानी जीव पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकमें भारी दुःख भोगता हुआ निरन्तर भ्रमण करता रहता है। यह जीव उन पृथ्वीकायिक आदि पर्यायोंमें खोदा जाना, जलती हुई अग्निमें तपाया जाना, बुझाया जाना, अनेक कठोर वस्तुओंसे टकरा जाना, तथा छेदाभेदा जाना आदिके कारण भारी दुःख पाता है। यह जीव घटीयन्त्रकी स्थितिको धारण करता हुआ सूक्ष्म बादर पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक अवस्थामें अनेक बार परिभ्रमण

करता रहता है। त्रस पर्यायमें भी यह प्राणी मारा जाना, बाँधा जाना और रोका जाना आदिके द्वारा जीवनपर्यंत अनेक दुःख प्राप्त करता रहता है। सबसे प्रथम इसे जन्म अर्थात पैदा होनेका दुःख उठाना पड़ता है, उसके अनन्तर बुढ़ापेका दुःख और फिर उससे भी अधिक मृत्युका दुःख भोगना पड़ता है, इस प्रकार सैकड़ों दुःखरूपी भँवरसे भरे हुए संसाररूपी समुद्रमें यह जीव सदा डूबा रहता है। यह जीव क्षण-भरमें नष्ट हो जाता है, क्षण-भरमें जीर्ण (वृद्ध) हो जाता है और कीचड़में गायकी तरह सदा फँसा रहता है। इस प्रकार यह अज्ञानी जीव तिर्यंच योनिमें अनन्तकाल तक दुःख भोगता रहता है सो ठीक ही है क्योंकि जिनेन्द्रदेव भी यही कहते हैं कि तिर्यंचयोनि दुःखोंका सबसे बड़ा स्थान है।

तदनन्तर अशुभ कर्मोंके कुछ-कुछ मन्द होने पर यह जीव उस तिर्यंच योनिसे बड़ी कठिनाईसे बाहर निकलता है और कर्मरूपी सारथिसे प्रेरित होकर मनुष्यपर्यायको प्राप्त होता है। वहाँ पर भी यह जीव यद्यपि दुःखोंकी इच्छा नहीं करता है, तथापि इसे कर्मरूपी शत्रुओंसे विरुद्ध होकर अनेक प्रकारके शारीरिक और मानसिक दुःख भोगने पड़ते हैं। दूसरोंकी सेवा करना, दरिद्रता, चिन्ता और शोक आदिसे मनुष्योंको जो बड़े भारी दुःख प्राप्त होते हैं, वे प्रत्यक्ष नरकके समान जान पड़ते हैं। यद्यपि देवपर्यायमें जीवोंको कुछ सुख प्राप्त होता है तथापि जब स्वर्गसे इसका पतन होता है, तब इसे तीव्र दुःख होता है। उस देवपर्यायमें भी इष्टका वियोग होता है कितने ही देव अल्पविभूतिके धारक होते हैं जो कि अपनेसे अधिक विभूतिवालेको देखकर दुःखी होते रहते हैं। इसलिए उनका मानसिक दुःख भी बड़े दुःखसे व्यतीत होता है। इस प्रकार बेचारा दीन प्राणी इस संसाररूपी चक्रमें अपने खोटे कर्मोंके उदयसे अनेक परिवर्तन करता हुआ दुःख पाता रहता है।

इस प्रकार राजा ऋषभदेव वैराग्य व संवेगभावसे निज आत्माकी वर्तमान दुःखरूप दशा विचार कर, उससे मुक्त होने हेतु व तप आराधनके लिए भगवती जिनदीक्षा लेनेको तैयार होते हैं। लौकान्तिक देवोंको जब यह ज्ञात होता है, तब वे राजा ऋषभदेवकी उत्तम भावनाकी विविध प्रकारसे स्तुति करते हैं, व उनके मुनिदीक्षाके कार्यका अनुमोदन करते हैं।

लौकान्तिक देवोंने तपश्चरण करनेके लिए जिनसे प्रार्थना की है, ऐसे ब्रह्मा–भगवान श्री वृषभदेवने तपश्चरण करनेमें–दीक्षा धारण करनेमें अपनी दृढ़ बुद्धि लगायी। वे लौकान्तिक देव अपने इतने ही नियोगसे कृतार्थ होकर हंसोंकी तरह शरीरकी कान्तिसे आकाशमार्गको प्रकाशित करते हुए स्वर्गको चले गये। इतनेमें ही आसनोंके कम्पायमान होनेसे भगवानके तप-कल्याणकका निश्चय कर देव लोग अपने-अपने इन्द्रोंके साथ अनेक विक्रिया धारण कर प्रकट होने लगे।

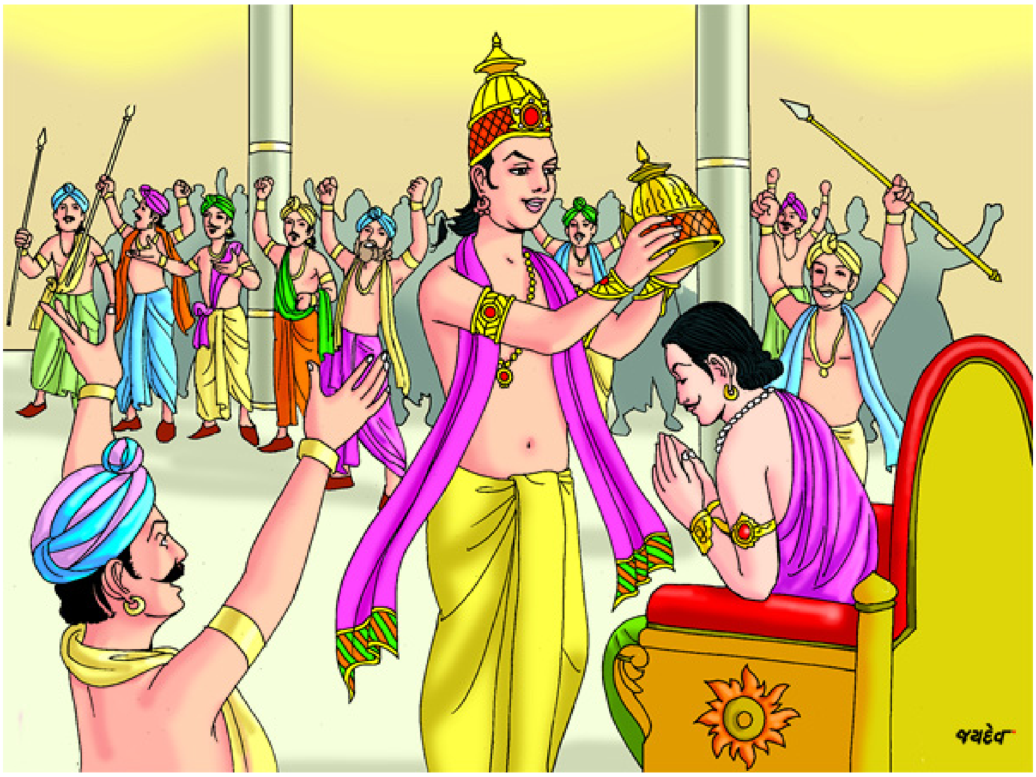

प्रजाकी प्रसन्नता सह राजा ऋषभदेव द्वारा राज्यमुकुट द्वारा भरतका राज्याभिषेक

तदनन्तर इन्द्रादिक देवोंने भगवानके निष्क्रमण अर्थात् तपकल्याणक करनेके लिए उनका क्षीरसागरके जलसे महाभिषेक किया। अभिषेक कर चुकनेके बाद देवोंने आदरके साथ दिव्य आभूषण, वस्त्र, मालाएँ और मलयागिरि चन्दनसे भगवानका अलंकार किया। तदनन्तर भगवान श्री वृषभदेवने साम्राज्य पद पर अपने बड़े पुत्र भरतका अभिषेक कर इस भारतवर्षको सनाथ किया और युवराज पद पर बाहुबलीको स्थापित किया। इस प्रकार उस समय वह पृथ्वी उक्त दोनों भाईयोंसे अधिष्ठित होनेके कारण राजवन्ती

अर्थात् सुयोग्य राजासे सहित हुई थी। उस समय भगवान श्री वृषभदेवका निष्क्रमणकल्याणक और भरतका राज्याभिषेक हो रहा था। इन दोनों प्रकारके उत्सवोंके समय स्वर्गलोक और पृथ्वीलोक दोनों ही हर्षविभोर हो रहे थे। उस समय एक ओर तो बड़े वैभवके साथ भगवानके निष्क्रमणकल्याणकका उत्सव हो रहा था और दूसरी ओर भरत तथा बाहुबली इन दोनों राजकुमारोंके लिए पृथ्वीका राज्य समर्पण करनेका उत्सव किया जा रहा था। एक ओर तो राजर्षि-भगवान श्री वृषभदेव तपरूपी राज्यके लिए कमर बाँधकर तैयार हुए थे और दूसरी ओर तरुण राजकुमार राज्यलक्ष्मीके साथ विवाह करनेके लिए उद्यम कर रहे थे।

भगवानने राज्यका भार दोनों ही युवराजोंको समर्पित कर दिया था इसलिए उस समय उनका दीक्षा लेनेका उद्योग बिलकुल निराकुल हो गया था। उन्हें राज्यसम्बन्धी किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं रही थी। मोक्षकी इच्छा करनेवाले भगवानने संपूर्ण-आकुलता रहित होकर, अपने शेष पुत्रोंके लिए भी यह पृथ्वी विभक्त कर बाँट दी थी। तदनन्तर वे अक्षय-अविनाशी भगवान, महाराजा नाभिराज आदि परिवारके लोगोंसे पूछकर इन्द्रके द्वारा बनायी हुई सुन्दर सुदर्शन नामकी पालकी पर बैठे। बड़े आदरके साथ इन्द्रने जिन्हें अपने हाथका सहारा दिया था, ऐसे भगवान श्री वृषभदेव दीक्षा लेनेकी प्रतिज्ञा समान पालकी पर आरूढ़ हुए थे। दीक्षारूप अंगनाके आलिंगन करनेका जिनका कौतुक बढ़ रहा है, ऐसे भगवान श्री वृषभदेव उस पालकी पर आरूढ होते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानो पालकीके छलसे दीक्षारूपी अंगनाकी शय्यापर ही आरूढ़ हो रहे हों। जो मालाएँ पहने हुए हैं, जिनका दैदीप्यमान शरीर चन्दनके लेपसे लिप्त हो रहा है और जो अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो रहे हैं, ऐसे भगवान श्री वृषभदेव पालकी पर आरूढ़ हो ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों तपरूपी लक्ष्मीके उत्तम वर ही हों। भगवानकी पालकी प्रथम ही राजा लोग सात पैंड़ तक लेकर चले और फिर विद्याधर लोग आकाशमें सात पैंड तक ले चले। तदनन्तर भवनत्रिक फिर वैमानिक देवोंने अत्यन्त हर्षित होकर वह पालकी अपने कन्धों पर रखी और शीघ्र ही उसे आकाशमें ले गये। भगवान श्री वृषभदेवके माहात्म्यकी प्रशंसा करना इतना ही पर्याप्त है, कि उस समय देवोंके अधिपति इन्द्र भी उनकी पालकी उठा रहे थे। उस समय यक्ष जातिके देव सुगन्धित फूलोंकी वर्षा कर रहे थे और गंगानदीके जलकणोंको धारण

करनेवाली शीतल वायु वह रही थी। उस समय देवोंके बन्दीजन (गुणगान करनेवाले) उच्च स्वरसे प्रस्थानके समय मंगल पाठ पढ़ रहे थे और देव लोग चारों ओर प्रस्थानसूचक भेरियाँ बजा रहे थे।

जिस समय यथायोग्यरूप अनेक विशेषताएँ हो रही थी उस समय अद्भुत वैभवसे शोभायमान भगवान श्री वृषभदेव समस्त संसारको आनन्दित करते हुए अमूल्य रत्नोंकी बनी हुई पालकी पर आरूढ़ होकर अयोध्यापुरीसे बाहर निकले। उस समय मानो वे रत्नमयी पृथ्वी पर स्थित मेरु पर्वतकी शोभाको तिरस्कृत कर रहे थे।

इस भांति अति शोभायमान पालकीमें बैठकर भगवान जंगलमें आये। जब कोलाहल शान्त हो गया था, सब लोग वापस दूर चले गये थे, जिन्होंने अंतरंग और बहिरंग परिग्रहको छोड़ दिया है और परिग्रह रहित रहनेकी प्रतिज्ञा की है, जो संसारकी सब वस्तुओंमें समताभावका विचार कर रहे हैं और जो शुभ भावनाओंसे सहित हैं ऐसे उन भगवान श्री वृषभदेवने यवनिकाके भीतर मोहको नष्ट करनेके लिए वस्त्र, आभूषण तथा माला वगैरहका त्याग किया। जो आभूषण भगवानके शरीर पर बहुत दैदीप्यमान हो रहे थे वे ही आभूषण भगवानसे पृथक् हो जानेके कारण कान्तिरहित अवस्थाको प्राप्त हो गये थे। भगवान श्री वृषभदेवने दास, दासी, गौ, बैल, मणि, मुक्ता, मूँगा आदि जो अचेतनद्रव्य थे उन सबको अपेक्षारहित होकर अपनी, देवोंकी और सिद्धोंकी साक्षीपूर्वक परित्याग कर दिया था। तदनन्तर भगवान पूर्व दिशाकी ओर मुँह कर पद्मासनसे विराजमान हुए और सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार कर उन्होंने पंचमुष्टियोंसे केश लोंच किया। धीर वीर भगवान श्री वृषभदेवने मोहनीय कर्मकी मुख्यताओंके समान बहुत-सी केशरूपी लताओंका लोंच कर दिगम्बररूपके धारक होते हुए जिनदीक्षा धारण की। भगवान श्री वृषभदेवने चैत्र मासके कृष्ण पक्षको नवमीके दिन सायंकालके समय दीक्षा धारण की थी। भगवानके मस्तक पर चिरकाल तक निवास करनेसे पवित्र हुए केशोंको इन्द्रने प्रसन्नचित्त होकर रत्नोंके पिटारेमें रख लिया और उन केशोंको आदरसहित बड़ी विभूतिके साथ ले जाकर क्षीरसमुद्रमें डाल दिया।

भगवान ध्यानमें मग्न होते ही उन्हें चतुर्थ मनःपर्ययज्ञान प्रकट हुआ था।

भगवान श्री ऋषभदेवका वनमें ध्यान

वनमें भगवान श्री आदिनाथ छह महिनेका अनशन धारण कर एक आसनसे बैठे हुए थे। धूप, वर्षा, शीत आदिकी बाधाएँ उन्हें रञ्चमात्र भी विचलित नहीं कर सकी थीं। वे मेरुके समान अचल थे, बालकके समान निर्विकार थे, निर्मेघ आकाशकी तरह शुद्ध थे, साक्षात् शरीरधारी शमके समान मालूम होते थे। उनकी दृष्टि नासाके अग्रभाग पर लगी हुई थी, हाथ नीचे लटक रहे थे और मुंहके भीतर अस्पष्टरूपसे कुछ मन्त्राक्षरोंका उच्चारण हो रहा था। कहनेका मतलब यह है, कि वे समस्त इन्द्रियोंको बाह्य व्यापारसे हटाकर अध्यात्मकी ओर लगा चुके थे। अपने-आप उत्पन्न हुए अलौकिक आत्मानंदका अनुभव कर रहे थे। न उन्हें भूखका दुःख था, न प्यासका कष्ट था और न राज्यकार्यकी ही कुछ चिन्ता थी।

उधर मुनिराज वृषभदेव आत्म-ध्यानमें लीन हो रहे थे, इधर कच्छ और महाकच्छ आदि चार हजार राजा, जो कि देखा-देखी ही मुनि बन बैठे थे—मुनि-मार्गका कुछ रहस्य नहीं समझ सके। कुछ दिनोंमें ही वे भूख-प्यासकी बाधाओंसे तिलमिला उठे। वे सब आपसमें सलाह करने लगे—'भगवान श्री वृषभदेव न जाने किस लिए नग्न दिगम्बर होकर बैठे हैं। ये हम लोगोंसे कुछ कहते ही नहीं हैं। न इन्हें भूख-प्यासकी बाधा सताती है; न ये धूप, वर्षा, सर्दीसे ही दुःखी होते हैं। पर हम लोगोंका हाल तो इनसे बिलकुल उल्टा हो रहा है। अब हमसे भूख-प्यासकी बाधा नहीं सही जाती। हमने सोचा था, कि इन्होंने कुछ दिनोंके लिए ही यह वेष रचा है, पर अब तो दो माह हो गये, फिर भी इनके रहस्यका पता नहीं चलता। जो भी हो, शरीरकी रक्षा तो हम लोगोंको अवश्य करनी चाहिए।' ऐसी सलाह कर वे सब मुनि मुनिनाथ वृषभदेवके पास जाकर तरह-तरहके शब्दोंमें उनकी स्तुति करने लगे–उनकी धीरताकी प्रशंसा करने लगे। स्तुति कर चुकनेके बाद उन्होंने मुनि-वेष धारण करनेका कारण पूछा; 'उसकी अवधि पूछी और 'हम भूख-प्यासका दुःख नहीं सह सकते' यह प्रकट कर उसके दूर करनेका उपाय पूछा। पर वे तो मौन व्रत लिये हुए थे, आत्म-ध्यानमें मस्त थे, उनकी दृष्टि बाह्य पदार्थोंसे सर्वथा हट गई थी—वे कुछ न बोले। जब

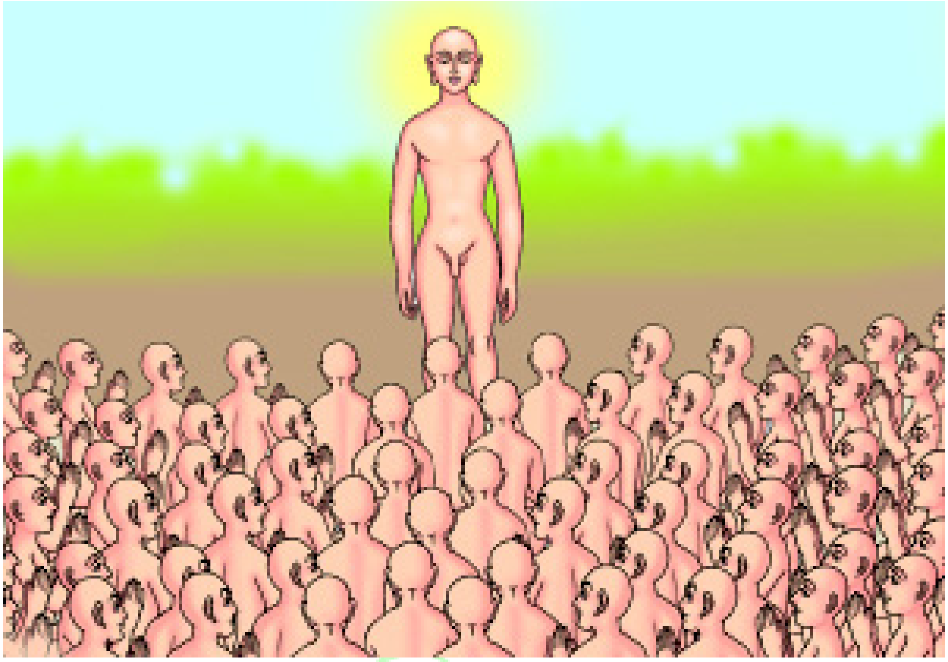

भगवानके साथ दीक्षित हुए अन्य मुनिराजोंका भूख-प्याससे त्रस्त होने पर ध्यानस्थ ऋषभ मुनिराजोंका प्रश्न पूछने पर वे ध्यानमें मौन

उन्हें भगवान श्री वृषभदेवकी ओरसे कोई उत्तर नहीं मिला, जब उन्होंने आँख उठाकर भी उन लोगोंकी ओर नहीं देखा, तब वे बहुत घबड़ाये और मुनिमार्गसे भ्रष्ट होकर जंगलोंमें चले गये। उन्होंने सोचा था, यदि हम घर जाते हैं, तो राजा भरत हमको दण्डित करेंगे; इसलिए इन्हीं सघन वनोंमें रहना अच्छा है। यहाँ वृक्षोंके कन्द-मूल-फल खा कर, नदी-तालाब आदिका मीठा पानी पीवेंगे और पर्वतोंकी गुफाओंमें रहेंगे। अब ये शेर, चीते वगैरह ही हम लोगोंके परिवार होंगे। इस तरह भ्रष्ट होकर वे चार हजार द्रव्यलिंगी मुनि ज्यों ही तालाबका पानी पीनेके लिये धुसे, त्यों ही वनदेवताओंने प्रकट होकर कहा कि यदि तुम दिगम्बर मुद्रा धारण कर ऐसा अन्याय करोगे, तो हम तुम्हें दण्डित करेंगे। यह सुनकर कईयोंने वृक्षके पत्ते व वल्कल पहिन कर हाथमें पलास वृक्षके दण्ड लिये। कईयोंने शरीरमें भस्म रमा ली और कईयोंने जटाएँ बढ़ा लीं। कहनेका मतलब यह है, कि उन्हें जिसमें सुविधा दिखी, वही वेष उन्होंने धारण कर लिया। इतना होने पर भी वे सब लोग भगवान श्री आदिनाथको ही अपना इष्टदेव समझते थे, उन्हें सिंह और अपनेको सियार समझते थे। वे लोग प्रतिदिन तालाबोंमेंसे कमलके

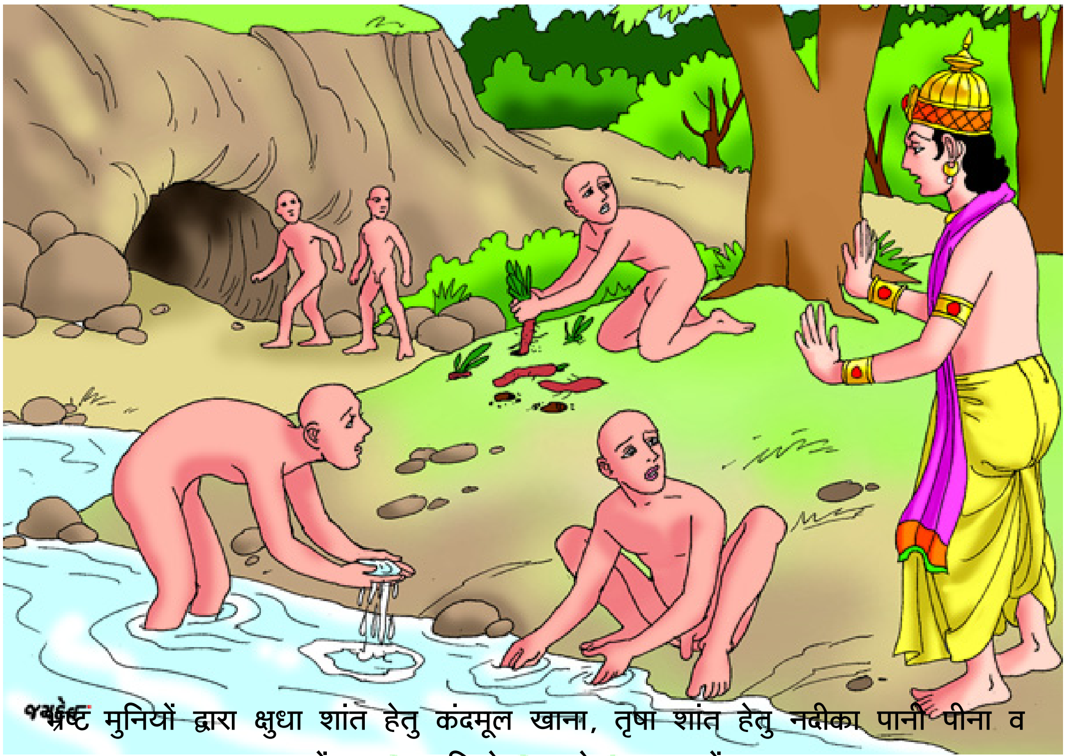

भ्रष्ट मुनियों द्वारा क्षुधा शांत हेतु कंदमूल खाना, तृषा शांत हेतु नदीका पानी पीना व गुफामें रहना आदि देख वनदेवताका उन्हें ताड़ना

फूल तोड़कर लाते थे और उनसे भगवान श्री आदिनाथकी पूजा किया करते थे।

भगवान श्री वृषभदेवको बाह्य जगतका कुछ भी ध्यान नहीं था। वे समताभावसे क्षुधा-तृषाकी बाधा सहते हुए आत्म-ध्यानमें लीन रहते थे। जिस वनमें महामुनि वृषभेश्वर ध्यान कर रहे थे, उस वनमें जन्म-विरोधी जीवोंने भी परस्परका विरोध छोड़ दिया था—सिंहनी गायके बच्चेको प्यारसे दूध पिलाती थी और गाय सिंहनीके बच्चेको प्रेमसे पुचकारती थी, मृग और सिंह परस्पर खेला करते थे; सर्प और नेवला, मोर आदि विरोधी जीव एक दूसरेके साथ क्रीड़ा किया करते थे, हाथियोंके बच्चे, बड़े मृगराजों की अयालों–गर्दनके बालोंको नोचते थे।

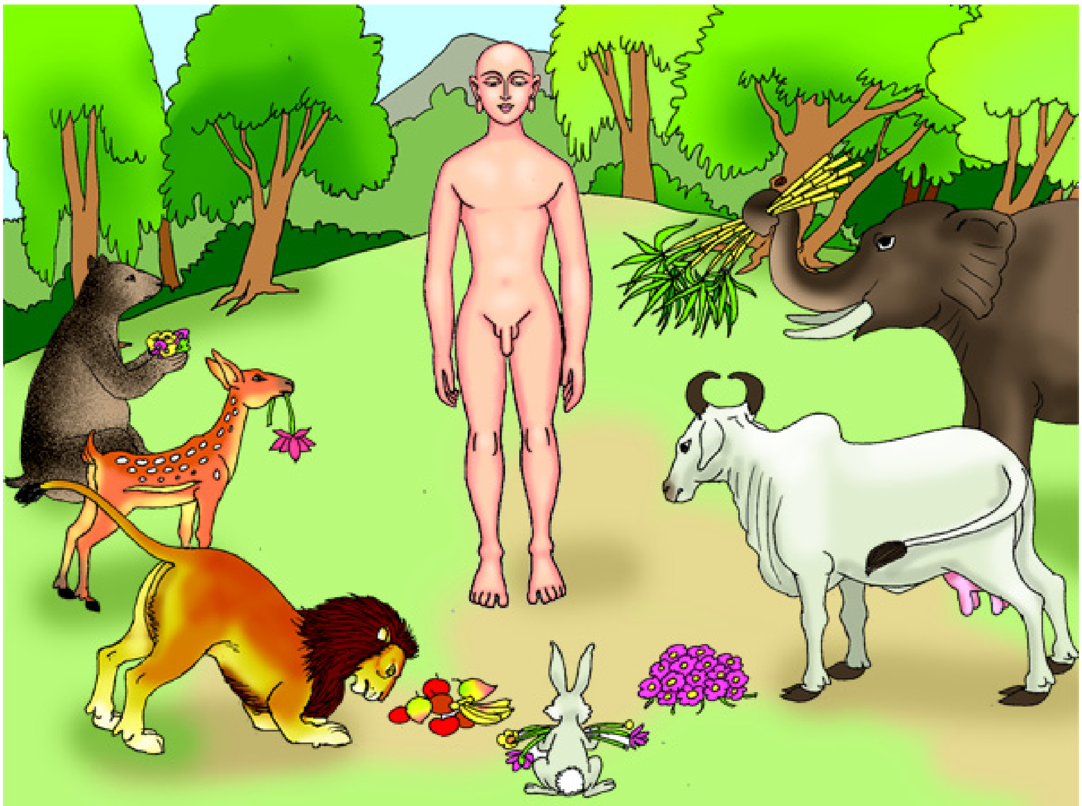

मुनिश्वर ऋषभदेवकी ध्यानस्थ दशा देख फल-फूल द्वारा उनकी पूजा करते वन्यप्राणी

जंगलके प्राणी भक्तिभावसे वृषभदेव मुनिराजको पुष्प फलादि चड़ाकर भक्ति कर रहे थे। सच है–विशुद्ध आत्माका प्रभाव मूक-प्राणीयों पर भी पड़ सकता है।

नमि-विनमिकी
श्री वृषभदेव भगवानके पास याचना

नमि-विनमि राजकुमार द्वारा ऋषभदेव मुनिवरकी वंदना व विनती

एक दिन कच्छ और महाकच्छ राजाओंके लड़के नमि और विनमि भगवान श्री वृषभदेवके चरण-कमलोंके समीप आकर उनको प्रार्थना करने लगे—'हे त्रिभुवन नायक! आप अपने सब पुत्रों तथा अन्य राजकुमारोंको राज्य देकर सुखी कर आये, पर हम दोनोंको आपने कुछ नहीं दिया। भगवन्! आप तीन लोकके अधीश्वर हैं, समर्थ हैं, दयालु हैं, इसलिए हमें भी राज्य देकर सुखी कीजिए। भगवान श्री वृषभदेव आत्म-ध्यानमें लीन हो रहे थे; इसलिए नमि-विनमिको यद्यपि उनकी ओरसे कुछ भी उत्तर नहीं मिला, तथापि वे अपनी प्रार्थनामें संलग्न रहे।

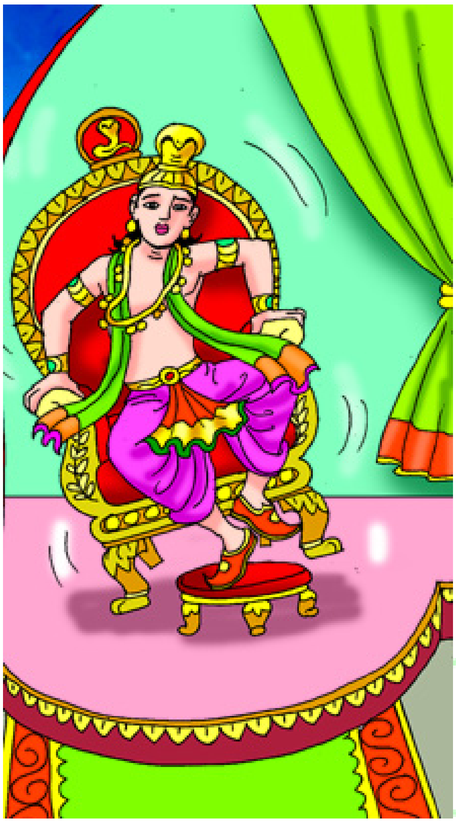

धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान

नागेन्द्रका वेष बदलकर नमि-विनमिसे वार्तालाप

इस घटनासे धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ, जिससे भगवान श्री वृषभदेवके ध्यानमें कुछ बाधा समझकर वह शीघ्र ही उनके पास आया। आकर देखता है, कि दोनों ओर खड़े हुए नमि-विनमि भगवान श्री वृषभदेवसे राज्यकी याचना कर रहे हैं, तब धरणेन्द्रने अपना वेष बदलकर दोनों राजकुमारोंको कहा, कि आप लोग भरतसे राज्यकी याचना कीजिये, जो आपकी अभिलाषाको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं। इनके पास क्या रक्खा है, जिसे देकर ये आपकी राज्य-लिप्साको पूर्ण करे? आप लोग राजकुमार होकर भी इतना नहीं समझ सके, कि जिसके पास जो होता है, वही किसीको कुछ दे सकता है।' धरणेन्द्रकी बातें, सुनकर उन दोनोंने कहा, कि हे भद्र! आप बड़े बुद्धिमान मालूम होते हैं, बोलनेमें आप बहुत ही चतुर प्रतीत होते हैं, आपका भेष विश्वसनीय है; पर हमारी समझमें नहीं आता, कि आप बिना पूछे हम लोगोंके बीचमें क्यों बोलने लगे? तीनलोकके एकमात्र अधीश्वर भगवान श्री वृषभदेवकी चरण-छायाको

छोड़कर राजा भरतसे राज्यकी याचना करें, जो बेचारा खुद ही सामान्य भूमिका राजा है? महाशय! जो कमण्डल महासागरके जलसे नहीं भरा, वह क्या गोष्पदके जलसे भर जावेगा? क्या अनोखा उपदेश है आपका? राजकुमारोंकी उक्ति-प्रत्युक्तिसे प्रसन्न होकर धरणेन्द्रने अपना कृत्रिम वेष छोड़ दिया और प्रकट होकर नमि-विनमिसे कहा– 'राजपुत्रों! राज्यका विभाग करते समय भगवान श्री वृषभेश्वर आप लोगोंके अंशका राज्य मुझे बता गये हैं, सो चलिये, मैं चलकर आपका राज्य आपको दे दूं। इस समय वे ध्यानमें लीन हैं, उनके मुखसे आपको कुछ भी उत्तर नहीं मिलेगा।'' इस प्रकारसे समझाकर वह धरणेन्द्र उन्हें विमान पर बैठाकर विजयार्ध पर्वत पर ले गया। पर्वतकी अलौकिक शोभा देखकर दोनों राज-पुत्र बहुत ही प्रसन्न हुये।

उस पर्वतकी दो श्रेणियाँ हैं—एक दक्षिण श्रेणी और दूसरी उत्तर श्रेणी। इन दोनों श्रेणियों पर सुन्दर-सुन्दर नगरोंकी रचना है, जिनमें विद्याधर लोग रहा करते हैं। वहाँ पहुँच कर धरणेन्द्रने कहा, कि वृषभेश्वर आप लोगोंको यहाँका राज्य देना स्वीकार कर चुके हैं, सो आप यहाँका राज्य प्राप्त कर देवराजकी तरह अनेक भोगोंको भोगो और इन विद्याधरोंका पालन करो। ऐसा कह कर उसने दक्षिण श्रेणीके साम्राज्यमें नमिका और उत्तर श्रेणीके साम्राज्यमें विनमिका अभिषेक किया, उन्हें कई प्रकारकी विद्यायें प्रदान की तथा जनतासे उनका परिचय कराया। नमि-विनमि विद्याधरोंका राज्य पाकर बहुत प्रसन्न हुये। धरणेन्द्र अपना कर्तव्य पूरा कर अपने स्थानको वापिस चला गया।

नागेन्द्र असलीरूपमें आकर नमि-विनमिको विजयार्द्ध पर्वतकी श्रेणियोंमें उन्हें राज्य सोंपना

श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र

शत्रुंजयगिरि निर्वाण-क्षेत्र है। इस स्थानसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ये तीन पाण्डव तथा आठ कोटि द्रविड़ राजा अष्टकर्मोंका नाश करके मुक्त हुए थे–ऐसा निर्वाणकाण्ड, निर्वाणभक्ति, हरिवंशपुराण आदि अनेक स्थान पर स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

इस बारेमें कथानक है कि पाण्डवोंने भगवान श्री नेमिनाथसे अपने भवांतर सुनकर मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली और कठिन तपश्चर्या करने लगे। उन्हें अनेक प्रकारकी ऋद्धियाँ प्राप्त हो गयीं, किन्तु उन्हें ऋद्धियोंसे क्या प्रयोजन था? उनकी दृष्टि बाह्यसे हटकर आत्मकेन्द्रित हो गयी थी। वे अनेक वर्षों तक भगवान श्री नेमिनाथके साथ विहार करते रहे और अन्तमें शत्रुंजय पर्वत पर जाकर आतापन योग धारण करके विराजमान हो गये।

एक दिन कौरवोंका भानजा [१]कुर्युवर (अपरनाम यववर्धन) भ्रमण करता हुआ इधर आ निकला। पाण्डवोंको देखते ही उसे अपने मामाके वध और मातुल कुलके

विनाशका स्मरण हो आया। स्मरण आते ही उसके मनमें भयानक क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसने पाण्डवोंसे प्रतिशोध लेनेका संकल्प कर लिया। वह नगरमें गया और लोहाकारसे लोहेके मुकुट, कुण्डल, हार, केयुर आदि बनवाकर लाया। उसने उन्हें अग्निमें तपाया। उन तप्त आभूषणोंको पाण्डवोंको पहना दिया। पाण्डवोंके अंग जलने

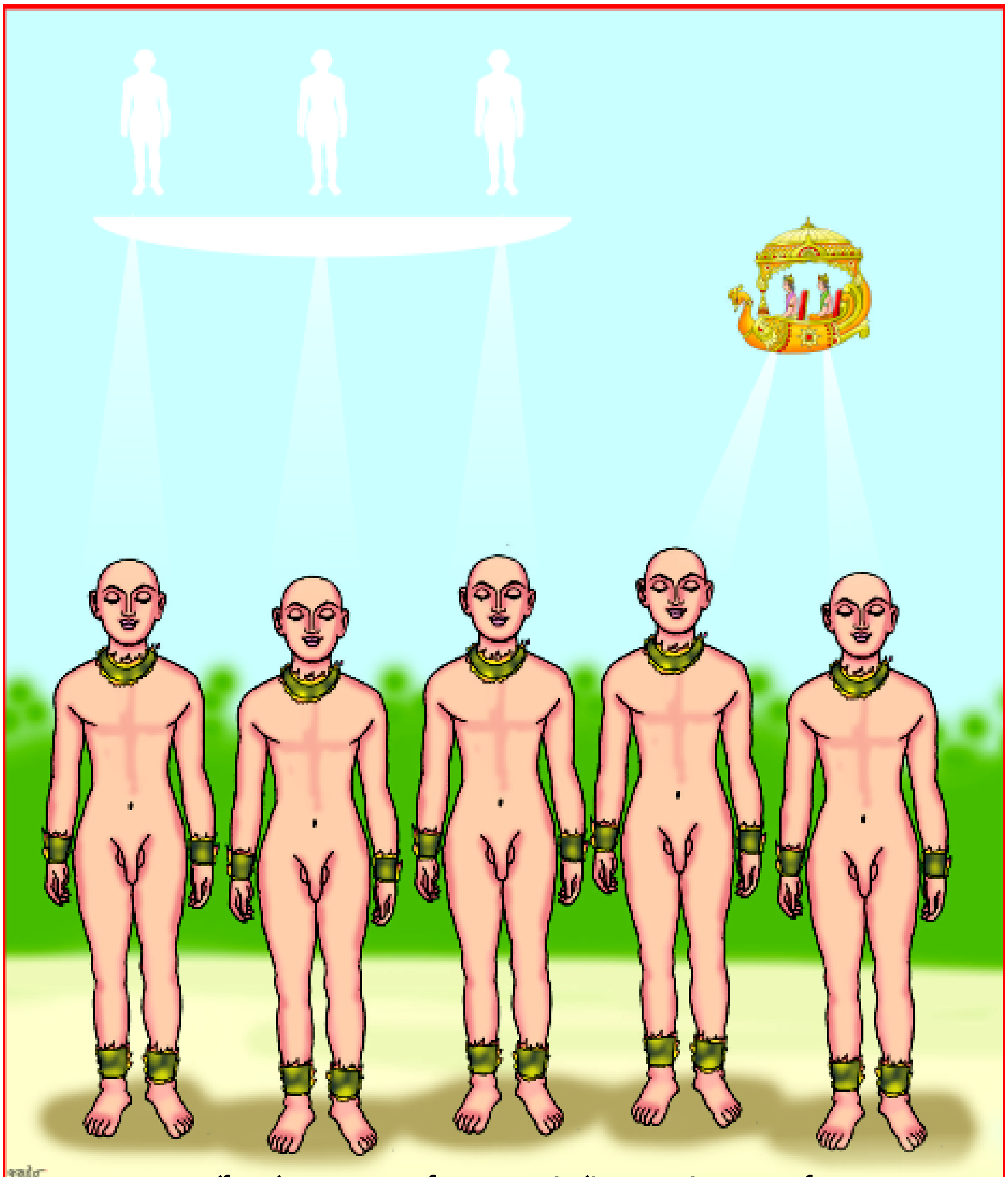

दुर्योधनके भानजा कुर्युवर द्वारा पांडवों पर भयंकर उपसर्ग

लगे। किन्तु उन्हें तो बाह्यकी सुध ही नहीं थी, उनका उपयोग तो आत्मामें केन्द्रित था। वे शुक्लध्यानमें लीन हो कर्म शत्रुओंका संहार कर रहे थे। इधर कुर्युवर उनके तिल-तिल जलते हुए अंगोंको देखकर मनमें अत्यंत मुदित हो रहा था और अपने प्रतिशोधकी सफलता पर गर्व कर रहा था। शुक्लध्यानके बलसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनने घातिया एवं अघातिया कर्मोंका विनाश किया और मुक्त हो गये। उनके जन्म-मरणकी श्रृंखलाका अंत हो गया।

नकुल और सहदेव पूर्णतः आत्म-विजय नहीं कर सके। वे सर्वार्थसिद्धि विमानमें अहमिन्द्र बने। इस प्रकार शत्रुंजय पर्वत पाण्डवोंकी निर्वाणभूमिके रूपमें विख्यात है।

यहाँसे पाण्डवोंके उपरान्त आठ करोड़ द्रविड राजाओंने मुक्तदशा प्राप्त की थीं।

इस पर्वतका एक नाम 'शत्रुंजय' है व दूसरा नाम 'अरिंजय' भी माना गया है।

इस क्षेत्र पर भगवान श्री ऋषभदेव बाईस बार पधारे थे तथा यहाँ ललित सरोवर एवम् अक्षय वट है। ऐसा एक स्थान पर उल्लेख है।

यह सिद्धक्षेत्र जिस पहाड़ी पर है, वह गाँव पालिताणा है, जिसमें रेल्वे स्टेशन व बस स्टेन्डके पास ही दिगम्बर जैन धर्मशाला है, व धर्मशालासे थोड़ी दूर पर एक दिगम्बर जिनमन्दिर है। एक कि.मी. पर तलहटी है। क्षेत्र पर सीडियाँ बनी हुई हैं। यहाँ पर श्वेताम्बरके कई बड़े व दिगम्बरका एक जिनमन्दिर है। यहाँ हिन्दुओंका या बौद्धोंका कोई मन्दिर नहीं है। अतः यह जैनोंका तीर्थ स्पष्टरूपसे प्रसिद्ध है।

दिगम्बर जिनमन्दिर शान्तिनाथ भगवानका है, व चारों ओर श्वेताम्बर मंदिरोंसे घिरा हुआ है।

यह स्वर्णपुरी सोनगढसे तेईस कि.मी. दूर व जिला भावनगरसे सत्तावन कि.मी. दूरी पर है। यहाँ अहमदाबाद व सौराष्ट्रके लगभग सभी क्षेत्रके बसोंकी आने-जानेकी सुविधा है।

पूज्य गुरुदेवश्री अनेक भक्तोंके साथ वि.सं. १९९५ (ई.स. १९३९) व वि.सं. २००६ (ई.स. १९५०)में इस क्षेत्रकी ससंघ यात्रा की थी।

श्री पावागढ़ सिद्धक्षेत्र

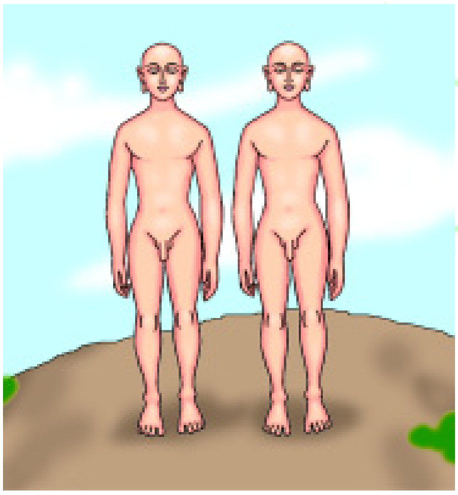

पावागढ़का प्राचीन नाम पावागिरि था। बादमें पर्वत पर दुर्ग बन जानेके कारण इसका नाम पावागढ़ हो गया। यह स्थान सिद्धक्षेत्र या निर्वाण-क्षेत्र है। यहाँ पर रामचन्द्रके दो पुत्र–अनंगलवण और मदनांकुशने घोर तप करके कर्मोंका नाश करके निर्वाण प्राप्त किया था। इनके अतिरिक्त लाट देशके पाँच कोटि नरेशोंने भी यहाँ पर तपस्या करके मुक्ति प्राप्त की थी।

पावागढ़के बारेमें 'निर्वाणकाण्ड' आदि कई जगह उल्लेख मिलता है।

निर्वाणकाण्डमें तीन पावाओंका उल्लेख आया है। (१) प्रथम पावाके सम्बन्धमें उसमें लिखा है–'पावाए णिब्बुदो महावीरो' अर्थात् एक पावा वह थी, जहाँसे भगवान श्री महावीर मुक्त हुए थे। (२) दूसरी पावाका नाम पावागिरि था जहाँसे राजा रामके दो पुत्र और पांच कोटि लाट नरेश मुक्त हुए थे। (३) तीसरी पावा भी पावागिरि

कहलाती थी और वहाँसे सुवर्णभद्र आदि चार मुनि मुक्त हुए थे। यह पावागिरि चेलना नदीके तट पर अवस्थित थी। इससे सिद्ध होता है कि राम-पुत्रोंकी निर्वाण-भूमि लाटदेशमें थी। लाटदेश सौराष्ट्रको कहा जाता था और गुर्जर गुजरातको। दोनों प्रदेश प्रायः सम्मिलित रहे हैं, अतः दोनों एक माने जाते हैं। इसलिए पावागढ़ लाटमें या गुर्जर देशमें, एक ही बात है।

अति प्राचीन कालसे पावागढ़ तीर्थभूमि रहा है। किन्तु यह सैनिक सुरक्षाकी दृष्टिसे भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा प्रतीत होता है। इसलिए इसकी तलहटीमें चाँपानेर शहर बसाकर पर्वतके ऊपर गढ़ बनाया गया। इस गढ़के कारण ही चाँपानेर शताब्दीयों तक सुरक्षित रहा और यह धन-धान्यसे संपन्न रहा। इस नगरके चारों ओर भी कोट बना हुआ था। अब भी नगरका कुछ भाग कोटसे घिरा हुआ है। इस कोटकी पूर्व-पश्चिमकी ओर दो बड़े दरवाजे हैं जिन्हें पार करके नगरका बाजार मिलता है। प्राचीनकालमें इस नगरकी लम्बाई बारह कोस बताई जाती है। यह भी कहा जाता है कि यहाँ पर चौरासी चौउटा थे और यहाँ बावन बाजार थे। यहाँ नगरमें और बाहर प्राचीन भवनोंके खण्डहर पड़े हुए हैं। यहाँ बहुत काल तक जैनोंका राज्य रहा था। उस कालमें किसी जैन राजाने बावन जिनालय बनवाये थे। पर्वतके ऊपर भी जैन मन्दिर और भवन बनाये गये थे। चिमणा पण्डितने भी पावागढ़के ऊपर जैन मन्दिर निर्माण करनेकी सूचना 'तीर्थवंदना' नामक अपनी रचनामें इस प्रकार दी है—

रामनंदन लहु अंकुस जाआ। पावागिरि उभय गेले निर्वाना।
पाँच कोड़ि मुनि मुगति निवासी। गंगादासे चैत्यालि केली पुण्यासि।।१५।।

इसमें बतलाया है कि गंगादासने पावागिरिके ऊपर चैत्यालयका निर्माण कराया था। पर्वतके मध्यमें खापरा वेरीका सात खण्डका भवन अब तक खड़ा हुआ है। इस भवनके चार खण्ड पृथ्वीके भीतर है तथा शेष तीन खण्ड पृथ्वीके ऊपर हैं। इसे लोग देखने जाते हैं।

जैन राजाओंके पश्चात् यहाँ पर तोमर वंशका शासन हो गया। संवत् १४८४में अहमदाबादके मुहम्मद बेगड़ाने फतई रावल राजा जयसिंहको पराजित करके इस नगर

पर अधिकार कर लिया। उसने पर्वत और नगरके मन्दिरोंको क्रूरतापूर्वक विनष्ट कर दिया। जैन मंदिरोंका विनाश भी इसीने किया था, जिनके भग्नावशेष अब तक मिलते हैं।

यहाँ कालीदेवीका मंदिर है। किवदन्तीयों अनुसार देवीके शाप अनुसार मुसलमानोंने इसी नगरी, मंदिरों, देवताओं व देवीओंको बर्बरतासे नाश किया।

कहा जाता है कि प्राचीनकालमें वट्टगाँव (वड़ोदरा) यह पावागढ़ तक फैला हुआ था। यहाँ इस पहाड़ पर आनतेन्द्रने मन्दिर बनवाये थे। जिसमें भगवान श्री वीरसेन स्वामीने प्राचीन 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' देखी, जिससे प्रेरित होकर गुरु एलाचार्यके आदेशानुसार ई.स. ८००के आसपास में धवला टीकाकी शुरूआत इन्हीं मन्दिरोंमें की थी।

यहाँ धर्मशालासे निकलते ही पर्वतके दर्शन होते हैं। पर्वतकी चढ़ाई साढ़े तीन मील है। इस पर्वत पर प्राचीनकालमें सत्रह गढ थे। जिनके सात दरवाजे थे। ये सभी दरवाजे भग्न अवस्थामें हैं। यहाँ के दिगम्बर जिनमन्दिर मुहम्मद बेगड़ाने ईस्वीकी पंद्रहवीं शताब्दीमें प्रायः नष्ट कर दिये थे।

यहाँ पर कार द्वारा, ट्रोली द्वारा भी पहुँचा जा सकता है। यहाँ तालाबके पास तीन जिनमन्दिर हैं। आगे और चार मन्दिर होकर कुल सात मन्दिर फिलहाल उपलब्ध हैं। इसके अलावा कई बड़े-बड़े मन्दिर यहाँ रहे हों—ऐसा यहाँके भग्नावशेषमें पड़े मन्दिरों परसे प्रतीत होता है।

तलहटीमें दो मन्दिर हैं। यहाँ एक मानस्तंभ भी है। सुवर्णपुरीका मानस्तंभ इस ही मानस्तंभके आधारसे नवीनरूपसे ही बनाया गया है।

बड़ौदा-रतलाम लाईन पर चाँपानेर रेल्वे स्टेशन है। वहाँसे छोटी लाईन पावागढ़की है। बाकी यहाँ बस सुविधा सारे गुजरातकी तरह अच्छी है।

पूज्य गुरुदेवश्रीने इस क्षेत्रकी भी यात्रा की थी।

श्री गजपंथा सिद्धक्षेत्र (महाराष्ट्र)

श्री गजपन्था सिद्धक्षेत्र या निर्वाणक्षेत्र है। यहाँसे सात बलभद्र और आठ कोटि यादव मुक्त हुए थे। ऐसा कई निर्वाण-काण्ड आदि प्राचीन उद्दहरणोंसे स्पष्ट होता है।

निर्वाणकाण्डमें इस पर्वत परसे जिन सात बलभद्रोंकी मुक्ति-प्राप्तिका उल्लेख है, उनके नाम उत्तरपुराण आदि पुराणोंके आधार पर इस प्रकार हैं —(१) विजय (२) अचल (३) सुधर्म (४) सुप्रभ (५) नन्दी (६) नन्दीमित्र और (७) सुदर्शन।

कुछ विद्वान वर्तमान गजपन्थ क्षेत्रको वास्तविक न मानकर आधुनिक खोज मानते हैं। उनका तर्क है, कि इस क्षेत्र पर न तो कोई प्राचीन मन्दिर है और न पुरातत्त्व ही। किन्तु प्राचीन साहित्यमें कुछ प्रसंग या स्थल ऐसे भी प्राप्त होते हैं, जिनसे इस बातका निर्णय हो जाता है, कि यह क्षेत्र यहाँ पर अवस्थित था। असग कवि कृत 'शान्तिनाथ-चरित'में एक प्रसंग है—अमिततेज और श्रीविजयाने अपनी विशाल वाहिनीको लेकर अशनिवेग विद्याधरका पीछा किया। तब वह अपनी रक्षाका कोई उपाय न देखकर भाग खड़ा हुआ और नासिक नगरके बाहर गजध्वज पर्वत पर जा पहुँचा। इस उल्लेखसे स्पष्ट हो जाता है, कि गजपन्थ शैल नासिक नगरके बाहर था। किन्तु

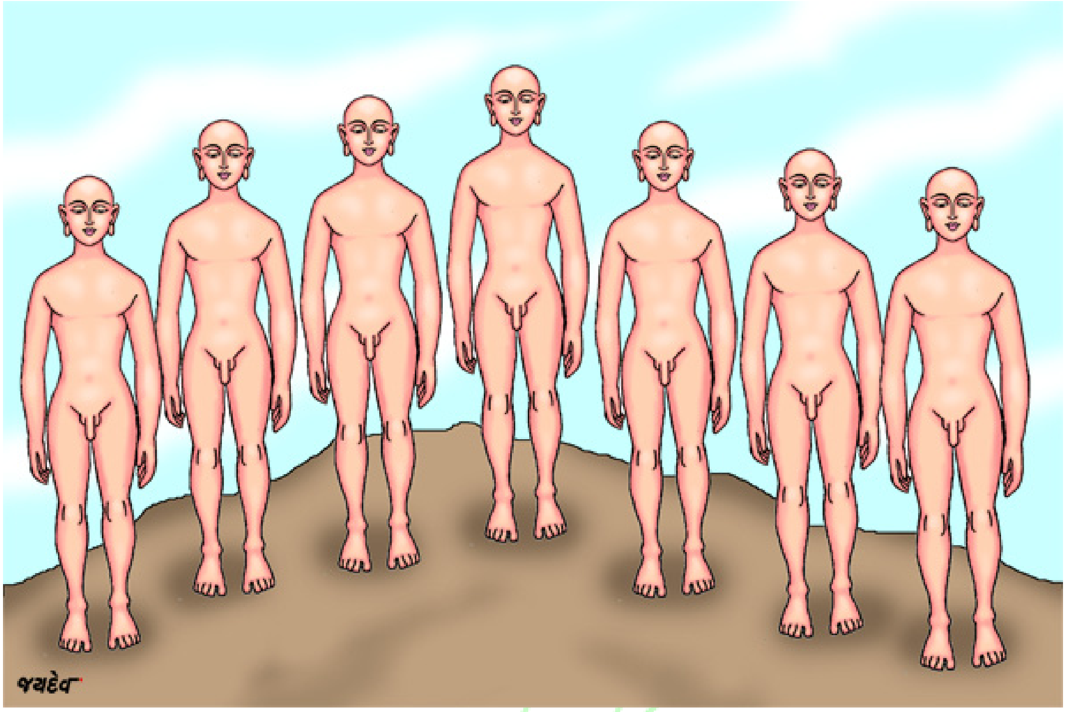

गजपंथ पर्वत पर सात बलभद्र मुनिका ध्यान (ध्यानमें क्रमशः होने पर भी गजपंथ पर्वतका महात्म्य दिखाने हेतु एक साथ सातोंको ध्यानस्थ दिखाया गया है)

श्लोकमें 'गजपन्थ' शब्द न देकर कविने पर्वतका नाम 'गजध्वज' दिया है। 'गजध्वज' और 'गजपन्थ' एक ही पर्वतके नाम हैं और परस्पर पर्यायवाची हैं। इस बातका समर्थन बोधप्राभृत गाथा २७की श्रुतसागरकृत टीकासे भी होता है। उसमें समस्त तीर्थोंके नाम इस प्रकार दिये हैं—

''उर्जयन्त-शत्रुंजय-लाटदेश, पवागिरि-आमिरदेशतुंगीगिरि-नासिक्यनगरसमीपवर्ति गजध्वज-गजपंथ-सिद्धकूट तारापुर कैलासाष्टापद, चम्पापुरी-पावापुर-वाराणसीनगरक्षेत्र हस्तिनागपत्तन-चलमैंद्रगिरि-वैभारगिरि-रूप्यगिरि सुवर्णगिरि रत्नगिरि शौर्यपुर चूलाचल-नर्मदातट-द्रोणगिरि-कुन्थुगिरि-कोटिकशिलागिरि-जम्बुक' वन-चेलनानदीतट तीर्थंकरपंच-कल्याणस्थानानि।''

उपर्युक्त उल्लेखोंमें 'नासिक्यनगर समीपवर्ती गजध्वज-गजपन्थ' नाम देकर सारी शंकाओंका समाधान कर दिया है। इसका अर्थ यह है कि गजपन्थ नासिक नगरके समीप था और उसका अपरनाम 'गजध्वज' भी था।

वर्तमानमें भी गजपन्थ क्षेत्र नासिक शहरसे केवल छः कि.मी. दूर है। म्हसरूल गाँवमें धर्मशाला है। यह पर्वतकी तलहटीमें है। यहाँसे पर्वत अर्थात् निर्वाण-स्थान लगभग दो कि.मी. पड़ता है। उपर जानेके लिए पाषाणकी ४३५ सीढ़ियाँ बनी हुई है। नासिक रोड़ स्टेशनसे नासिक होकर म्हसरूल गाँव सोलह कि.मी. पड़ता है। नासिकसे म्हसरूलके लिए मोटर, तांगे बराबर मिलते हैं।

क्षेत्रके नजदीक ही धर्मशाला है।

पहाड़ पर चढ़ते ही एक लघुशिखरके नीचे सुप्रभ, सुधर्म, गजकुमार, अचल और विजय बलभद्रके चरण हैं। आगे नवनिर्मित जिनालय और पार्श्वनाथ गुफाके दर्शन होते है। यह गुफा व पार्श्वनाथ प्रतिमा अत्यन्त प्राचीन हैं।

इन मंदिरोंके बगलमें ही अत्यंत प्राचीन दो गुफा मन्दिर हैं।

इस गुफासे आगे बढ़ने पर एक दूसरी गुफा मिलती है। यह कमरेके आकारका बना हुआ है।

इस क्षेत्र पर उसके निकटस्थ चौदह-पंद्रह मीलके प्रदेशमें जैन पुरातत्त्व सामग्री विपुल परिमाणमें उपलब्ध होती है। ईसाके नौसौ वर्ष पूर्व मैसुरके चामराज नरेशने यहाँकी गुफाओंमें मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करवाई थी। तबसे उन गुफाओंको चामर जैसी (चामरगुफा) कहने लगे हैं।

ग्यारह नम्बरकी पाण्डव गुफामें श्री महावीर प्रभुकी प्रतिमा है।

गजपन्थसे पश्चिमकी ओर लगभग सोलह कि.मी. दूर त्रंबक रोड पर अजनेरी क्षेत्र है। यहाँ पर्वत पर दो गुफा हैं। इनमें भगवानकी प्रतिमा है। यहाँ भग्नावेशमें बहुत मन्दिर हैं। ये सभी पुरातत्त्व विभाग अनुसार चार से आठवीं शताब्दीके हैं। यह निर्वाणक्षेत्र नासिकके अन्तर्गत है।

श्री चंपापुरी–मंदारगिरि सिद्धक्षेत्र

चम्पापुरी अत्यन्त प्राचीन तीर्थक्षेत्र है। यहाँ बारहवें तीर्थंकर भगवान श्री वासुपूज्य के गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण इस प्रकार पंच कल्याणक हुए थे। केवल यही क्षेत्र ऐसा है, जहाँ किसी तीर्थंकरके पांचो कल्याणक एक ही स्थान पर हुए हों ऐसा महान सौभाग्य अन्य किसी नगरको प्राप्त नहीं हुआ। ऐसी पुण्य नगरियाँ तो हैं जहाँ किसी एक तीर्थंकरके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान ये चारों कल्याणक मनाये गये। किन्तु एक तीर्थंकरके पाँचो कल्याणक केवल चम्पापुरीमें ही हुए। इस दृष्टिसे इस नगरीको विशेष महत्त्व प्राप्त है।

वर्तमानमें मन्दारगिरिके रूपमें प्रसिद्ध जो पहाड़ चम्पानगरके बाहर उद्यानमें है वहाँ भगवान श्री वासुपूज्यस्वामीका तप और ज्ञानकल्याणक हुआ था। निर्वाण कल्याणक चम्पानगरीमें हुआ था। कई आचार्य निर्वाणकल्याणक मन्दारगिरिमें मानते हैं।

भगवान श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रका समवसरण चम्पानगरमें आया था।

भगवान श्री वासुपूज्यके साथ चौरानवे मुनिराज मुक्ति पधारे थे।

चम्पानगरीका विस्तार अड़तालीस कोस बताया गया है।

भगवान श्री ऋषभदेवने जो उनसाठ जनपदोंकी रचना की थी। उसीसे यह चम्पानगरी अंगदेशकी राजधानी मानी गई थी।

भगवान श्री वासुपूज्यस्वामी व उनकी चम्पानगरीके सम्बन्धमें कतिपय कथानक पुराणोंमें मिलते हैं, वे निम्नप्रकारसे हैं :—

(१) मिथिलाका राजा पद्मरथ एक बार सूर्याभनगरमें गया। वहाँ सुधर्म नामक गणधर विराजमान थे। राजा उनके दर्शनोंके लिए गया। उसने गणधरदेवके दर्शन किये और उनका उपदेश सुना। उपदेश सुनकर उसे बड़ा सन्तोष और आनन्द हुआ। उसने बड़े विनयके साथ कहा—'भगवन्! क्या तीनों लोकमें कोई ऐसा व्यक्ति है, जो आपके समान उपदेश दे सके।' गणधर बोले—हाँ! है। मेरे समान नहीं, मुझसे अधिक जगद्गुरु त्रिलोकपूज्य भगवान श्री वासुपूज्य चम्पानगरमें हैं।' राजा बोला—'यदि वे आपसे भी बड़े हैं तो मैं उनके दर्शन अवश्य करूँगा।' राजाने यह कहकर भोगोपभोगोंका त्यागकर दिया और वह वहाँसे चल दिया।

मार्गमें विश्वानल देवने उनपर बड़े उपसर्ग किये। किन्तु विरागरंजित राजा रुके नहीं और वे त्रिलोकीनाथ भगवान श्री वासुपूज्यस्वामीके चरणोंमें जा पहुँचे। उन्हें संसार, शरीर और भोगोंकी क्षणभंगुरताको देखकर बड़ा वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने भगवानके पास जिनदीक्षा ले ली और शीघ्र ही वे द्वादशांगके वेत्ता होकर भगवान श्री वासुपूज्यके गणधर बने। अन्तमें गणधर पद्मरथ कर्मोंका नाश करके मुक्त हुए।

(–हरिषेण कथाकोष-कथा-१५)

(२) भगवान श्री वासुपूज्यके समयमें द्वारावतीमें द्वितीय बलभद्र अचल और नारायण द्विपृष्ठ हुए। जब द्विपृष्ठने अपने शत्रु प्रतिनारायण तारकका संहार करके भरतक्षेत्रके तीन खंडो पर अधिकार कर लिया, उसके बाद वे भगवान वासुपूज्यके समवसरणमें अनेक बार आये थे। इतना ही नहीं, वे भगवान श्री वासुपूज्य तीर्थंकरके मुख्य श्रोता माने गये थे। अपनी अन्तिम अवस्थामें बलभद्र अचलने श्री वासुपूज्य भगवानके चरणोंमें दीक्षा ली और तप करके मुक्ति प्राप्त की।

(३) चम्पानगरीका राजा मघवा था। उसकी रानीका नाम श्रीमती था। उनके गुणवान आठ पुत्र और अत्यन्त रूपवती रोहिणी नामकी पुत्री थी। कार्तिककी अष्टाह्निकामें रोहिणी मन्दिरमें जाकर प्रतिदिन पूजन करती थी। एक दिन राजाने उसे देखा तो उसे अनुभव हुआ, कि अब उसकी पुत्री सयानी हो गयी है। इसका विवाह

(१) राजा पद्मरथ द्वारा मुनिराजका उपदेश श्रवण व ग्रहण व वैराग्य प्राप्त,
वहाँसे पैदल चलकर श्री वासुपूज्य भगवानके समवसरणमें जाकर दिक्षित

कर देना चाहिए। यह सोचकर राजाने अपने मंत्रीओंको बुलाकर परामर्श किया। मन्त्रियोंने विचारकर निवेदन किया, कि महाराज! राजकुमारीका स्वयंवर करना ही उचित होगा। राजाने सब राजाओंके पास दूत और पत्र भेजकर स्वयंवरके समाचार भिजवा दिये। यथासमय बड़े-बड़े राजा और राजकुमार सजधजकर स्वयंवरमें सम्मिलित हुए। रत्नाभरणोंसे अलंकृत अनिन्द्य सुन्दरी रोहिणी अपनी धायके साथ स्वयंवरमंडपमें आयी। उसकी रूप-छटा और सौन्दर्य देखकर उपस्थित जन विस्मयविस्फारित नयनोंसे उसे निहारते रह गये। धात्री क्रम क्रमसे राजाओंका परिचय कराती जा रही थी।

हस्तिनापुरमें राजा वीतशोकका पुत्र अशोक भी प्रत्याशी राजकुमारोंमें बैठा था। वह रूपमें कामदेवके समान सुन्दर था। जब धात्रीने उसका परिचय कराया तो रोहिणी उसकी रूप-सुधाका पान करके, वही चित्रलिखित-सी खड़ी रह गयी। बरबस उसके हाथ उठे और वरमाला राजकुमार अशोकके गलेमें डाल दी। दोनोंका विवाह हो गया। दोनोंका जीवन आनन्द और विलासमें बीतने लगा। एक दिन उल्कापात देखकर महाराज

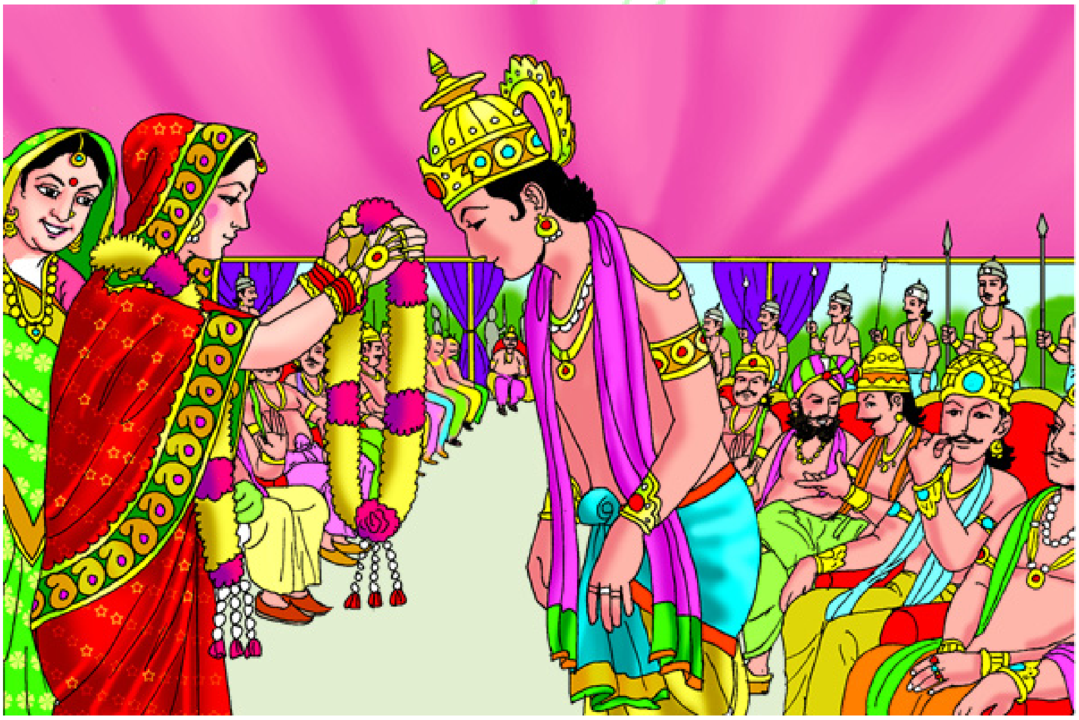

स्वयंवर मंडपमें कुंवरी रोहिणी द्वारा राजा अशोकके गलेमें वरमाला डालना

मघवाको संसारकी क्षणभंगुरताका बोध हुआ। उन्हें संसारसे वैराग्य हो गया। राजकुमारका राज्याभिषेक करके उन्होंने हस्तिनापुरके निकटस्थ अशोक वनमें गुणधर मुनिराजके पास जाकर मुनि-दीक्षा ले ली और घोर तप करने लगे। अन्तमें सम्पूर्ण कर्मोंका नाश करके वे संसारसे मुक्त हो गये।

रोहिणीके आठ पुत्र और चार पुत्रियाँ हुईं सबसे अन्तमें पुत्र हुआ, जिसका नाम लोकपाल रखा गया। एक दिन राजपथ पर कुछ स्त्रियाँ रोती और छाती कूटती आ रही थीं। अशोक और रोहिणी महलोंकी छत पर बैठे प्रकृतिका सौन्दर्य देख रहे थे। अकस्मात् रोहिणीकी दृष्टि शोकाकुल उन स्त्रियोंकी ओर गई। उन्हें देखकर रोहिणीको बड़ा कुतूहल हुआ। उसने अपनी धाय माँसे पूछा–'माँ! ये स्त्रियाँ कौन-सा नाटक कर रही हैं?'

धायको यह सुनकर क्रोध आ गया। वह रोबसे बोली—'पुत्री! क्या दुःखीयोंके दुःखका उपहास करना तुझे योग्य है? यह नाटक नहीं है। अपने किसी प्रियजनके वियोगसे ये सब शोकाकुल हैं और अपना दुःख प्रकट कर रहीं हैं।'

दुःखका स्वरूप समझाने हेतु राजा द्वारा पुत्रको रानीकी गोदमेंसे लेकर छतसे नीचे फेंकना

यह सुनकर रोहिणी इस अश्रुतपूर्व बात पर और भी अधिक विस्मित हुई। वह कहने लगी—'धाय माँ! तुम रोष क्यों करती हो। मैं तो यह भी नहीं समझती कि शोक और दुःख किसे कहते हैं।'

महाराज अशोक यह वार्तालापको सुन रहे थे। उन्होंने कहा—'रोहिणी! दुःख और शोक क्या होता है, यह तुम इस प्रकार नहीं समझ सकोगी। मैं तुम्हे समझाता हूँ।' ऐसा कह उन्होंने रोहिणीकी गोदमें-से पुत्र लोकपालको लेकर नीचे फेंक दिया। किन्तु रोहिणीके मनमें न कोई

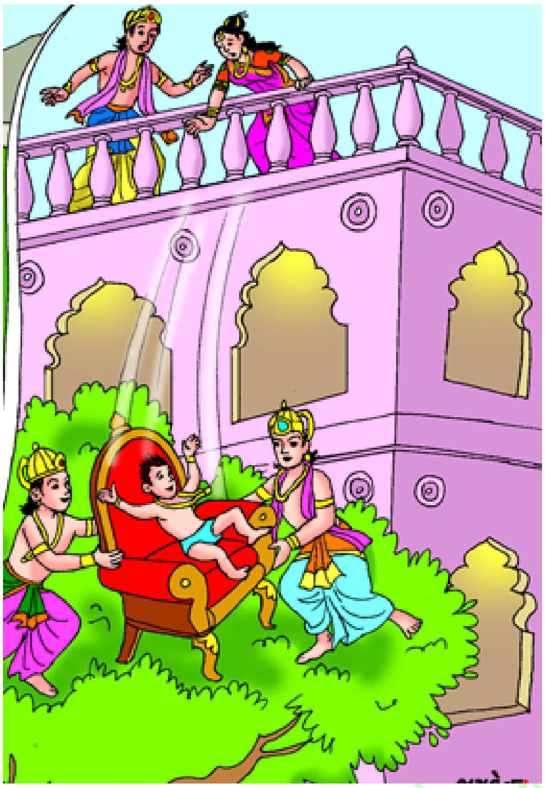

देवों द्वारा सिंहासन पर पुत्रको बिठना

भयका भाव था, न आतंकका। जिसके पास पुण्यका कोष है, वह भयभीत क्यों हो। बच्चा ज्यों ही फेंका, देवताओंने उसे बीचमें ही थाम लिया और अशोक वृक्ष और उसके ऊपर सिंहासन रचकर बालकको उसपर बैठा दिया और उसका अभिषेक करने लगे। देवोंने वहाँ जंगलमें चार जिनालय भी बना दिये।

एक दिन दो चारण मुनि उस अशोक वनमें पधारे। राजा उनके दर्शनोंके लिए गया। राजाने रूपकुम्भ नामक मुनिराजसे पूछा–''भगवन्! रोहिणीने ऐसा कौनसा पुण्य किया था, जिसके कारण इसे इतना रूप और सुख मिला है।'' मुनिराजने अवधिज्ञानसे जानकर उत्तर दिया––''पहले एक भवमें यह पूतिगन्धा नामकी कन्या थी। इसके शरीरसे भयानक दुर्गन्ध आती थी। एक बार इसने एक मुनिको भयानक कष्ट दिया था, जिससे अनेक दुर्गतियोंमें पड़कर यह पूतिगन्धा नामकी कन्या हुई थी। तब एक मुनिराजसे इसने इस दुर्गन्धिका कारण और उसकी निर्वृत्तिका उपाय पूछा। मुनिराजने इसे पूर्वभवोंकी बात बताकर उपाय बताया कि तू रोहिणी व्रत कर। इसके प्रभावसे तेरा संकट दूर होगा। इसने रोहिणी व्रत किया। उसीका फल है कि इसे इतना रूप और सुख मिला है।

एक बार भगवान श्री वासुपूज्यका समवसरण चम्पानगरीमें आया। राजा और रानी भी उनके दर्शनोंको गये। भगवानका उपदेश सुनकर दोनोंको वैराग्य हो गया। अशोकने मुनिदीक्षा ले ली और रोहिणी आर्यिका बन गयीं। मुनि अशोक भगवान श्री वासुपूज्यके गणधर बने और अन्तमें मोक्ष पधारे। रोहिणीने कठोर तप किया और मरकर अच्युत स्वर्गमें देव हुई। (–हरिषेण कथाकोष–कथा-१७)

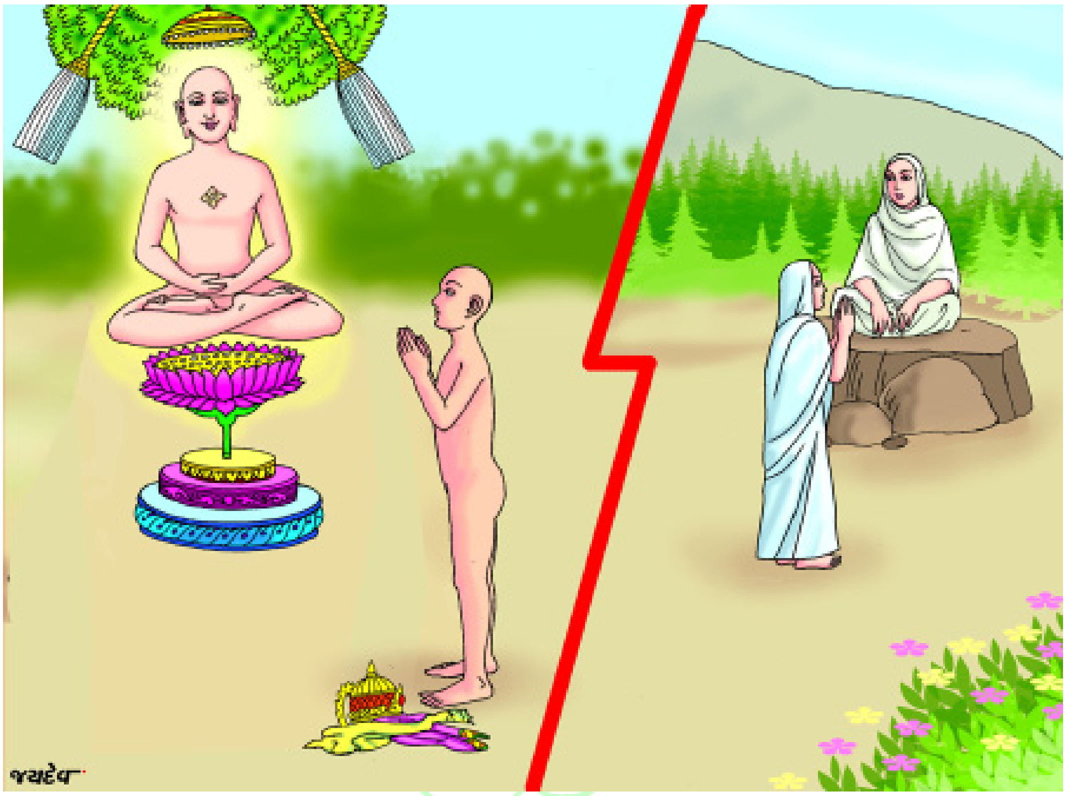

राजा अशोक भगवान वासुपूज्यजीके समवसरणमें दीक्षित व रोहिणी द्वारा आर्यिका व्रत ग्रहण

मुनिको कड़ी ठंडीसे रक्षा हेतु अग्नि तपाता हुआ ग्वाला

(४) चम्पानगरीमें दन्तिवाहन राजा रहता था। उसकी रानीका नाम अभया था। उनके राज्यश्रेष्ठीका नाम वृषभदत्त था। श्रेष्ठीका एक ग्वाला था, जिसका नाम सुभग था। एक दिन सुभग लौट रहा था। सर्दीके दिन थे, जंगलमें उसे एक मुनि दिखाई दिये जो ध्यान लगाये हुए बैठे थे। ग्वालेको उन पर बड़ी दया आयी–एक भी वस्त्र नहीं और इतनी भयानक सर्दी! वह रातभर बैठा उनकी वैयावृत्य करता रहा। प्रातःकाल होने पर मुनिराजने आँखें खोली, सुभगको आशीर्वाद दिया और कहा– 'पुत्र! मैं तुझे णमोकार मन्त्र देता हूँ। इसे सदा स्मरण रखना। तेरा कल्याण होगा।'

सुभगको णमोकार मन्त्र पर बड़ी श्रद्धा हो गयी। वह उठते-बैठते उसे सदा याद करता रहता। एक दिन नदीमें तैरकर आ रहा था कि एक लकड़ीका ठूँठ उसके पेटमें घुस गया और वह मर गया। मरते समय उसके मुखसे णमोकार मन्त्र निकल रहा था। मरकर वह उसी सेठके घर पुत्र हुआ। नाम सुदर्शन रखा गया। जैसा नाम था, वास्तवमें वह वैसा ही सुदर्शन था।

एक दिन रानी अभयाने उसे देख लिया। देखते ही उस पर मोहित हो गयी। सेठ सुदर्शन अष्टमी-चतुर्दशीको रात्रिमें श्मसानमें जाकर ध्यान लगाया करते थे। रानीने अपनी एक विश्वस्त दासीको अपने मनकी बात बतायी। दासी बोली—''महारानीजी! आप चिन्ता न करें। मैं सुदर्शन सेठ को किसी न किसी तरह आपके पास ले आऊँगी।'' और वास्तवमें वह ध्यानस्थ सुदर्शनको उठवा लायी। कामान्ध अभयाने सुदर्शनके सामने निर्लज्ज होकर प्रणय-याचना की, अनेक कुचेष्टाएँ की। किन्तु दृढ़ शीलव्रती सुदर्शन विचलित नहीं हुए। तब हारकर उस धूर्त स्त्रीने नाखूनोंसे अपने शरीर पर घाव किये, कपड़े फाड़ लिये, बाल बिखेर लिये और शोर मचाने लगी—''यह दुष्ट मेरा सर्वनाश करना चाहता है। मुझे बचाओ, दौड़ो।'

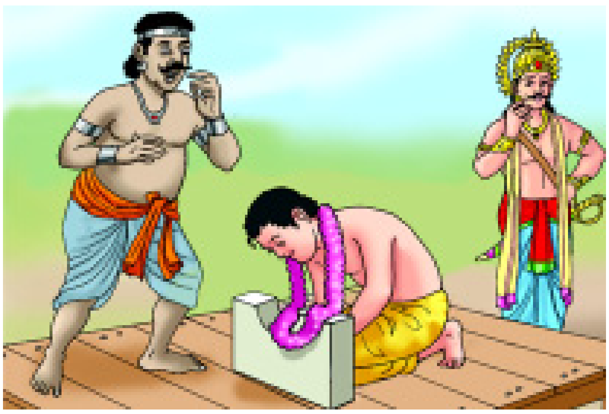
सेठके पुण्यप्रतापसे तलवारका फूलकी माला बनना

रानीका क्रन्दन सुनकर रक्षक दौड़े आये और सुदर्शनको बाँधकर राजाके समक्ष ले गये। राजाने सुना तो उसे बड़ा क्रोध आया और उसने सुदर्शनको मारनेका आदेश दे दिया। बधिक सुदर्शनको लेकर स्मशानमें पहुँचे और स्मशानमें उसे मारनेकी तैयारी की। किन्तु आश्चर्य कि जल्लादकी तलवारके स्थानपर फूलकी माला बन गई। देवगण सुदर्शनकी जयजयकार करने लगे। यह आश्चर्यजनक समाचार राजाके पास पहुँचा। तब राजा दौड़ा आया और आकर सेठ सुदर्शनसे अपने अपराधकी क्षमा माँगी।

सुदर्शनने इसे अपने कर्मोंका दोष बताया। उन्होंने मुनि विमलवाहनसे मुनिदीक्षा ले ली और तपस्या करने लगे। अन्तमें पाटलिपुत्र(पटना) में जाकर सम्पूर्ण कर्मोंका नाश करके निर्वाण प्राप्त किया। (–हरिषेण कथाकोष–कथा-६०)

(५) चम्पानगरीमें शूरसेन राजा राज्य करता था। वहाँ भानुदत्त नामका एक शेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम था सुभद्रा। उनके चारुदत्त नामका इकलौता पुत्र था। जब वह विवाहयोग्य हुआ तो माता-पिताने उसका विवाह कर दिया। किन्तु वह इस अवस्थामें भी विषय-भोगोंसे अनभिज्ञ था। जब कुछ दिन इसी प्रकार बीत गये, तब उसकी माताको चिन्ता हुई। तब उसे विषयोंकी तरफ प्रवृत्त करनेके लिए दुराचारी पुरुषोंकी संगतिमें डाल दिया। परिणाम यह हुआ कि वह वेश्यागामी हो गया। धीरे-धीरे उसका प्रेम एक वेश्यासे हो गया, जिसका नाम था वसन्तसेना।

अब वह उसी वेश्याके यहाँ रहने लगा। जितने धनकी आवश्यकता होती, वह लिखकर भेज देता और घरसे रूपया आ जाता। जब घरमें रुपया समाप्त हो गया तो आभूषण माँगने लगा। स्थिति यह हो गयी, कि घरमें न तो पैसा रहा, न जेवर। उसका पिता शोकमें मर गया। माँ और स्त्री भूखसे मरने लगी। धन बन्द हो जाने पर वेश्याने भी उसे अपने घरसे निकाल दिया। अपमानित चारुदत्त घर आया। उसने घरकी दुरवस्था देखी तो उसे बड़ा शोक हुआ और अपनी माता तथा स्त्रीको आश्वासन देकर वह व्यापारके लिए परदेश चला गया। कई बार उसे दुर्भाग्यका सामना करना पड़ा। एक बार व्यापारके लिए कपास लेकर चला जा रहा था। जंगलमें पहुँचने पर देखा कि दावाग्नि लगी हुई है। इतनेमें एक चिनगारी आकर कपासमें आ पड़ी। देखते-देखते सारा कपास भस्म हो गया।

इसी प्रकार एक बार खूब धन कमाकर वह जहाजमें सामान भरकर घरकी ओर रवाना हुआ। मार्गमें जहाज किनारेसे टकराकर डूब गया। किन्तु ऐसी आपत्तियोंसे भी वह घबड़ाया नहीं, उद्यम करता रहा और सफल हुआ। वह प्रचुर धन कमाकर घर लौटा और अपनी माता तथा स्त्रीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा। अन्तमें वह मुनिदीक्षा लेकर तपस्या करने लगा। उसके प्रभावसे उसने स्वर्गोंके सुख प्राप्त किये।

(–हरिषेण कथाकोष–कथा-९३)

(६) चम्पानगरके धर्मघोष नामक एक श्रेष्ठीने मुनि-दीक्षा ले ली। वे मासोपवासी थे। एक दिन वे पारणाके लिए नगरकी ओर जा रहे थे। किन्तु मार्गमें घास उग रही थी। अतः वे गंगाके किनारे एक वटवृक्षके नीचे बैठ गये। उनकी तपस्यासे प्रभावित होकर वहाँ गंगाकी अधिष्ठात्री देवी आयी। उसने मुनिको नमस्कार किया तथा यह जानकर, कि इस समय मुनिको प्यासकी बाधा है, भक्तिसे जलसे भरा एक कलश लाकर बोली—'मुनिराज! आप इस कलशका जल पीकर अपनी तृषा शान्त कीजिए।' मुनि बोले—देवी! यह हमारे अयोग्य है।'

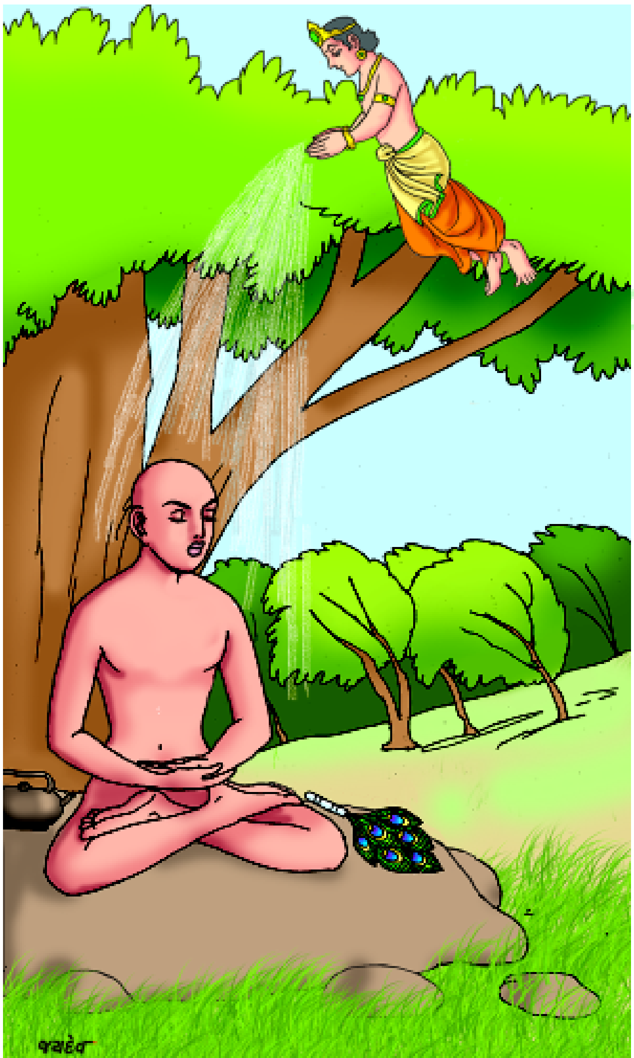

चारों तरफ हरियाली देख चलना छोड़कर तृषाकी बाधा जय करना व देवोंका जलवृष्टि करना

देवीको यह सुनकर कुतूहल हुआ—भयंकर प्यासकी बाधा, किन्तु मेरे हाथसे मुनि जल क्यों नहीं ग्रहण करते। वह पूर्वविदेहमें तीर्थंकर भगवानके पास गयी और उनसे यही प्रश्न किया। भगवान बोले—'मुनिजन देव-देवियोंका लाया हुआ आहार-जल ग्रहण नहीं करते। परंतु नवधा भक्तिसह पड़गाहा हुआ ही आहार-जल ग्रहण करते हैं। देव-देवियाँ तो मुनिकी पूजा, प्रातिहार्य आदि कार्य कर सकते हैं।'

तीर्थंकरकी अमृतवाणी सुनकर गंगादेवी गंगातट पर आयी। उसने भक्तिके साथ मुनिके उपर शीतल जलकी वर्षा की। मुनि शुक्लध्यानमें स्थित थे। उन्होंने घातिया कर्मोंका नाश

करके केवलज्ञान प्राप्त किया और आयुके अन्तमें अघातिया कर्मोंका नाश करके वे सिद्धालयमें जा विराजे। (–हरिषेण कथाकोष–कथा १३३)

(७) सुभद्रा सतीके शीलकी परीक्षा चम्पापुरीमें ही हुई थी। कोटिभट श्रीपाल यहींका राजा था। पुराणप्रसिद्ध अनन्तमती यहीं हुई थी। भगवान श्री महावीरके समकालीन धर्मरुचि केवली गृहस्थदशामें यहाँके शासक थे।

(८) पाण्डवोंकी माता कुन्ती जब कुमारी थी, उस समय पाण्डु एक बार द्वारका गये। वहाँ कुमारी कुन्तीको देखते ही वे मोहित हो गये। कुन्तीकी भी दशा ऐसी ही थी। दोनोंने गन्धर्व-विवाह कर लिया और छिपकर वे मिलते रहे। परिणाम यह हुआ कि कुन्तीको गर्भ रह गया। गर्भ धीरे धीरे बढ़ने लगा। जब बालक उत्पन्न हुआ तो लोक-लाजके कारण कुन्तीने बच्चेको कम्बलमें लपेटकर एकान्तमें छोड़ दिया। बड़ा होने पर वह महारथी कर्ण कहलाया जिसने अंगदेशको जीतकर चम्पानगरको अपनी राजधानी बनाया। (–हरिवंशपुराण, ५५वाँ सर्ग, श्लोक-८७-९५)

इस प्रकार न जाने कितनी घटनाएँ चम्पापुरीके साथ जुड़ी हुई हैं, जिसका वर्णन विभिन्न पुराणों और कथा ग्रन्थोंमें मिलता है।

- भगवान श्री पार्श्वनाथका विहार और धर्मदेशना इस अंगदेशमें भी हुई थी।
- सुधर्मास्वामी भी केवलज्ञान अवस्थामें यहाँ पधारे थे।
- जम्बूस्वामी भी केवलज्ञान सह यहाँ पधारे थे।
- यहाँकी मूर्तियाँ व मन्दिर प्राचीन समयसे हैं।
- चम्पापुर क्षेत्र नाथनगरमें है। वह भागलपुरके बाहरी अंचलमें है, यहाँ धर्मशाला व मन्दिर हैं। यहाँ स्तूपनुमा या मीनारनुमा पचास फिट ऊँचे दो मानस्तंभ हैं। ये २२०० वर्ष प्राचीन माने जाते हैं। पहले चारों दिशामें चार मानस्तंभ थे। जिसमेंसे भयानक भूकम्पमें दो नष्ट हो गये। वर्तमानमें जो मानस्तंभ हैं वे फट गये हैं, जिनका जिर्णोद्धार कराया गया है। इसमेंसे पूर्ववाले मानस्तंभसे एक सुरंग १८० मील लम्बी सम्मेदशिखर मन्दिरके चन्द्रप्रभ टोंकको निकलती थी, वह इस भूकम्पमें धस गई है।

- इस मन्दिरके पीछे एक और मन्दिर है। इसमें एक प्रतिमा ईसाके पूर्व ५४१ वर्षकी है।
- सरकारी दफ्तरमें यह मन्दिर राधौपुर टेकरेमें ९०० वर्ष प्राचीनके रूपमें दर्ज है।
- चम्पानालेका प्राचीन मन्दिर था, वह भूकम्पमें नष्ट हो जानेसे वहाँसे डेढ़ मील दूरी पर ये मूर्तियाँ, इस नाथनगरके मन्दिरमें विराजमान कर दी गई थीं।
- यहाँकी जुंगीरा पहाड़ी पर प्राचीन शिलालेख व जैन तीर्थंकरोंके चिह्न मिलते हैं।
- यहाँ भागलपुरमें भी एक जिनमन्दिर है।
- भागलपुरसे उनचास कि.मी. दूरी पर मन्दारगिरि पर्वत है। यह सातसो फिट ऊँची छोटीसी पहाड़ी पर है। कहा जाता है कि भागलपुर यहाँ तक फैला हुआ था। यह मन्दारगिरि भागलपुरके आंगनका बगीचा था।
- भगवान श्री वासुपूज्यके एक गणधर 'मन्दर'का इसी मन्दारगिरि पर निर्वाण हुआ था।

यहाँ तलहटीमें धर्मशाला व मन्दिर हैं। आगे चलने पर एक पापहारिणी तलाब है। पहाड़ी पर प्राकृतिक कुण्ड भी हैं। पहाड़ीके शिखरपर दिगम्बर जिनमन्दिर है। यहाँ श्री वासुपूज्य भगवानके चरण भी हैं। मन्दिर १००० वर्ष या उससे भी प्राचीन है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने इस तीर्थकी वि.सं. २०१३ (ई.स. १९५७) व वि.सं. २०२३ (ई.स. १९६७)में ससंघ यात्रा की थी। यहाँ पर मंदिरमें एक लेंडी पीपलका वृक्ष है, पूज्य गुरुदेवश्रीने लेंडी पीपलके पेड़को देखकर भक्तोंको पीपलमें रही ६४ पहर चरपराई द्वारा आत्माकी शक्तिका परिचय कराया। पूज्य गुरुदेवश्रीने प्रथमबार यहाँके श्री वासुपूज्य भगवानका जन्माभिषेक किया था।

श्री सोनागिरिजी तीर्थक्षेत्र

सोनागिरि जिसे स्वर्णगिरि, श्रमणगिरि आदि भी कहते हैं, परम पावन सिद्धक्षेत्र है। यह मध्यप्रदेशके दतिया जिलेमें दतियासे रेलमार्ग द्वारा ग्यारह कि.मी. दूर पर अवस्थित है। पहाड़ीकी तलहटीमें सनावल नामक एक ग्राम है। यहीं सोनागिरि क्षेत्रका कार्यालय और धर्मशाला है। सेन्ट्रल रेल्वेकी ग्वालियर-झाँसी लाईन पर ग्वालियरसे इकसठ कि.मी. आगे सोनागिरि स्टेशन है, वहाँसे क्षेत्र पाँच कि.मी. है। स्टेशनसे क्षेत्र तक पक्की सड़क है।

इस सोनागिरि सिद्धक्षेत्रसे अंगकुमार अपरनाम नंगकुमार, अनंगकुमार आदि साढ़े पाँच करोड़ मुनि मोक्ष पधारे हैं।

यौधेय देशमें श्रीपुर नगरके नरेश अरिंजय और उसकी रानी विशालाके दो पुत्र थे—नंग और अनंग। दोनों कुमार रूप, गुण, बल, विद्या और बुद्धिमें अनुपम थे। उन्होंने गुरुके समीप थोड़े समयमें ही विविध विद्याओं और कलाओंमें निपुणता प्राप्त कर ली। एक बार मालव देशके अरिष्टपुर नगरके नरेश धनंजयके ऊपर तिलिंग देशके नरेश अमृतविजयने आक्रमण कर दिया। धनंजय महामाण्डलिक राजा था। उसके अधीन अनेक राजा थे। धनंजयको अमृतविजयकी योजनाका जैसे ही पता लगा, उसने अपने मित्र राजाओंको सेनासहित शीघ्र पधारनेके लिए विशेष दूतोंके द्वारा आमन्त्रण-पत्र भिजवा दिये। राजा अरिंजयके पास भी निमंत्रण-पत्र आया।

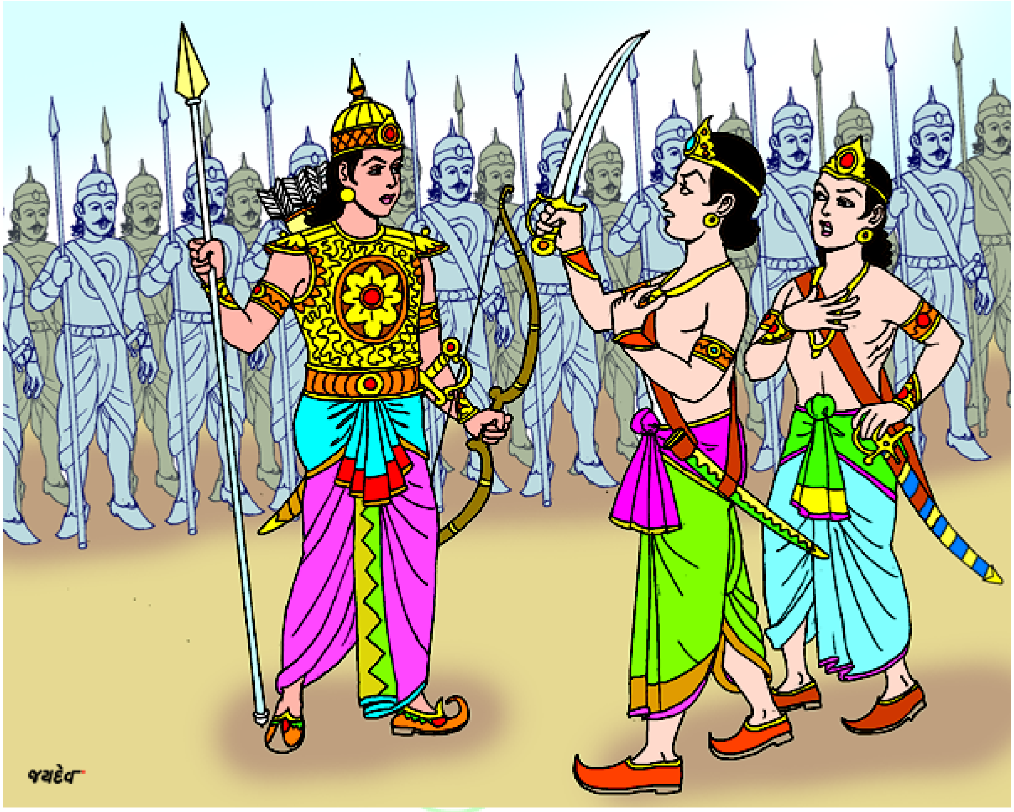

नंग-अनंग पुत्रों द्वारा युद्धमें जाते राजा अरिंजयको रोककर स्वयं युद्धमें जानेका प्रस्ताव

पत्र प्राप्त होते ही अरिंजय सेना लेकर प्रस्थानकी तैयारी करने लगे। जैसे ही नंग-अनंग दोनों कुमारोंने अपने पिताको युद्धके लिए प्रस्थान करते देखा, वे बोले– 'पिताजी! आप कहाँ जा रहे हैं?' पिताने उत्तर दिया—'मुझे आज धनंजयने युद्धमें सहायता देनेके लिए बुलाया है, वहीं जा रहा हूँ।' कुमार बोले—'पिताजी! हम लोगोंके रहते हुए युद्धके लिए आपका जाना हमारे लिए लज्जाकी बात है। आप यहीं रहकर राज्य-कार्य सम्हाले, हम लोग युद्धके लिए जायेंगे। पिताने उन्हें बहुत समझाया, किन्तु उनके आग्रह अनुरोधके आगे पिताको उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी और वे दोनों कुमार सेना सहित चल दिये। जब वे अरिष्टपुर पहुँचकर महाराज धनंजयसे मिले तो देवकुमारोंके समान रूपवान और बलवान् उन कुमारोंको देख वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उनका यथोचित सत्कार किया।

दूसरे दिन दोनों सेनाओंका भयानक युद्ध हुआ। जब तिलिंगराजने धनंजयकी

सेनाको रोंदना शुरू कर दिया, तब वे दोनों कुमार आयुध लेकर युद्ध-भूमिमें कूद पड़े। कुमार नंग तिलिंगराजसे जा भिड़ा और अनंगकुमारने उसके सामन्तोंका प्रतिरोध करना प्रारम्भ कर दिया। तिलिंगराज और उनके सामन्तोंकी उन कुमारोंके समक्ष एक न चली। उसने तिलिंगराजकी ध्वजा, छत्र, मुकुट, घोड़े, सारथी सबको मार गिराया और स्फूर्तिसे अपने हाथीसे प्रतिपक्षीके रथ पर कूदकर शत्रुको बन्दी बना लिया। शत्रुके बन्दी बनते ही शत्रुसेना भाग खड़ी हुई। युद्ध बन्द हो गया। महाराज धनंजयने नंग और अनंग कुमारोंका बड़ा सत्कार किया तथा शत्रुके साथ भी सहृदयताका व्यवहार किया। किन्तु तिलिंगराजको अपनी पराजय और पराभवके कारण मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया।

जब अरिष्टपुरमें विजयोत्सव मनाया जा रहा था, तभी अष्टम तीर्थंकर भगवान श्री चन्द्रप्रभका समवसरण नगरके बाहर आया। वनपालने आकर महाराज धनंजयको भगवान श्री चन्द्रप्रभके पधारनेके शुभ समाचार दिये। समाचार मिलते ही सभी राजा

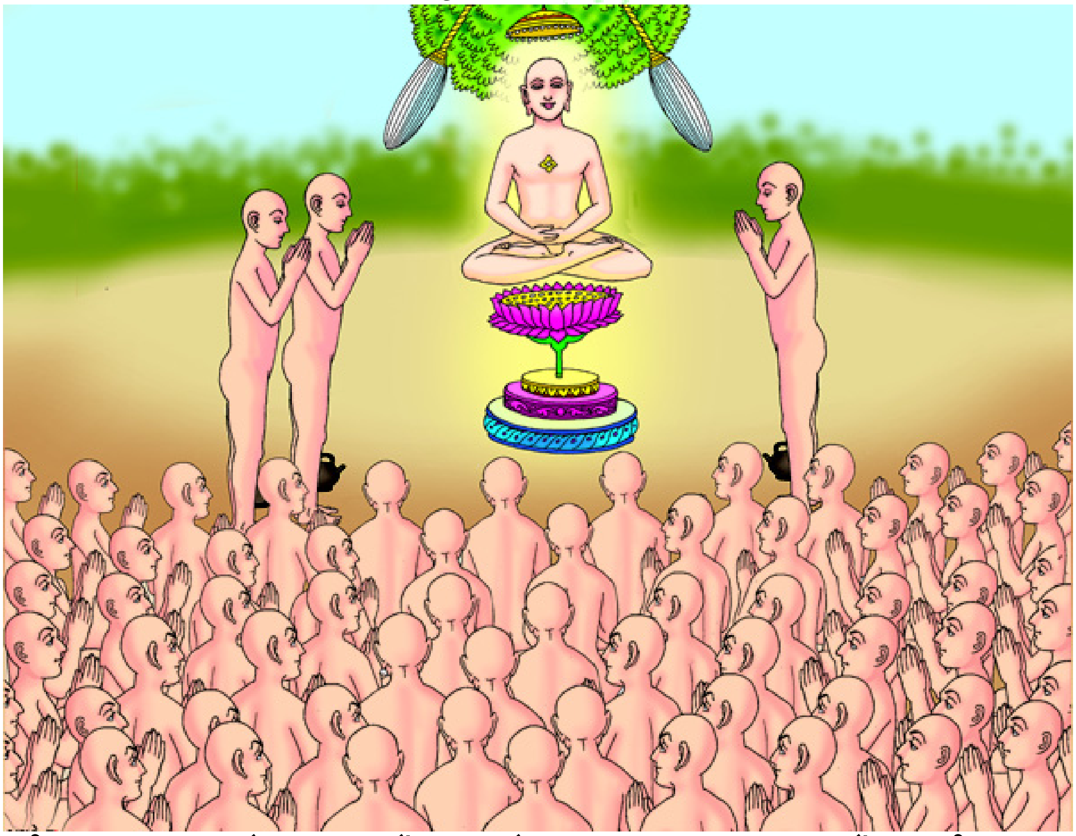

श्री चन्द्रप्रभ भगवानके समवसरणमें राजा, दो पुत्र व १५०० अन्य राजाओं द्वारा दीक्षा ग्रहण

और प्रजा भक्तिभावसे समवसरणमें पहुँचे और भगवानकी प्रदक्षिणा कर उनके चरणोंकी पूजा की। फिर भगवानका हितकारी उपदेश सुना, जिसे सुनकर धनंजय अमृतविजय, नंग, अनंग आदि १५०० राजाओंको वैराग्य हो गया। वे भगवानके समवसरणमें ही संयम धारण करके मुनि बन गये।

(२) एक बार मुनि नंग-अनंग कुमार अनेक मुनियोंके साथ विहार करते हुए पुनः स्वर्णगिरि पर पधारे। सभी मुनि वहीं पर उग्र तप करने लगे। तप करते हुए वहाँ पर मुनि नंगसेन, मुनि अनंगसेन आदि अनेक मुनियोंको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और कुछ समय पश्चात् इसी पवित्र पर्वतसे नंग-अनंग सहित अनेक मुनियोंको निर्वाण प्राप्त हुआ।

(३) उज्ञयिनी नरेश श्रीदत्तकी रानी विजयाके कोई सन्तान नहीं थी। एक दिन पुत्र न होनेके कारण रानी अत्यन्त दुःखी हो रही थी। तभी दो चारणऋद्धिधारी मुनि वहाँ पधारे। राजदम्पत्तिने सन्तान होनेके बारेमें उनसे पूछा तो मुनियोंने उत्तर दिया—

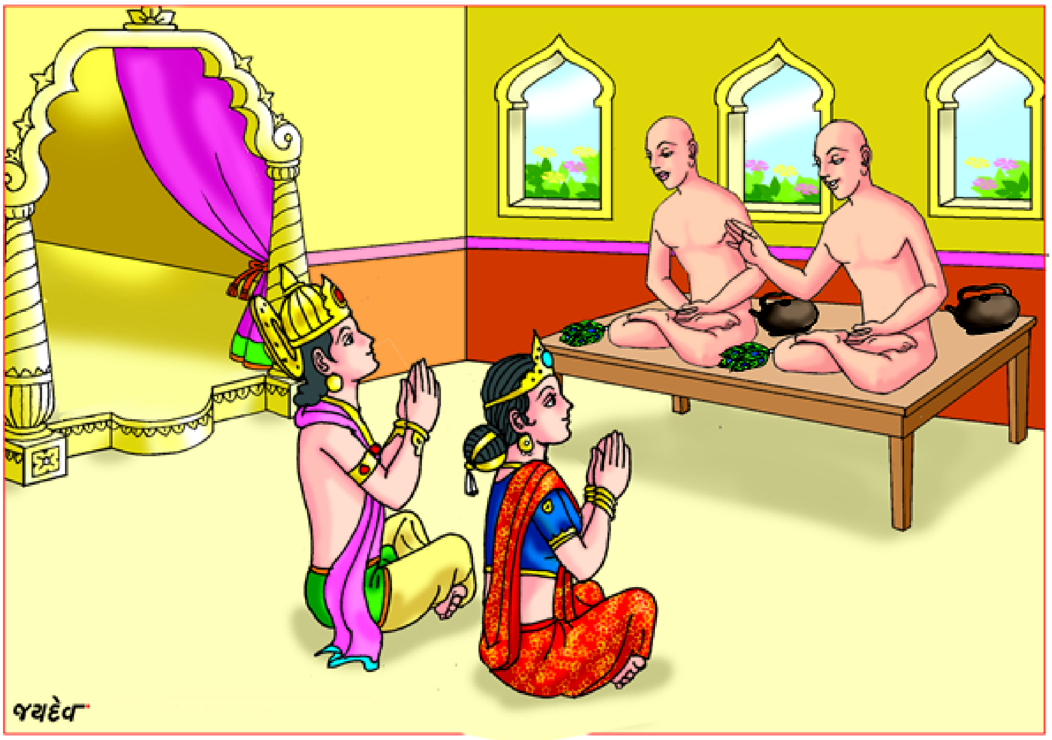

दो चारणऋद्धिधारी मुनिराज द्वारा भव्य राजा व राणी को उपदेश

'तुम यात्रासंघ निकालकर स्वर्णगिरिकी यात्रा करो, उस क्षेत्रकी पूजा करो तो तुम्हारे सन्तान होगी।' राजाने पत्र भेजकर अनेक मित्र राजाओंको स्वर्णगिरिके यात्रासंघमें सम्मिलित होनेका निमंत्रण दिया। यथासम्भव विशाल यात्रासंघ लेकर राजा श्रीदत्त वहाँसे चला।

जब यात्रासंघ स्वर्णगिरि पहुँचा, उस समय भगवान श्री चन्द्रप्रभका समवसरण वहाँ पर ही विराजमान था। राजा श्रीदत्त तथा अन्य यात्रियोंको भगवानके दर्शन करके अत्यन्त हर्ष हुआ। सबने भगवानके दर्शन किये, पूजन-स्तुति की और उनका दिव्य उपदेश सुना। उपदेश सुनकर अनेक लोगोंने वहीं मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली।

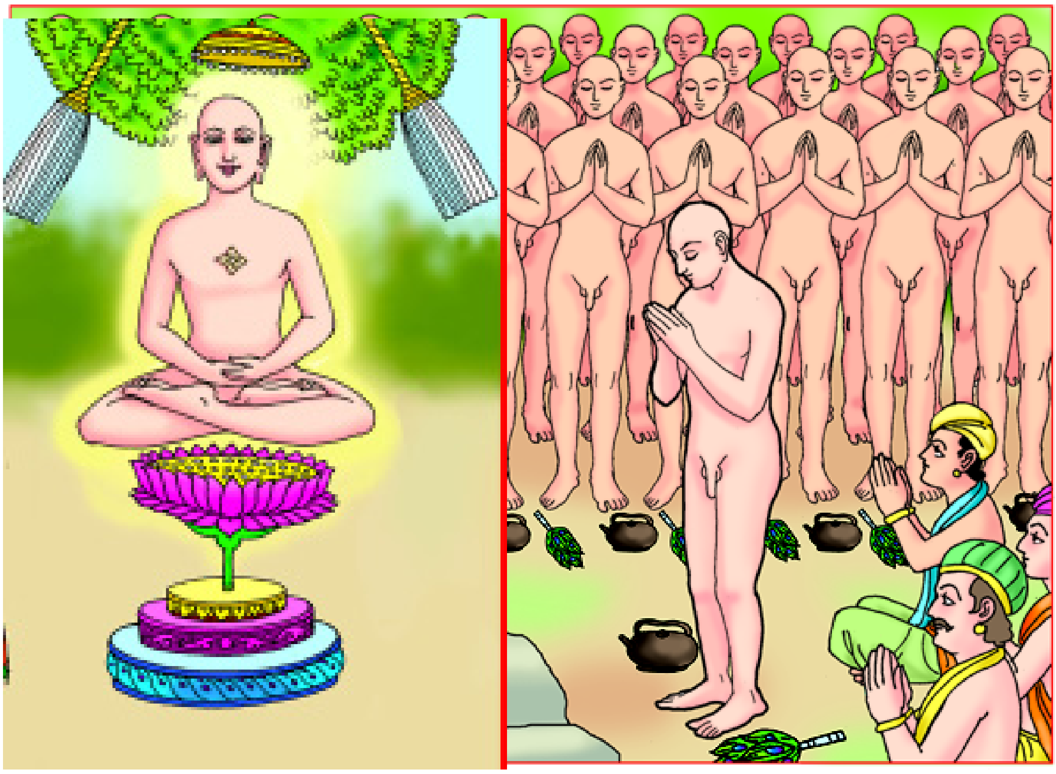

सोनागिरि पर चंद्रप्रभ भगवानके समवसरणमें यात्रासंघके कई लोगोंका दीक्षा ग्रहण

(४) इन मुनियोंके निर्वाणका समाचार सुनकर श्रीदत्तके पुत्र सुवर्णभद्रने भी अपने पिताकी तरह एक विशाल यात्रासंघ स्वर्णगिरिकी यात्राके लिए निकाला। इस यात्रासंघमें मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका थे, अनेक देशोंके राजा थे और हजारों

धार्मिक स्त्री-पुरुष सम्मिलित थे। यह यात्रासंघ सानंद यात्रा करके वापस आया। कुछ समय पश्चात् सुवर्णभद्रको भी संसारसे वैराग्य हो गया और उसने मुनिव्रत अंगीकार कर लिया। उन्होंने स्वर्णगिरि पर तपस्या करके पाँच हजार मुनियोंके साथ मुक्ति प्राप्त की।

इसप्रकार नंग, अनंग, चिन्तागति, पूर्णचन्द्र, अशोकसेन, श्रीदत्त, सुवर्णसेन आदि अनेक मुनियोंकी निर्वाणभूमि होनेके कारण यह क्षेत्र निर्वाण-क्षेत्र माना जाता है।

● ग्वालियरसे बस व्यवहार बहुत हैं। तलहटीमें कई मन्दिर व धर्मशालाएँ हैं। पहाड़ पर शिखरबद्ध सतत्तर मन्दिर, तेरह छतरियाँ हैं।

यहाँ मात्र दिगम्बर जैनोंके ही मन्दिर हैं। सब मन्दिरों पर क्रम नंबर लगा हुआ है। यहाँका मंदिर नंबर सत्तावन चन्द्रप्रभुका मन्दिर मुख्य मन्दिर है। यहाँ श्री चन्द्रप्रभु भगवानका समवसरण आया था। इस मन्दिरके निकट ही एक छत्रीमें मुनि नंगकुमार व मुनि अनंगकुमारके चरण हैं। ये चरण साढ़े पांच करोड़ मुनीन्द्रके प्रतीक हैं, जो यहाँसे निर्वाणको प्राप्त हुए हैं।

● यहाँ भट्टारकोंकी चार गद्दियाँ रही हैं।

● इस शिखर पर चारों ओर प्राचीन ध्वंसावशेष बिखरे पड़े हैं, पर मूर्ति शिलालेख परसे अनुमान है, कि ग्यारहवीं शताब्दीसे यह निर्माण शुरू हुआ है।

● इस क्षेत्रको सोनागिरि, श्रमणगिरि, सुवर्णगिरि, सवणागिरि, शवणागिरि, सिवणागिरि, सुवण्णगिरि आदि शब्दोंसे प्रयुक्त किया जाता है।

श्री मांगी-तुंगीगिरि तीर्थक्षेत्र

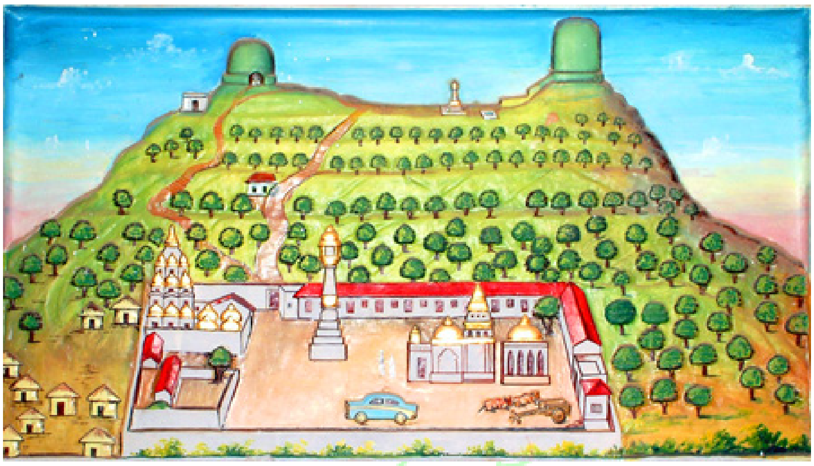

मांगी-तुंगीगिरिसे राम, हनुमान, सुग्रीव, गवय, गवाक्ष, नील, महानील आदि निन्यानवे करोड़ मुनियोंने निर्वाण प्राप्त किया है। निर्वाणभक्ति, निर्वाणकाण्ड आदि कई-कई स्थानोंमें ऐसा उल्लेख है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बातका उल्लेख करना आवश्यक है। आचार्योंने राम आदिकी निर्वाणभूमिका नाम तुंगीगिरि दिया है, कहीं भी मांगीतुंगी नाम नहीं दिया। इससे प्रतीत होता है, कि प्राचीन कालमें इस पर्वतका नाम तुंगीगिरि ही था। किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि मांगी और तुंगी दो भिन्न पर्वत हैं और मांगी शिखर सिद्धक्षेत्र नहीं है। वस्तुतः मांगी और तुंगी एक ही पर्वतके दो शिखर है और दोनों ही एक दूसरेसे मिले हुए हैं, इन शिखरोंके पृष्ठ भागमें मंगन और तुंगन नामक दो गाँव बसे हुए हैं।

● श्रीकृष्णका दाह संस्कार बलदेव द्वारा श्रीकृष्णकी मृत्युके छः मास बाद इस ही तुंगीगिरि पर हुआ था।

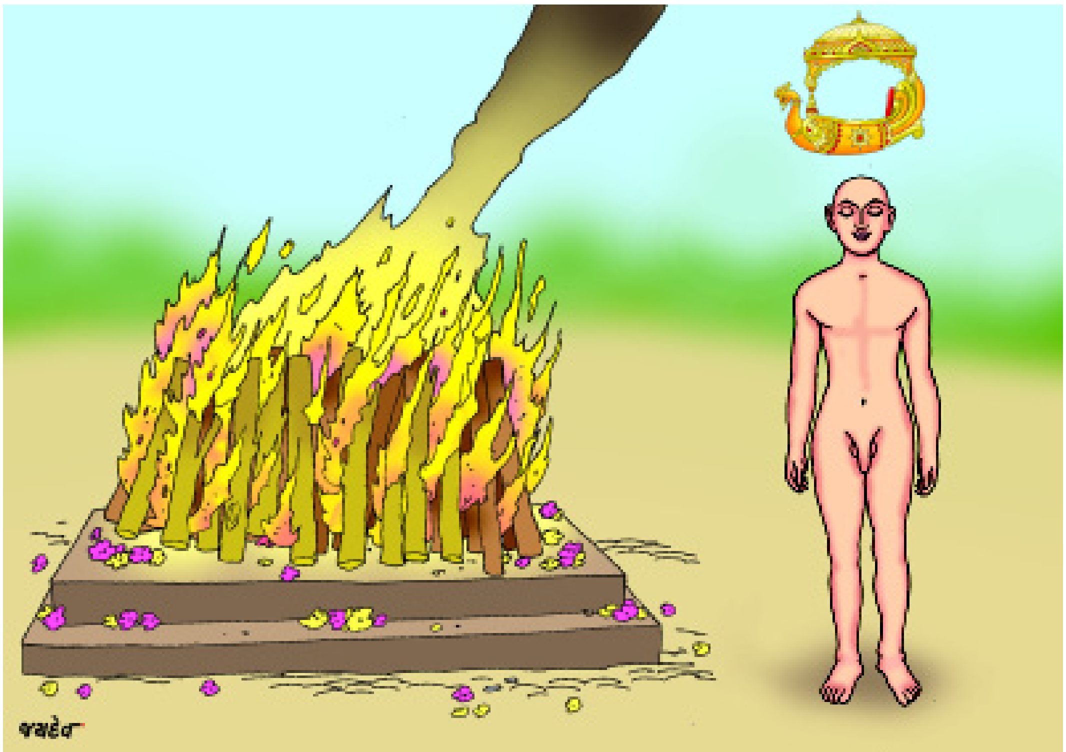

मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर राजा कृष्णका दाह संस्कार, बलदेव द्वारा आत्मध्यान व स्वर्गगमन

● बलदेवको अपने अनुज भाई कृष्णके प्रति आन्तरिक प्रेम होनेके कारण वे उनके वियोगसे वैराग्यवंत बन मुनिदीक्षा लेकर घोर तप करने लगे फिर भी आन्तरिक अनुजभाईका प्रेम उन्हें श्रेणीदशारूप शुद्धता प्राप्त करनेमें बाधक बना जिससे, इसी तुंगीगिरिसे वे पंचमस्वर्गमें ऋद्धिधारी देव हुए।

● अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी मुनि अवस्थामें इस वनमें पधारे होनेसे उनकी एक मूर्ति यहाँ पर मांगीगिरिकी एक गुफामें विराजमान है।

● क्षेत्रके निकट प्राचीनकालमें एक बहुत विशाल और सम्पन्न मुल्हेड़ नगर था। यहाँ जैनोंकी काफी बस्ती थी। जैनपुरा नामक यहाँ एक मोहल्ला भी था। उसमें तीनसौ दशाहुमड़के घर थे। इसी नगरमें जैन साहित्यकार भी बहुत हुए थे। अतः करीब दो शताब्दी पूर्व यह दशा हुमड़ोंका बड़ा नगर था।

● मुल्हेडमें जैनोंका अभाव हो जानेसे भट्टारकों द्वारा तलहटीमें दर्शन-पूजन हेतु एक जैन मंदिर बनवाया।

● तलहटीमें मन्दिरके पीछेके भागसे सीढ़ियों द्वारा पहाड़के दर्शन होते हैं।

● पहाड़ पर जिनेन्द्र प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं, जो इनकी प्राचीनतासे दर्शकोंको मोहित करती हैं। यहाँ पर बलराम मुनिकी पीठ ही उनके वैराग्यकी अतिशयताको सूचित करती है, क्योंकि अनुज भैयाके बिछुड़ जाने पर उन्होंने समग्र संसारसे मुँह मोड़ लिया था।

● पहाड़ी पर तुंगीगिरिकी गुफाओंकी मूर्तियाँ पाँचवीं-छठवीं शताब्दीकी हों ऐसा प्रतीत होता है। मूर्तियोंकी शिल्पकारितासे यह प्रतीत होता है कि गुप्तकालके पूर्वकी ये मूर्तियाँ हो।

● तलहटीमें दो-तीन मन्दिर हैं।

● कहा जाता है कि देवों द्वारा यह तीर्थ पूज्य होनेसे तुंगी शिखर पर अश्रुतपूर्व वाद्योंकी तुमुल सुमधुर ध्वनि कई बार कई दिनों तक सुनी गई है।

ऊपर जिन मांगी और तुंगी शिखरोंका वर्णन किया गया है, वस्तुतः वहाँ गुफाएँ और मूर्तियाँ पर्वतकी चोटियों पर नहीं हैं। चोटियाँ वहाँसे सम्भवतः दो-ढाईसौ फूट ऊपर होंगी। उन चोटियों पर जानेका कोई सुगम मार्ग नहीं है। शायद इन चोटियों पर जानेका किसीने प्रयत्न भी नहीं किया। ऐसी दशामें यह जिज्ञासा और कुतूहल होना स्वाभाविक था, कि इन दुर्गम चोटियोंके ऊपर क्या है। सम्भवतः इसी जिज्ञासावश कुछ वर्ष पूर्व कार्तिक सुदी पूनमको क्षेत्रके मेले पर एक साहसीक आदिवासी युवक मांगी शिखरकी चोटी पर चढ़ गया। उसने विविध वर्णके पुष्प तोड़कर बरसाये। थोड़ी देर बाद वह वहाँसे उतर आया। आकर उसने बड़ी अद्‌भुत बाते बतायीं। उसने बताया, कि चोटी पर अनेक वृक्ष और पुष्पवाले पौधे हैं। वहाँ गुफाएँ हैं, निर्मल जलके कुण्ड बने हुए हैं तथा वहाँ चरण बने हुए हैं। उससे चोटी पर अधिक शोध-खोज करनेका आग्रह किया गया तो उसने पंचमीके प्रातःकाल चोटी पर चढ़कर वहाँ ध्वजा फहरानेका वचन दिया। तदनुसार वह चतुर्थीको आकर पंचमीको प्रातःकाल चोटी पर चढ़ा। वह अपने साथ जैन ध्वज, रस्सी, इंची टेप ले गया। ऊपर जाकर उसने अपनी रस्सी द्वारा मोटे रस्सेको खींचा। तब उस मोटे रस्सेके द्वारा एक अन्य युवककी सहायतासे जो बादमें चढ़ा था, बाईस फुट लम्बे लोहेके पाईपको खींचा। उन्होंने

पाईपको रस्सी द्वारा एक ऊँचे पेड़से बाँधकर उस पर जैन ध्वज लहराया। उस समय पर्वत पर तथा तलहटीमें सैंकडो लोग मौजूद थे। फिर उन्होंने मांगी शिखरकी पैमाइश की। उन्होंने नीचे आकर बताया, कि मांगीकी चोटी उत्तरसे दक्षिणकी ओर ३०० फुट लम्बी तथा पूर्वसे पश्चिमकी ओर पचहत्तर-फूट चौड़ी है।

इसके पश्चात् ढींगडा ग्रामवासी पवल्या नामक एक आदिवासी युवक कई वर्ष तक मेलेके अवसर पर मांगी और तुंगीकी चोटीयों पर चढ़ता रहा। वह प्रायः रात्रिके समय चढ़ता था। वह कार्तिक सुदी-चौदशको ऊपर चढ़ता था। वह अपने साथ दस-पंद्रह किलो घी, रुई और सात बड़े दीपक ले जाता था। वह मांगीकी चोटी पर दीपक जलाता था। तुंगीकी चोटी पर वह ध्वजा फहराता था। कभी-कभी तो वह इन चोटियों पर आठ-आठ दिन रहता था। उससे कई बार आग्रह किया गया कि तुंगीकी चोटीकी शोध-खोज करके बताये कि चोटी पर क्या है। किन्तु सदा ही वह रहस्यपूर्ण उत्तर देता था कि अभी मुझे बतानेका आदेश नहीं है, जब आदेश मिल जायेगा तो मैं स्वयं बता दूंगा। किन्तु यह अवसर कभी नहीं आया क्योंकि जो तीन युवक डोंगरिया देवकी गुफामें जाकर पुनः कभी नहीं लौटे, उनमें यह पवल्या भी था।

इसके पश्चात् फिर अन्य एक आदिवासी युवकने मांगीकी चोटी पर चढ़नेका साहस किया। वह युवक प्रतिवर्ष कार्तिक सुदी चौदसको मांगीकी चोटी पर चढ़ता है और वहाँ नयी ध्वजा फहराता है। वह तीन वर्षसे इसी प्रकार ध्वजारोहण कर रहा है। उल्लेखनीय बात यह है कि इन दोनों चोटियों पर जानेका कोई मार्ग नहीं है। यहाँ अनगढ़ शिलाओंके सहारे ही जाया जा सकता है। जरा-सी ही चूक प्राणघातक सिद्ध हो सकती है। इनमें तुंगीकी चोटी तो एकदम सपाट सीधी है। कहा जाता है कि इसके ऊपर तो बन्दर तक नहीं चढ़ सकता। कुछ आदिवासीयोंकी सूचनाके आधार पर यह भी ज्ञात हुआ है कि मांगी और तुंगी शिखरोंके पृष्ठ भागमें जंगलमें कुछ जैन मूर्तियाँ पड़ी हैं। इन शिखरोंके चारों ओर पर्वतों और जंगलोंमें शोध-खोजकी आवश्यकता है। सम्भव है, यहाँ कुछ पुरातत्त्व और नवीन रहस्यों पर प्रकाश पड़ सके।

मांगी-तुंगी जानेके लिए नासिकसे सटाणा, ताहराबाद होकर क्षेत्र पर जाया जाता है। गुजरातसे जानेवाले नवापुर से धूलिया, पीपलनेर, होकर ताहराबाद होकर क्षेत्रको जाते हैं।

श्री मुक्तागिरि (मेंढागिरि) सिद्धक्षेत्र

मुक्तागिरि निर्वाणक्षेत्र अथवा सिद्धक्षेत्र है। ग्रन्थोंमें इस क्षेत्रके कई नाम मिलते हैं। संस्कृत ग्रन्थोंमें मेंढ़कगिरि नाम दिया गया है। संस्कृत निर्वाणभक्तिमें सिद्धक्षेत्रोंमें इसकी गणना करते हुए 'द्रोणीमति प्रबलकुण्डलमेढ्रके च' यह पद दिया गया है। 'बोधपाहुड'की सत्तावीसवीं गाथाकी श्रुतसागरी टीकामें भी इसका नाम मेंढ्रगिरि दिया है। प्राकृत निर्वाणभक्तिमें मेंढागिरि नाम मिलता है। भट्टारक गुणकीर्तिने मराठी भाषाकी तीर्थवंदनामें 'मेढगिरि आहूढ़ कोडि मुनि सिद्धि पावले त्यां सिद्धासि नमस्कारू माझा' द्वारा मेंढगिरिके साढ़े तीन करोड़ सिद्धिप्राप्त मुनियोंको नमस्कार किया है। किन्तु ज्ञानसागर, सुमतिसागर, चिमणा पण्डित, सोमसेन, जयसागर आदिने भाषा ग्रन्थोंमें इस क्षेत्रका नाम मुक्तागिरि दिया है। इससे लगता है, कि इस क्षेत्रका प्राचीन नाम मेंढ्रगिरि रहा होगा, बादमें इसे मुक्तागिरि कहने लगे।

इन नामोंके सम्बन्धमें एक किवदन्ती बहुत प्रचलित है। प्राचीनकालमें एक मुनि मुक्तागिरि पर्वतके जलप्रपातके निकट तपस्या कर रहे थे। जलप्रपात ऊपर एक मेंढ़ा चरता हुआ आया और पैर फिसल जानेसे मुनिके निकट आ गिरा। मुनिने मरणासन्न मेंढ़ाको णमोकार मन्त्र सुनाया। वह शान्त भावोंसे मरकर देव हुआ। उस देवने इस पर्वत पर मोतियोंकी वर्षा की। वर्षा स्थल चालीसवें मन्दिरके निकट बताया जाता है।

इसलिए उस मन्दिरको मेंढसगिरि कहते हैं और मुक्ताओंकी वर्षा हुई थी, इसलिए इस क्षेत्रको मुक्तागिरि कहते हैं।

● यहाँसे तीन करोड़ मुनि मोक्ष गये हैं। यह अचलपुर (एलिचपुर) के ईशान कोणमें तेरह कि.मी. दूरी पर है।

● मुक्तागिरि पर जिनालयोंकी दो पंक्ति हैं।

● यहाँसे मैंढ़ाका उद्धार हुआ था।

● यहाँ की अतिशयताकी कई अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं।

● यहाँ श्रेणिक बिम्बसारने गुफा-मन्दिरका निर्वाण कराया था।

● यह क्षेत्र पूर्णतः दिगम्बर जैन समाजके आधीन है।

● एक बार ऐल राजा अपनी धर्म-सभामें बैठा हुआ था। इस सभामें दूर-दूरसे विभिन्न धर्मोंके प्रतिनिधि भाग लेने आये हुए थे। राजाने वाद-विवादमें एक मुस्लिम फकीरको पराजित कर दिया। फकीरने अपनी पराजयसे क्षुब्ध होकर यह समाचार गजनीके तत्कालीन बादशाह रहमानके पास पहुँचा दिया। उस समय रहमानका निकाह हो रहा था और वह दुल्हेके वेषमें बैठा हुआ था। वह फौजें लेकर तत्काल चल दिया और ऐलिचपुर पर धावा बोल दिया। राजा ऐलको उसके अभियानका समाचार पहले ही मिल चुका था, अतः वह पहलेसे सावधान था। उसने बहुमूल्य हीरे, जवाहरात और जैन मन्दिरोंकी मूल्यवान् मूर्तियाँ राजधानीसे हटाकर मुक्तागिरि क्षेत्रकी गुफाओंमें छिपा दी। दोनों सेनाओं ओर दोनों वीरोंमें भयानक युद्ध हुआ। हजारों शत्रु मारे गये। अन्तमें लड़ते-लड़ते दोनों वीर भी वीरगतिको प्राप्त हुए।'' रहमान शादी छोड़कर दुल्हेके वेशमें लड़ने आया था, इसलिए उसका नाम दुल्हा रहमान पड़ गया। जिस स्थान पर शत्रु सेना मारी गई उस स्थानका नाम गंज शहीद पड़ गया, जो ऐलिचपुरमें अभी भी है। जहाँ ऐल, श्रीपाल और अब्दुल रहमान मारे गये, वह स्थान बहरम है जो खरपीसे दो मील दूर है।

राजा एलने कई स्थानों पर जैन-मन्दिरों और गुफा-मन्दिरोंका निर्माण कराया था।

उसने अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ, मुक्तागिरि आदि क्षेत्रों पर मन्दिरोंका निर्माण कराया तथा एलौराकी गुफाओंका निर्माण कराके अत्यन्त कलात्मक ढंगसे जिन-मूर्तियाँ उत्कीर्ण करायी थीं।

मुक्तागिरिमें राजा ऐलने मूल्यवान हीरे-जवाहरात और मूर्तियाँ कहाँ छिपाये थे, यह आज तक ज्ञात नहीं हो सका। मन्दिर क्रमांक बीस पश्चिमी पहाड़ी पर है। यह अन्य मन्दिरोंकी अपेक्षा प्राचीन है। इसे पुराना मुक्तागिरि कहते हैं। सौ फुट ऊँचा जल प्रपात इस मन्दिरके बिलकुल निकटसे गिरता है। इस मन्दिरके सभामण्डपके बीचमें एक पाषाण पर शतरंज बना हुआ है। सम्भवतः और स्थानों पर भी ऐसे शतरंज बने हुए हैं। लोगोंका विश्वास है कि राजा ऐलके छिपाये हुए धनके संकेत चिह्नोंके रूपमें ये शतरंज बनाये गये होंगे।

पर्वत पर चढ़ने उतरनेका अलग-अलग मार्ग है। पहाड़ पर सातवीं-नववीं शताब्दीकी पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमा है। पहाड़ पर कुल बावन मन्दिर हैं।

तलहटीमें दो मन्दिर व धर्मशाला हैं।

यह क्षेत्र मध्यप्रदेशके बैतुल जिलेमें है। अमरावतीसे परतवाड़ा–खरपी से तीन कि.मी.की दूरी पर है। इस क्षेत्रका पता : पो. परतगांव, जि. अमरावती (महाराष्ट्र) गिना जाता है।

श्री चूलगिरि (बावनगजा) सिद्धक्षेत्र

चूलगिरि सिद्धक्षेत्रसे इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण तथा अनेक मुनि मुक्त हुए हैं।

यहाँ भगवान श्री आदिनाथकी बावन हाथ ऊँची मूर्ति है। इसे वृटदेव कहा जाता है। जिसे बावनगजाजी (अर्थात् अट्ठासी फिट) भी कहते हैं। मूर्तिको अर्ककीर्ति राजाने एक ही पाषाणमें उकेराई थी। संवत १३८०में बावन संघपतियोंने यहाँ अनेक बिम्बोंकी प्रतिष्ठायें कराई थीं।

आचार्य रविषेणकृत 'पद्मपुराण'में रावणकी मृत्यु होनेके बादकी एक महत्त्वपूर्ण घटनाका वर्णन आया है। एकदिन छप्पन हजार आकाशचारी मुनि संघके साथ अनन्तवीर्य मुनिराज पधारे। उसी दिन रात्रिके समय उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। देवोंने आकर केवलज्ञानकी पूजा की और गन्धकुटिकी रचना की। समाचार मिलते ही रामचंद्र, लक्ष्मण, वानरवंशी, ऋक्षवंशी और राक्षसवंशी सब लोग उनके दर्शनोंको आये। भगवान श्री अनंतवीर्य केवलीका उपदेश सुनकर इन्द्रजीत, मेघनाद, कुम्भकर्ण, मारीच आदिने लंकाके उसी कुसुमायुध नामक उद्यानमें केवलीके समीप मुनि-दीक्षा ले ली। कुछ समय पश्चात् वे विभिन्न देशोंमें विहार करने लगे।

किन्तु इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण आदिने किस स्थानसे मोक्ष प्राप्त किया, इसका कोई

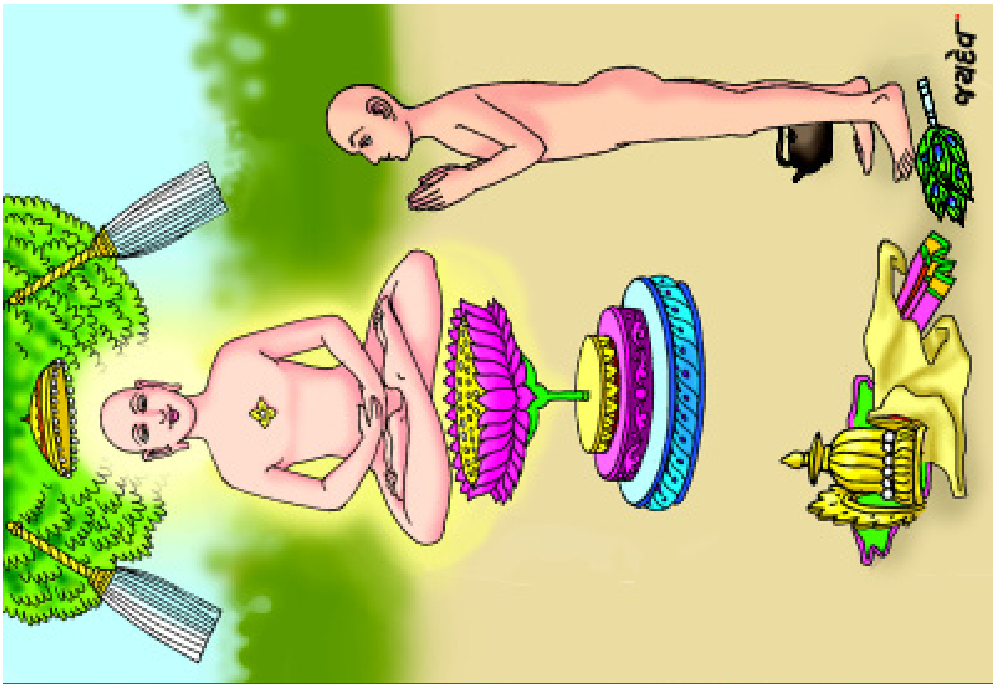

भगवानके पास इन्द्रजीत आदिका
दीक्षा ग्रहण

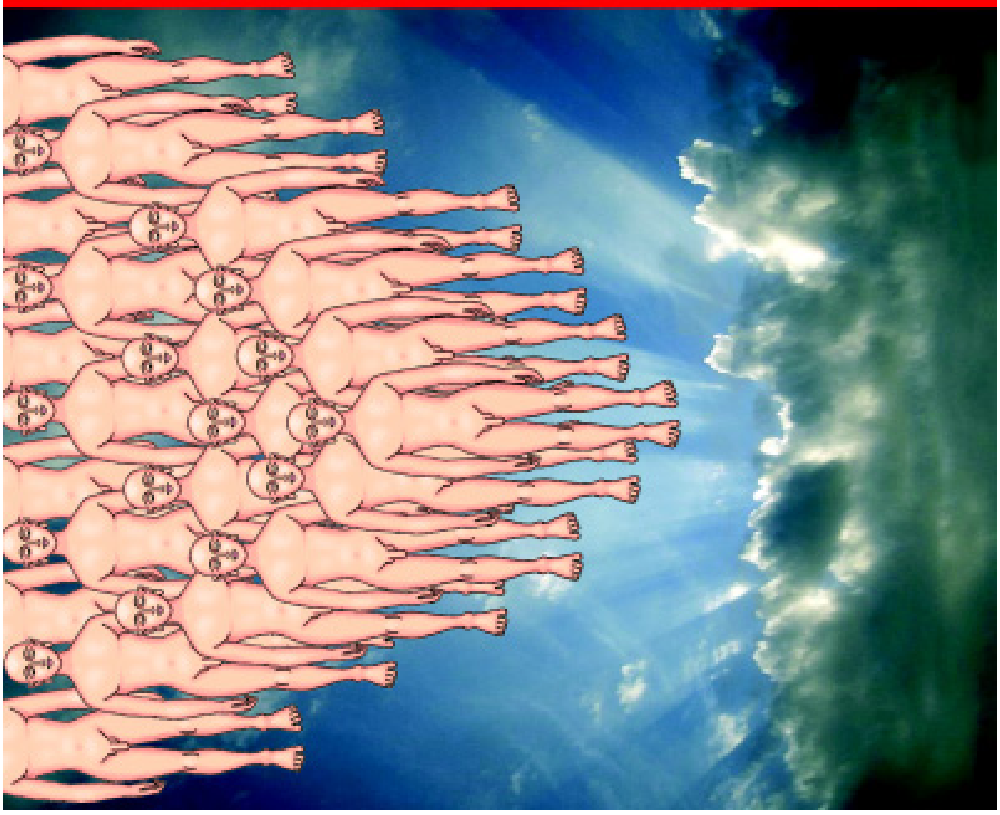

चूलगिरि पर आकाशमार्गसे ५८००० मुनियोंके संघ
सह अनन्तवीर्य मुनिराजका आगमन

उल्लेख पद्मपुराणकारने नहीं किया। साधारण-सा संकेत दिया है कि विन्ध्यवनकी महाभूमिमें जहाँ इन्द्रजीतके साथ मेघवाहन मुनिराज विराजमान रहे, वहाँ मेघरथ नामक तीर्थ बन गया तथा रजोगुण और तमोगुणसे रहित महामुनि कुम्भकर्ण योगी नर्मदाके जिस तीर पर निर्वाणको प्राप्त हुए थे, वहाँ पिठरक्षत नामका तीर्थ प्रसिद्ध हुआ।

चूलगिरि सतपुडा शैल मालाओंकी सबसे ऊँची शैल है। यहाँ पर भारतकी सबसे विशाल मूर्ति विराजमान है। प्राचीनकालमें एक हाथको ही कच्चा गज माननेकी परम्परा रही होनेसे यह प्रतिमा बावन हाथ या बावन गज या बावनगजाजी कही जाती है। इस प्रतिमाके लिये कहीं कोई लेख प्रतिष्ठाकार या शिल्पकारका कुछ भी नामोनिशान नहीं है। प्रतिमाकी प्राचीनता इसके बारेमें लिखे उल्लेखोंके आधारसे यह स्पष्ट होता है, कि यह प्रतिमा तेरहवीं शताब्दी या उसके पूर्वकी होगी क्योंकि सर्वप्रथम इसका जिक्र तेरहवीं शताब्दीके मदनकीर्तिके उल्लेखमें है। उसके पूर्वका कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

चूलगिरि बड़वानी नगरमें पड़ता है। अतः इसे बड़वानीजी भी कहते हैं। यहाँ विशाल जिनमंदिर, धर्मशाला आदि हैं। यह राणापुरा मुहल्लेकी खाईके पश्चिमकी ओर है। इसके अलावा भी अन्य विशाल जिनमन्दिर हैं, छात्रावास आदि हैं।

सुवर्णपुरीमें समवसरणकी रचनाके समय पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके जातिस्मृतिज्ञानानुसार भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव भाववाही मुद्रामें सीमंधर भगवानको वन्दन करते हुए, भावनामात्रसे प्रतिष्ठित किये हैं, वैसी ही आबेहूब प्रतिमा यहाँ पहाड परके ऊपरवाले जिनमन्दिरमें विराजमान की गई है। यह प्राचीन प्रमाण है, कि भगवान श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेवकी प्रतिमा भी विराजमान होती है।

बड़वानीसे चूलगिरि सात कि.मी. है। तलहटीमें धर्मशाला व जिनमन्दिर है। पहाड़ पर आदिनाथकी विशाल प्रतिमा उपरान्त पहाड़ी पर और मन्दिर भी हैं। ऊपर चढ़नेके लिए सीड़ियाँ हैं। पहाड़की चोटी पर चूलगिरि मन्दिर है। यही सिद्धभूमि है। यहाँसे इन्द्रजीत, मुनि कुम्भकर्ण आदि अनेक मुनि मुक्त हुए हैं। तलहटीमें उन्नीस मन्दिर, एक मानस्तंभ और एक छतरी है।

यहाँ बड़वानीसे सात कि.मी., इन्दौर, मऊ, खण्ड़वा, सनावद, धूलिया और दोहद आदिसे बसे चलती -हैं। यहाँसे नजदीक कुक्षी से तालनपुर दर्शनीय है।

चौथे भवके पूर्व दृढ़ प्रतिज्ञक
भगवान श्री नेमिनाथका जीव

इसी जम्बूद्वीपके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें सीतोदा नदीके उत्तर तट पर सुगन्धिला नामके देशमें एक सिंहपुर नामका नगर है उसमें अर्हदास नामका राजा राज्य करता था। उसकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता था। दोनों ही पूर्वभवमें संचित पुण्यकर्मके उदयसे उत्पन्न हुए कामभोगोंसे संतुष्ट रहते थे। इस प्रकार दोनोंका समय सुखसे बीत रहा था। किसी एक दिन रानी जिनदत्ताने श्री जिनेन्द्र भगवानकी अष्टाह्निका सम्बन्धी महापूजा करनेके बाद आशा प्रकट की कि मैं कुलके तिलकभूत पुत्रको प्राप्त करूँ'। ऐसी आशा कर वह बड़ी प्रसन्नतासे रात्रिमें सुखसे सोयी।

अच्छे व्रत धारण करनेवाली रानीने उसी रात्रिको सिंह, हाथी, चन्द्रमा और

निद्रामें रानीको स्वप्न व नव मास बाद बलवान पुत्रका जन्म

लक्ष्मीका अभिषेकरूप शुभ स्वप्न देखे, स्वप्न देखनेके बाद ही कोई पुण्यात्मा उसके गर्भमें अवतीर्ण हुआ और नौ माह बीत जानेपर रानीने बलवान् पुत्र उत्पन्न किया। उस पुत्रके जन्म समयसे लेकर उसका पिता शत्रुओं-द्वारा अजेय हो गया था। इसलिए भाई-बान्धवोंने उसका नाम अपराजित रखा। वह रूप आदि गुणरूपी संपत्तिके साथ-साथ यौवन अवस्था तक बढ़ता गया इसलिए देवोंमें इन्द्रके समान सुन्दर दिखने लगा।

तदनन्तर किसी एक दिन राजाने वनपालके मुखसे सुना कि मनोहर नामके उद्यानमें विमलवाहन नामक तीर्थंकर पधारे हुए हैं। सुनते ही वह भक्तिसे प्रेरित हो

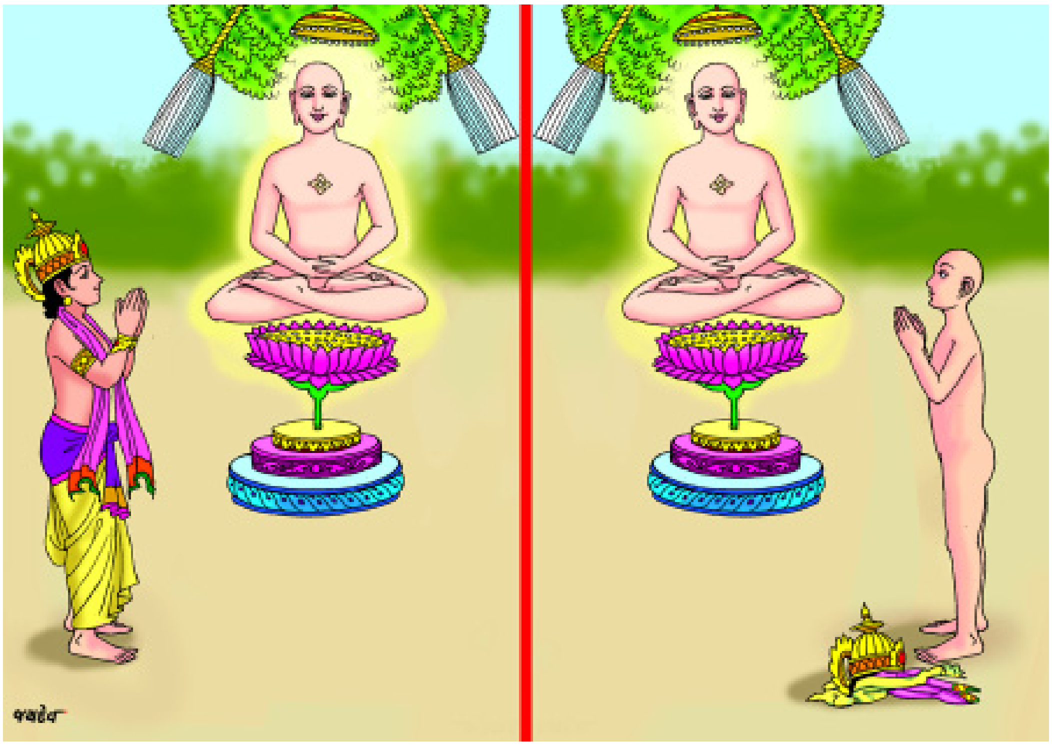

तीर्थंकर विमलवाहनके समवसरणमें राजा अर्हदासका जाना–पूजा करना

तीर्थंकर विमलवाहनके पास राजा अर्हदासकी दीक्षा ग्रहण

अपनी रानियों तथा परिवारके लोगोंके साथ वहाँ गया। वहाँ जाकर उसने बार-बार प्रदक्षिणाएँ दी, हाथ जोड़े, प्रणाम किया, गन्ध, पुष्प अक्षत आदिके द्वारा अच्छी तरह पूजा की तथा धर्मरूपी अमृतका पान किया। यह सब करते ही अकस्मात् उसकी भोगोंकी इच्छा शान्त हो गयी जिससे उसने अपराजित पुत्रके लिए सप्त प्रकारकी विभूति प्रदान कर पाँच सौ राजाओंके साथ श्रेष्ठ तप धारण कर लिया।

कुमार अपराजितने भी शुद्ध सम्यग्दृष्टि होकर अणुव्रत आदि श्रावकके व्रत ग्रहण किये और फिर जिस तरह अमरावतीमें प्रवेश करता है उसी तरह लक्ष्मीसे युक्त हो अपनी राजधानीमें प्रवेश किया। उसने स्वराष्ट्र तथा परराष्ट्र सम्बन्धी चिन्ता तो अपने मंत्रियों पर छोड़ दी और स्वयं शास्त्रोक्त मार्गसे धर्म तथा काममें लीन हो गया।

किसी एक समय उसने सुना कि हमारे पिता के साथ श्री विमलवाहन भगवान गन्धमादन पर्वत पर मोक्षको प्राप्त हो चुके हैं। यह सुनते ही उसने प्रतिज्ञा की कि 'मैं श्री विमलवाहन भगवानके दर्शन किये बिना भोजन नहीं करूँगा।' इस प्रतिज्ञासे उसे आठ दिनके उपवास हो गये। तदनन्तर इन्द्रकी आज्ञासे यक्षपतिने आकर समवसरणस्थित विमलवाहन तीर्थंकरका तादृश स्वरूप बनाया, जिनके दर्शन-पूजन कर पश्चात् राजाने भोजन किया।

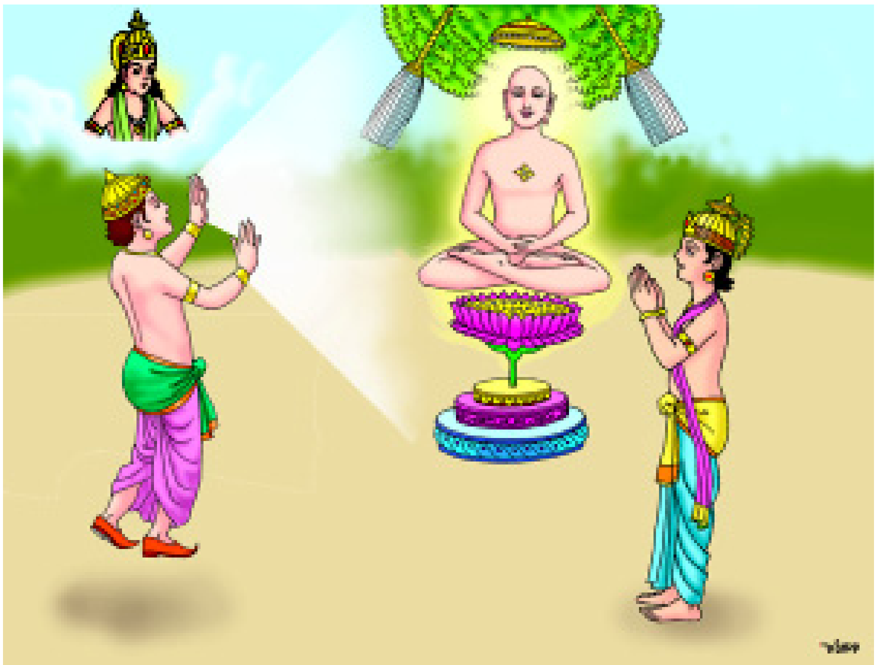

विमलवाहन तीर्थंकरका मोक्ष जान, राजा अपराजित द्वारा उनके दर्शन बादमें भोजनकी प्रतिज्ञा, आठ दिन तक बितने पर यक्ष द्वारा विमलवाहनका समवसरण बनाना व राजा अपराजित द्वारा दर्शन

अपराजित राजा धर्मध्यान, संयम व तप द्वारा जीवन व्यतीत करके चतुर्थभवमें श्री नेमिनाथ तीर्थंकर बनकर पंचकल्याणकों सहित गिरनारकी पाँचवीं टोंकसे मोक्ष पधारेंगे।

चौथे पूर्वभवमें समाधिमरण धारण करते भगवान श्री नेमिनाथका जीव

भगवान श्री नेमिनाथके पूर्वभव

४ अपराजित राजा

३ अच्युतेन्द्र

२ सुप्रतिष्ठित राजा (तीर्थंकर प्रकृतिका बंध)

१ अहमिन्द्र

भगवान नेमिनाथ

किसी एक दिन वसन्त ऋतुकी अष्टाह्निकाके समय बुद्धिमान राजा अपराजित जिन-प्रतिमाओंकी पूजा कर उनकी स्तुति कर वहीं पर बैठे हुए थे और धर्मोपदेश कर रहे थे।

राजा अपराजित द्वारा जिनमंदिरमें पूजा

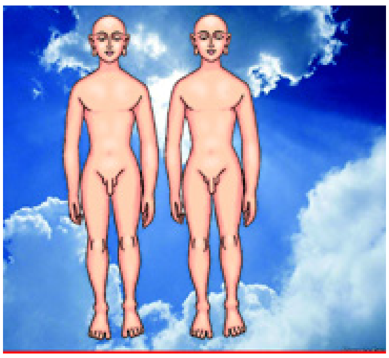

उसी समय आकाशसे दो चारणऋद्धिधारी मुनिराज आकर वहीं पर विराजमान हो गये। जिनेन्द्र भगवानकी स्तुतिके समाप्त होने पर राजाने बड़ी विनयके साथ उनके सन्मुख जाकर उनके चरणोंमें नमस्कार किया, धर्मोपदेश सुना और तदनन्तर कहा कि हे पूज्य! मैंने पहले कभी आपको देखा है।

उन दोनों मुनियोंमें जो ज्येष्ठ मुनि थे वे कहने लगे कि हाँ राजन्! ठीक कहते हो, हम दोनोंने आपको देखा है। परन्तु कहाँ देखा है? यह स्थान मैं कहता हूँ सुनो! पुष्करार्ध द्वीपके पश्चिम सुमेरुकी पश्चिम दिशामें जो महानदी है उसके उत्तर तट पर एक गन्धिल नामक महादेश है। उसके विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें सूर्यप्रभ नगरका स्वामी राजा सूर्यप्रभ राज्य करते थे। उसकी स्त्रीका नाम धारिणी था। उन दोनोंके बड़ा पुत्र चिन्तागति, दूसरा मनोगति और तीसरा चपलगति इस प्रकार तीन पुत्र हुए थे। धर्म, अर्थ और कामके समान इन तीनों पुत्रोंसे वे दोनों माता-पिता सदा प्रसन्न रहते थे। सो ठीक ही है, क्योंकि उत्तम पुत्रोंसे कौन नहीं संतुष्ट होते?

उसी विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें अरिन्दमपुर नगरके राजा अरिंजय रहते थे। उनकी अजितसेना नामकी रानी थी और दोनोंके प्रीतिमती नामकी सती पुत्री हुई थी। प्रीतिमतीने अपनी विद्यासे चिन्तागतिको छोड़कर समस्त विद्याधरोंको मेरु पर्वतकी तीन प्रदक्षिणा देनेमें जीत लिया था। तत्पश्चात् चिन्तागति उसे अपने वेगसे जीतकर कहने लगा, कि तू रत्नोंकी मालासे मेरे छोटे भाईको स्वीकार कर। चिन्तागतिके वचन सुनकर प्रीतिमतीने कहा, कि जिसने मुझे जीता है उसके सिवाय दूसरेके गलेमें मैं यह माला नहीं डालूंगी। इसके उत्तरमें चिन्तागतिने कहा कि, चूँकि तूने पहले उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छासे मेरे छोटे भाईयोंके साथ गतियुद्ध किया था। अतः तू मेरे लिये त्याज्य है। चिन्तागतिके यह वचन सुनते ही वह संसारसे विरक्त हो गयी और उसने विवृत्ता नामकी आर्यिकाके पास जाकर उत्कृष्ट तप धारण कर लिया। यह देख बहुतसे लोगोंने विरक्त होकर दीक्षा धारण कर ली।

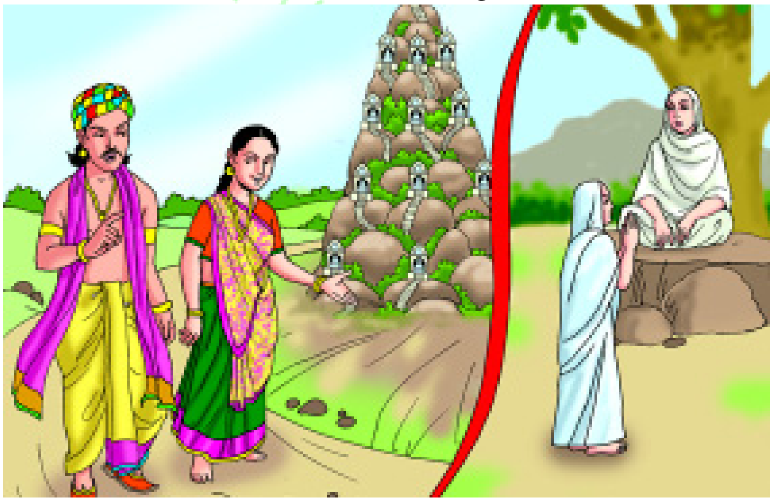

चिन्तागति विद्याधर व प्रीतिमती विद्याधरकी पुत्रीका मेरुकी प्रदक्षिणा व बीचमें वार्तालाप व प्रीतिमतीका आर्यिकाव्रत ग्रहण

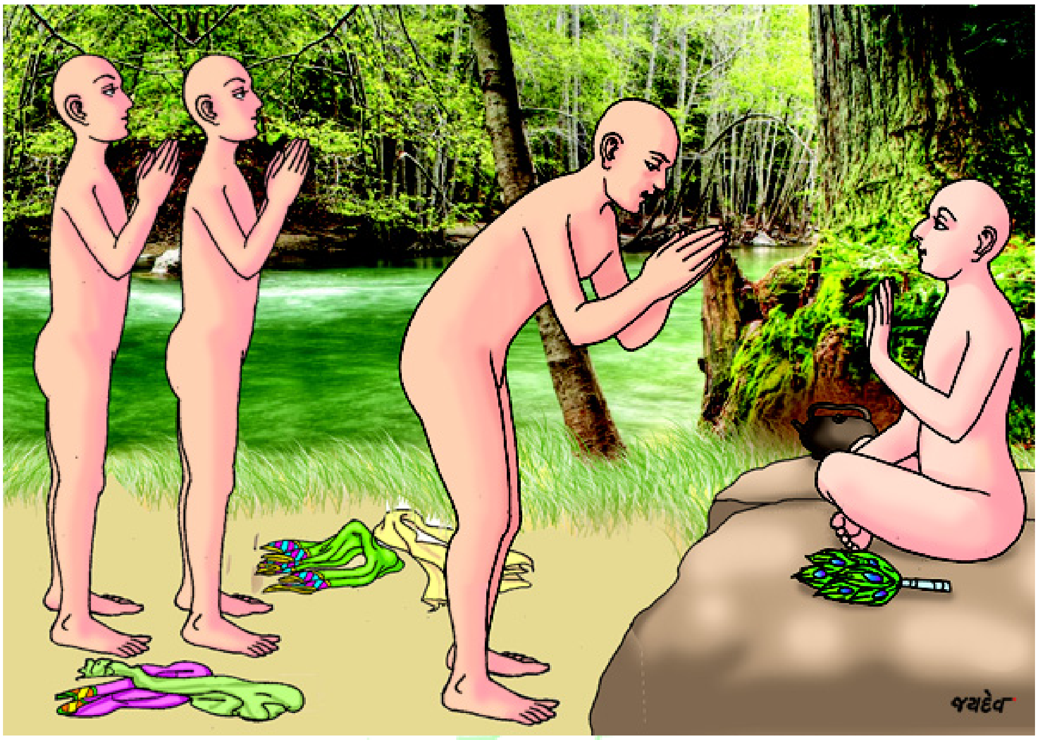

प्रीतिमतिको आर्यिकाव्रत अंगीकार करना देख चिन्तागति व दोनों भाईका दीक्षा ग्रहण

कन्याका यह साहस देख जिसे वैराग्य उत्पन्न हो गया है ऐसे चिन्तागतिने भी अपने दोनों छोटे भाईयोंके साथ दमवर नामक गुरुके पास जाकर संयम धारण कर लिया और आठों शुद्धियोंको पाकर तीनों भाई चौथे स्वर्गमें सामानिक जाति के देव हुए। वहाँ सात सागरकी उत्कृष्ट आयु पर्यन्त अनेक भोगोंका अनुभव कर च्युत हुए। दोनों छोटे भाईयोंके जीव जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रसम्बन्धी पुष्कलावती देशमें जो विजयार्ध पर्वत है, उसकी उत्तर श्रेणीमें गगनवल्लभ नगरके राजा गगनचन्द्र और उनकी रानी गगनसुंदरीके हम दोनों अमितमति तथा अमिततेज नामक पुत्र उत्पन्न हुए हैं। हम दोनों ही तीनों प्रकारकी विद्याओंसे युक्त थे। एक दिन हम दोनों पुण्डरीकिणी नगरी गये। वहाँ श्री स्वयंप्रभ तीर्थंकरसे हम दोनोंने अपने पिछले जन्मका वृत्तांत पूछा तब श्री स्वयंप्रभ भगवानने सब वृत्तांत ज्योंका त्यों कहा। तदनन्तर हम दोनोंने पूछा कि हमारा बड़ा भाई इस समय कहाँ उत्पन्न हुआ है? इसके उत्तरमें भगवानने कहा कि वह सिंहपुर नगरमें उत्पन्न हुआ है, अपराजित उसका नाम है, और स्वयं राज्य करता हुआ शोभायमान है।

यह सुनकर हम दोनोंने उन्हीं श्री स्वयंप्रभ भगवानके समीप संयम धारण कर लिया और तुम्हें देखनेके लिये तुम्हारे जन्मान्तरके स्नेहसे हम दोनों यहाँ आये हैं। हे भाई! अब तू पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए समस्त भोगोंका उपभोग कर चुका है। अब तेरी आयु केवल एक माहकी शेष रह गयी है इसलिए शीघ्र ही आत्मकल्याणका विचार कर। राजा अपराजितने यह बात सुनकर दोनों मुनिराजोंकी वन्दना की और कहा, कि आप यद्यपि निर्ग्रन्थ अवस्थाको प्राप्त हुए हैं तो भी जन्मान्तरके स्नेहसे आपने मेरा बड़ा उपकार किया है। यथार्थमें आप ही मेरे हितेच्छु हैं। तदनन्तर दोनों मुनिराज प्रसन्न होते हुए अपने स्थान पर चले गये। इधर राजा अपराजितने अपना राज्य विधिपूर्वक प्रीतिंकर कुमारके लिए दिया, अष्टाह्निक पूजा की, भाईयोंको विदा किया

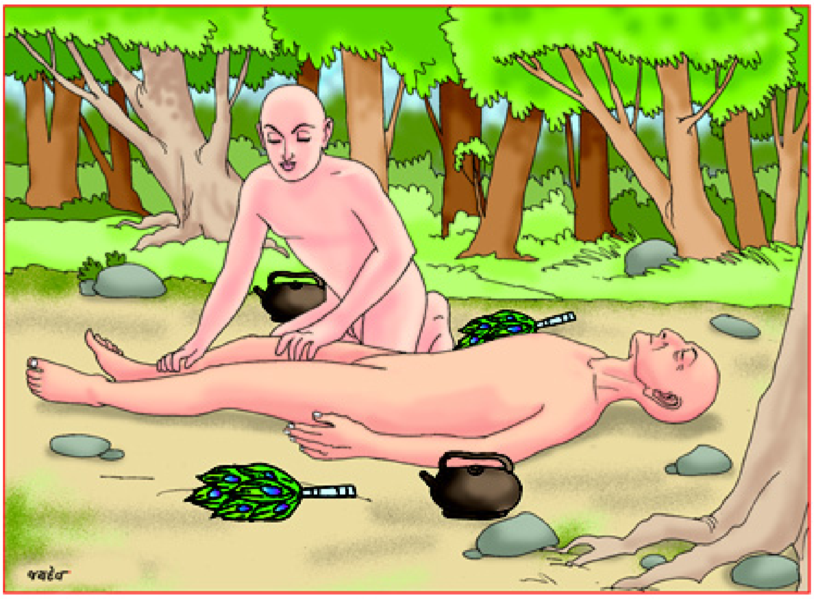

राजा अपराजित द्वारा संन्यास ग्रहण

और स्वयंने प्रायोपगमन नामका संन्यास धारण कर लिया। संन्यासके प्रभावसे वे सोलहवें स्वर्गके सातंकर नामक विमानमें बाईस सागरकी आयु वाले बड़ी ऋद्धियोंके धारक अच्युतेन्द्र हुये।

पश्चात् वहाँसे चयकर तीसरे भवमें जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके २२वें तीर्थंकर भगवान श्री नेमिनाथ बनकर गिरनारकी पाँचवीं टोंकसे मोक्ष जायेंगे।

भगवान श्री नेमिनाथका वैराग्य

जम्बूद्वीप भरतक्षेत्रके कुशार्थ देशमें शौर्यपुर नामका एक नगर है। उसमें किसी समय शूरसेन नामका राजा राज्य करता था। यह राजा हरिवंशरूपी आकाशमें सूर्यके समान चमकता था। कुछ समय बाद शूरसेनके शूरवीर नामका पुत्र हुआ, जो सचमुच शूरवीर था। उसने समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर ली। उस शूरवीरकी स्त्रीका नाम धारिणी था। धारिणीके गर्भसे अन्धकवृष्टि और नरवृष्टि नामके दो पुत्र हुए। अन्धकवृष्टिकी रानीका नाम सुभद्रा था। उसके काल-क्रमसे समुद्रविजय, स्तिमित सागर, हिमवान, विजय, विद्वान, अचल, धारण, पूरण, पूरिताच्छींच्छ अभिनन्दन और वसुदेव—ये दश पुत्र तथा कुन्ती और माद्री नामकी दो कन्याएँ हुईं। समुद्रविजय आदि नौं भाईयोंके क्रम से शिवादेवी, धृतीश्वरा, स्वयंप्रभा, सुनीता, सीता, प्रियवाक, प्रभावती, कलिंगी और सुप्रभा आदि नौ सुन्दर स्त्रियाँ थीं। वसुदेवने अनेक देशोमें विहार किया था, इसलिए उन्हें अनेक भूमिगोचरी तथा विद्याधर राजाओंने अपनी-अपनी कन्याएँ भेंट की थीं–उसके बहुत-सी स्त्रियाँ थीं। उन सबमें देवकी मुख्य थी।

अन्धकवृष्टिकी पुत्री कुन्ती और माद्रीका विवाह हस्तिनापुरके कौरववंशी राजा पाण्डुके साथ हुआ था। राजा पाण्डुके कुन्तीदेवीके गर्भसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्रीदेवीके गर्भसे नकुल और सहदेव—इस तरह पाँच पुत्र हुए थे। वे राजा पाण्डुकी संतान होनेके कारण 'पाण्डव' नामसे प्रसिद्ध हुए। समुद्रविजय आदि दश भाईयोंमें और पाण्डु आदिमें खूब स्नेह था।

कुछ समय बाद छोटे भाई वसुदेवके बलराम और श्रीकृष्ण दो पुत्र हुए। जो बड़े ही पराक्रमी थे। श्रीकृष्णने मल्लयुद्धमें मथुराके दुष्ट राजा कंसको मार दिया जिससे उसकी स्त्री जीवद्ययशा विधवा होकर रोती हुई अपने पिता जरासंधके पास राजगृही नगरी चली गई। उस समय जरासंघ तीन-खंडका राजा तथा अर्धचक्री कहलाता था।

(१) श्रीकृष्ण द्वारा कंसको मल्लयुद्धमें हराना (२) कंसकी पत्नी द्वारा पिता जरासंघको कृष्णकी शिकायत
(३) जरासंघ पुत्र अपराजितको भी कृष्ण द्वारा मल्लयुद्धमें हराना ।

पुत्रीकी दयनीय अवस्था देख कर उसने श्रीकृष्ण आदिको मारनेके लिए अपने पुत्र अपराजितको भेजा। पर वासुदेव श्रीकृष्णने अपराजितको युद्धमें ३४६ बार हराया। अन्तमें अपराजित हार कर लौट गया। फिर कुछ समय बाद जरासंधका दूसरापुत्र कालयवन श्रीकृष्णको मारनेके लिए आया तब समुद्रविजय आदिने आपसमें परामर्श किया, कि अभी श्रीकृष्णकी आयु छोटी है इसलिये समर्थ शत्रुसे युद्ध नहीं करना अच्छा है ऐसा सोचकर शौर्यपुरसे विन्ध्यवटी पार करते हुए समुद्रकी ओर आगे बढ़े। इधर कालयवन भी उसका पीछा करता हुआ विन्ध्यवटी पहुँचा। तब वहाँ समुद्र-विजय आदिकी कुलदेवी एक बुढ़ियाका रूप बनाकर बैठ गयी तथा विद्या-बलसे अग्नि जलाकर हा समुद्रविजय! हा वसुदेव! हा श्रीकृष्ण! आदि विलाप करने लगी। जब कालयवनने रोनेका कारण पूछा तब उसने कहा कि ''मैं बूढी धाय हूँ। श्रीकृष्ण आदि पुत्र, स्त्रियोंके साथ शत्रुके भयसे भागे जा रहे थे। अचानक प्रचण्ड अग्निके बीचमें पड़कर वे सब असमय ही भस्म हो गये।'' बुढ़ियाके वचन सुनकर कालयवन शत्रुको मरा जानकर हर्षित होता हुआ वापस चला गया।

इधर राजा समुद्रविजय आदि समुद्रके किनारे पहुँचे तब उनके पास रहनेके लिए

समुद्रमें घोड़े पर १२ योजन जाना वहाँ एक सुंदर नगरीकी रचना

कोई भवन वगैरह नहीं था। इस संकटसे मुक्त होनेके लिए श्रीकृष्णने आठ दिन उपवास किया और सिद्धात्माओंका ध्यान किया। श्रीकृष्णकी आराधनासे प्रसन्न होकर 'नैगम' नामक देवने प्रकट होकर कहा—'अभी तुम्हारे पास एक घोडा आयेगा। तुम उस पर सवार होकर समुद्रमें बारह योजन तक चले जाना। वहाँ पर तुम्हारे लिए एक मनोहर नगर बन जायेगा।' इतना कहकर देव चला गया और उसके स्थान पर सुन्दर घोडा खड़ा हो गया। श्रीकृष्ण उस पर सवार होकर समुद्रमें बारह योजन तक चले गये। पुण्यके प्रतापसे समुद्रका वह भाग स्थलमय हो गया। वहीं पर इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरदेवने एक मनोहर नगरीकी रचना कर दी। उसके बड़े-बड़े गोपुर देख समुद्र-विजय आदिने उसका नाम द्वारावती (द्वारिका) रख लिया। राजा समुद्रविजय अपने छोटे भाईयों तथा श्रीकृष्ण आदि पुत्रोंके साथ द्वारिकामें सुखपूर्वक रहने लगे।

भगवान श्री नेमिनाथके जीव जो पूर्व भवमें अहमिन्द्र थे और उनकी आयु छः माह शेष रह गयी तभी द्वारिकापुरीमें राजा समुद्रविजय और महारानी शिवादेवीके घर पर देवोंने रत्नोंकी वर्षा करनी शुरू कर दी। इन्द्रकी आज्ञा पाकर अनेक देवकुमारियाँ आ कर शिवादेवीकी सेवा करने लगीं। इन सब बातोंसे अपने घरमें तीर्थंकरकी उत्पत्तिका निश्चय कर समस्त हरिवंशी हर्षसे फूले न समाते थे।

तदनन्तर अहमिन्द्र स्वर्गसे चयकर समुद्रविजय राजा व शिवादेवी रानीके यहाँ नेमिनाथके रूपमें जन्मा। कुटुम्बके लोगों व नगरजनोंको आनन्द देते कामदेवकी भांति नेमिनाथ भगवान युवान हुए।

एक समय शरद-ऋतुमें महाराज श्रीकृष्ण अपने समस्त अन्तःपुरवासियोंके साथ वनमें जल-क्रीड़ा करनेके लिए गये थे। भगवान नेमिनाथ भी उनके साथ थे। श्रीकृष्णकी सत्यभामा आदि स्त्रियाँ सरोवरकी ओर दृष्टि किये नेमिनाथके ऊपर जल उछालती हुई, उनसे अनेक श्रृंगारमय वचन कहने लगीं। नेमिनाथने चतुराईपूर्वक उनके व्यंगभरे वचनोंका यथोचित उत्तर दिया। जल-क्रीड़ाकर चुकनेके बाद भगवान श्री नेमिनाथने सत्यभामा से कहा—'तुम मेरी इस गीली धोतीको धो डालो।' तब सत्यभामा क्रोधसे भौंहे टेढ़ी करती हुई बोली–'आप वे श्रीकृष्ण नहीं हैं, जिन्होंने नाग-शैय्या पर चढ़कर लीला-मात्रमें 'शारंग' नामका धनुष चढ़ाया था और दशों दिशाओंको गुञ्जा देनेवाला

'पांचजन्य' शंख बजाया था। यदि धोती धुलानेका शौक हो, तो किसी राजकुमारीको क्यों नहीं ले आते?'

सत्यभामाके ताने भरे वचन सुनकर नेमिनाथको कुछ क्रोध आ गया, जिससे वे वहाँसे लौटकर आयुधशालामें गये और सबसे पहले नाग-शैया पर चढ़कर 'शारंग' धनुष्यकी प्रत्यंचा चढ़ाई, फिर दशों दिशाओंको गुंजा देनेवाला शंख बजाया। श्रीकृष्ण राज्य-सम्बन्धी कुछ कार्योंके कारण इन सबसे पहले ही नगरीमें लौट आये थे। जिस समय नेमिनाथने धनुष चढ़ाकर शंख बजाया था, उस समय वे 'कुसुमचित्रा' नामक सभामें बैठे हुए कुछ आवश्यक कार्य कर रहे थे। ज्यों ही उनके कानोंमें शंखकी गंभीर ध्वनि पहुँची, त्यों ही वे चकित होकर आयुधशालाकी ओर दौड़े।

वहाँ उन्होंने भगवान श्री नेमिनाथको क्रोधयुक्त देखकर मधुर शब्दोंमें उन्हें शान्त किया और पासमें ही खड़े किसी पुरुषसे उनके क्रोधका कारण पूछा। उसने सत्यभामा आदिके साथ नेमिनाथकी जलक्रीड़ा सम्बन्धी वाद-विवादका वृत्तांत कह सुनाया और बादमें नेमिनाथके प्रति सत्यभामाके मर्मभेदी वचन भी कह सुनाये। यह सुनकर श्रीकृष्ण कुछ मुस्कुराये। उन्होंने सत्यभामाके अभिमान पर बहुत रोष प्रकट किया और अपने गुरुजन समुद्रविजय, वसुदेव आदिके सामने नेमिनाथके विवाहका प्रस्ताव रक्खा। जब समुद्रविजय आदिने हर्ष सहित अपनी-अपनी सहमती दे दी, तब श्रीकृष्णने जूनागढ जाकर उग्रवंशी राजा उग्रसेनकी रानी जयावतीके गर्भसे उत्पन्न हुई कन्या राजमतीका विवाह कुमार नेमिनाथसे करनेके लिए प्रार्थना की। राजा उग्रसेनने सहर्ष स्वीकार कर लिया, जिससे दोनों ओर विवाहकी तैयारीयाँ होने लगीं।

उन्हीं दिनोंमें श्रीकृष्णके हृदयमें पुनः शंका उत्पन्न हुई कि नेमिनाथ बहुत ही

बलवान हैं। उस दिन इनसे मुझे हार माननी पड़ी थी और जिस पर मेरे सिवाय अन्य कोई चढ़नेका साहस नहीं करता, उस नागशैय्या पर चढ़कर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर तो उन्होंने असम्भव को सम्भव कर दिया। अब इसमें कोई सन्देह नहीं, कि कुछ दिनोंके बाद ये मेरे राज्य पर अवश्य ही अधिकार करेंगे। इस तरह लोभ-रूपी पिशाचके फन्देमें पड़कर श्रीकृष्णके मनमें उथल-पुथल मच गई। उन्होंने सोचा–'नेमिनाथ स्वभावसे ही विरक्त पुरुष हैं'—विषय-वासनाओंसे उनका मन हमेशा ही दूर रहता है। न जाने क्यों इन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया? अब भी यदि वैराग्यका थोड़ा-सा कारण उत्पन्न हो जाय, तो वे विरक्त हो जावेंगे। इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे ये गृहत्याग कर दिगम्बर मुनि बन जावें।' ऐसा सोचकर श्रीकृष्णने एक गुप्त षडयंत्र रचा।

श्रीकृष्णने कुमार नेमिनाथकी बारात जिस मार्गसे निकलनेवाली थी वहाँ मायावी बाड़में मायावी पशुओंको बंद करवा दिया। बंधनमें पड़े पशु करुण चित्कार करने लगे।

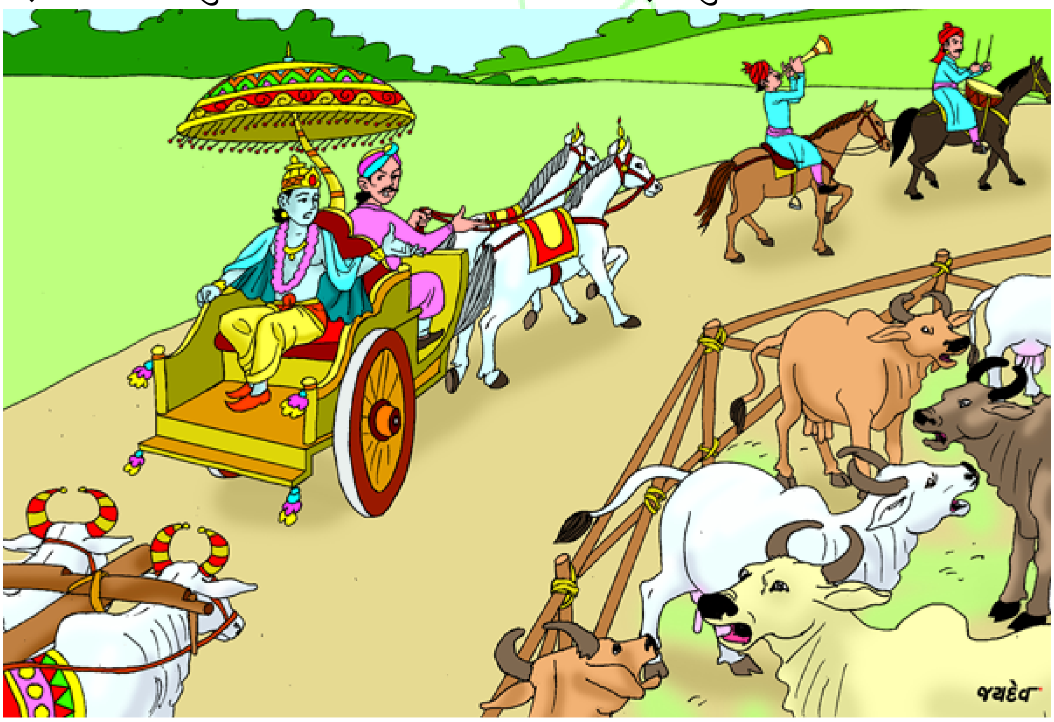

जूनागढ आती श्री नेमिकुमारकी बारात, रास्तेमें पशुकी करुण चित्कार सुनकर सारथीसे पूछते श्री नेमिकुमार

तभी शादीके लिये रथमें बैठकर जाते हुए आजन्म वैरागी कुमार नेमिनाथने पशुओंकी करुण चित्कार सुन सारथीसे कहा--सारथी रथ रोको! इस शादीके प्रसंगमें अपशकुन कैसा? अरे! इस भयंकर भवार्णवसे छूटनेके लिए मेरा जन्म है। उसमें मैं पंथ भूल गया.... अरे! इस संसारके अनंत दुःखका अंत करना वही मेरे जीवनका ध्येय था मैं क्यों भटक गया? इस विश्वमें कोई भी मेरा शत्रु या मित्र नहीं है। मेरा तो सर्वस्व मेरा आत्मा है। मैं तो अभी इसी समय शूरवीर साधकोंका अंतरपथ साधने वन-जंगलमें जाऊँगा।

कुमार नेमिनाथके इन विचारोंने शादीका सारा वातावरण शोक व वैराग्यमें बदल दिया। सगे सम्बन्धीयोंने बहुत समझाया परंतु अटल निश्चयी कुमार वैराग्यके समुद्रमें डूबकर बारह भावना भाने लगे। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और उनके दीक्षा लेनेके विचारोंका समर्थन किया। बस फिर क्या था? बारात बीचमें ही भंग हो गई। समुद्रविजय, वसुदेव, बलराम, श्रीकृष्ण आदि कोई भी उन्हें अपने दृढ़-निश्चयसे विचलित नहीं कर सके। वहीं पर देवोंने आकर उनका दीक्षाभिषेक किया और उन्होंने महा-मनोहर 'देवकुरु' नामकी एक पालकी बनाई। भगवान श्री नेमिनाथ उस पालकी पर सवार होकर रेवतक (गिरनार) पर्वत पर पहुंचे और वहाँ पर सहस्राम्रवनमें एक हजार राजाओंके साथ उसी दिन—श्रावण शुक्ला षष्ठीके दिन चित्रा नक्षत्रमें संध्याके समय दीक्षित हो गये। दीक्षा लेते ही उन्हें मनःपर्ययज्ञान प्रकट हो गया था। दीक्षा लेते समय भगवान श्री नेमिनाथकी आयु तीनसौ वर्षकी थी।

इधर जब राजा उग्रसेनके घर नेमिनाथकी दीक्षा लेनेका समाचार पहुँचा, तो वे बहुत ही दुःखी हुए। उस समय राजकुमारी राजमतीकी जो अवस्था हुई थी, उसका वर्णन इस तुच्छ लेखनीके द्वारा नहीं किया जा सकता। माता-पिताके बहुत समझाने पर भी उसने किसी दूसरे वरसे विवाह करना स्वीकार नहीं किया। वह शोकसे व्याकुल हो कर गिरनार पर्वत पर मुनिराज नेमिनाथके पास पहुँची और अनेक मधुर वचनोंसे उनका चित्त विचलित करनेका उद्यम करने लगी। परंतु जैसे प्रलयंकारी पवनसे मेरु पर्वत विचलित नहीं होता, वैसे ही राजमतीके वचनोंसे नेमिनाथका मन विचलित नहीं हुआ। अन्तमें उनके वैराग्यमय जीवन देख वह भी आर्यिका हो गई।

भगवान श्री नेमिनाथका अन्य राजाओंके साथ ध्यान

भगवान श्री नेमिनाथने जिस जिस तपको धारण किया था। उसी तपको एक हजार राजाओंने भी भगवान श्री नेमिनाथके साथ धारण किया था। उस समय मानरहित भगवानको सूर्यका आताप सन्तप्त नहीं कर सका था, क्योंकि इन्द्रके द्वारा लगाये हुए छत्रसे वह रुक गया था अथवा छत्ररूपी जल वहाँ पड़ रहा था उसके प्रभावसे सूर्यजन्य आताप उन्हें दुःखी करनेमें समर्थ नहीं हो सका था। उस समय क्रोधरहित इन्द्रिय-दमनसे युक्त अपने आपके द्वारा शिरपर बद्ध कुटिल केशोंको उखाड़ते हुए राजाओंका समूह ऐसा सुशोभित हो रहा था, कि मानो चिरकालसे साथ लगी हुई कुटिल शल्योंकी परम्पराको ही उखाड़ फेंक रहा हो।

तदनन्तर सुर और असुर भगवानकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—हे भगवान! आप कामदेवका पराजय करनेमें समर्थ हैं, हितकारी चेष्टाओंसे युक्त संसारी प्राणियोंके शरणभूत हैं—रक्षक हैं, क्रोधसे रहित हैं, तृष्णासे रहित हैं, उत्तम नयोंमें स्थित हैं–नयका पालन करनेवाले हैं और मुनि हैं—मननशील हैं। अतः आपको हमारा नमस्कार हो। इस प्रकार साथ-साथ स्तुति कर तथा सब ओरसे नमस्कार कर अपने हृदयोंमें तपस्वी श्री नेमिनाथ भगवानको धारण करनेवाले एवं चक्रमें स्थित नेमि–चक्रधाराके समान प्रवर्तक राजा वसुदेव-बलदेव आदि तथा सुर-असुर अपने-अपने स्थान पर चले गये।

तदनन्तर तीन दिन पश्चात् जब भगवान आहार लेनेके लिए द्वारिकापुरीमें आये तब उत्तम तेजके धारक प्रवरदत्तने उन्हें उत्तम खीरका आहार देकर देवसमूहके द्वारा महिमासे युक्त, हितकारी अद्भुत महिमा–प्रतिष्ठा प्राप्त की। भगवान श्री नेमिनाथ उस हितकारी मार्गमें तपस्या करने लगे। उन भगवानके साथ हजार राजागण भी ध्यान करते थे। उनकी ध्यानस्थ शांतमुद्रा देखकर सिंह, मृग, हाथी, मोर, सर्प भी उनकी

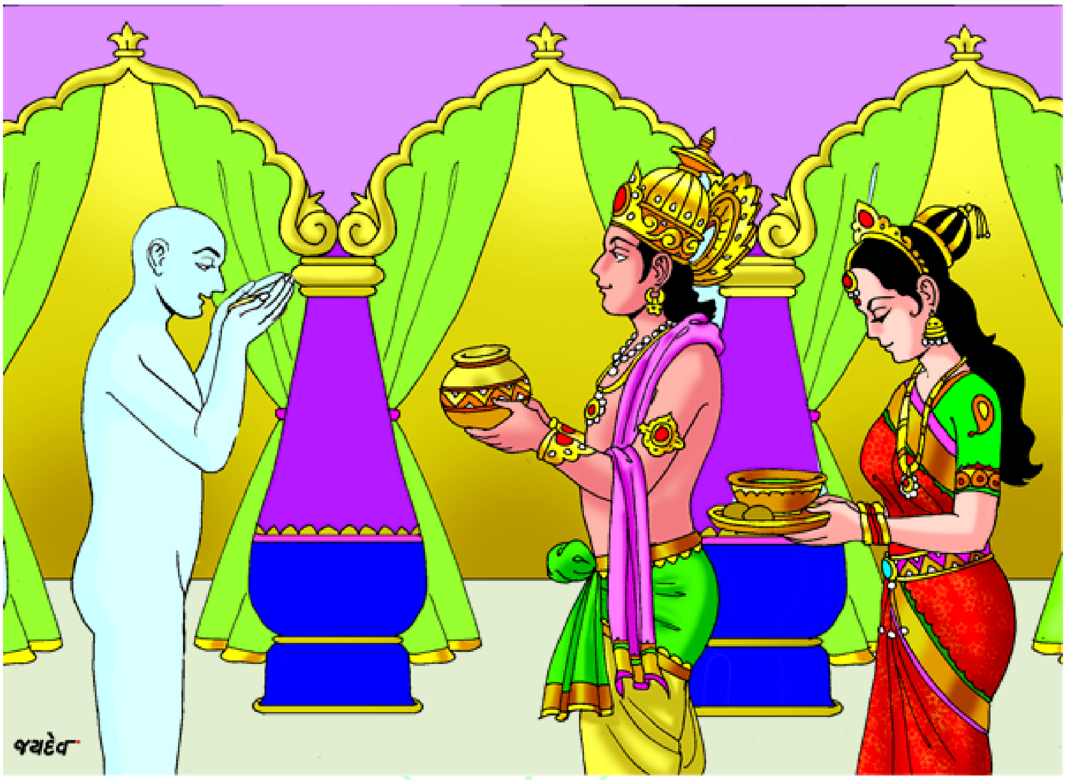

तीर्थंकर मुनिराज श्री नेमिनाथका नवधाभक्ति सह आहारदान देते राजा

शान्तमुद्राका शान्तरस पीने लगे। अनेक मुनीन्द्रोंको एक साथ ध्यान करते देख मानो वे भी देहसे भिन्न आत्माको पहचानकर आत्माका ध्यान ही कर रहे हों—इस भांति वैरभाव भूलकर शान्तचित्तसे उनके चरणोंमें बैठ गये।

व्रत, गुप्ति और समितियोंसे उत्कृष्टताको प्राप्त एवं परिषहोंको सहन करनेवाले मुनिराज नेमिनाथ रत्नत्रय और तपरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित होने लगे। उज्ज्वल बुद्धिके धारक भगवान, आर्त और रौद्र नामक अप्रशस्त ध्यानको छोड़कर धर्मध्यान और शुक्लध्यान नामक प्रशस्त ध्यानोंका ध्यान करनेके लिए उद्यत हुए।

भगवान श्री नेमिनाथने धर्मध्यानके दस भेदोंका यथायोग्य ध्यान करते हुए, छद्मस्थ अवस्थाके छप्पन दिन समीचीन तपश्चरणके द्वारा व्यतीत किये। तदनन्तर आश्विन शुक्ल प्रतिपदाके दिन प्रातःकालके समय भगवानने शुक्लध्यानरूपी अग्निके द्वारा चार घातियारूपी महावनको जलाकर तीनलोकके इन्द्रोंके आसन कंपा देनेवाले एवं अन्य

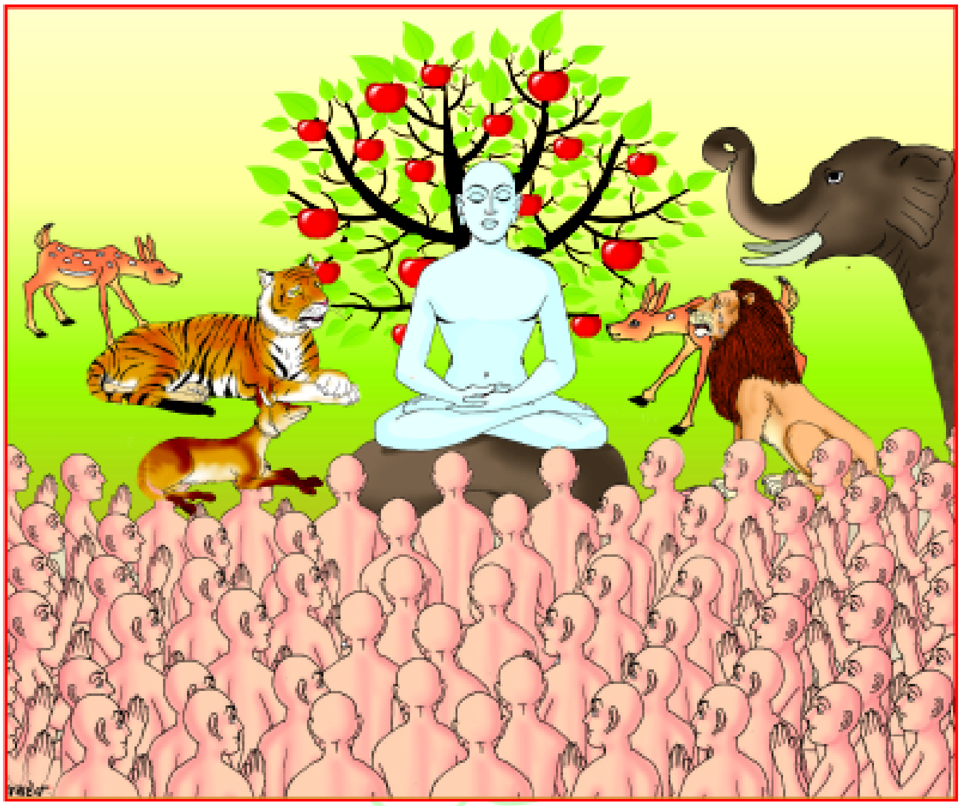

भगवान श्री नेमिनाथका हजारों मुनिओंके साथ आम्रवनमें ध्यान,
जंगली पशुका भी शान्त होकर भगवानके चरणोंमें रहना

जनदुर्लभ केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि अनन्तचतुष्टय प्राप्त किये।

आर्यिका राजमती भी अन्य आर्यिकाओंके साथ गिरनारकी गुफाओंमें तप करने लगीं व अन्तमें स्वर्गलोकमें गईं।

भगवान श्री धर्मनाथका पूर्व दूसरा भव

पूर्व धातकीखण्डमें पूर्व दिशाकी ओर सीता नदीके दाहिने किनारे पर एक सुसीमा नामका नगर है; उसमें किसी समय दशरथ (भगवान श्री धर्मनाथका पूर्व दूसरा भव) नामका राजा राज्य करता था। वह बहुत ही बलवान था। उसने समस्त शत्रुओंको जीतकर अपने राज्यकी नींव अत्यधिक मजबूत कर ली थी। उसका प्रताप और यश सारे संसारमें फैल रहा था।

एक समय चैत्र शुक्ला पूर्णिमाके दिन नगरके समस्त लोग वसन्तका उत्सव मना रहे थे। राजा भी उस उत्सवसे वंचित नहीं रहा। परन्तु चन्द्र-ग्रहण देखकर उसका हृदय

राजा दशरथका वसंतोत्सवमें चन्द्रग्रहण देखना

विषयोंसे विरक्त हो गया। वह सोचने लगा कि जब चन्द्रमा पर भी ऐसी विपत्ति पड़ सकती है, तब मेरे जैसे क्षुद्र नर-कीटों पर विपत्ति पड़ना कोई असम्भव नहीं है। मैं आज तक अपने शुद्ध-स्वभावको छोड़कर व्यर्थ ही विषयोंमें उलझा रहा। हा! हन्त! अब शीघ्र ही वृद्धावस्था आनेके पहिले ही मैं आत्म-कल्याण करनेका यत्न करूँगा। वनमें जाकर जिन-दीक्षा धारण करूँगा।

ऐसा सोच कर महाराज दशरथने जब अपने विचार राजसभामें प्रकट किये, तब एक मिथ्यादृष्टि मन्त्रीने कहा–'नाथ! भूत चतुष्टय (पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु) से बने हुए इस शरीरको छोड़कर आत्मा नामका कोई पदार्थ नहीं है। यदि होता तो जन्मके पहिले और मृत्युके पश्चात् वह दिखता क्यों नही? इसलिए आप ढोंगियोंके प्रपञ्चमें पड़कर वर्तमान सुख छोड़ व्यर्थ ही जंगलमें कष्ट मत उठाइये। ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो गाय के स्तनोंको छोड़ कर उसके सींगोंसे दूध दुहनेका प्रयत्न करेगा?

मन्त्रीके वचन सुनकर राजाने कहा–सचिव! तुम समीचीन ज्ञानसे सर्वथा रहित मालूम होते हो। हमारे और तुम्हारे शरीरमें जो अहम् (मैं)का ज्ञान होता है, वही आत्म-पदार्थकी सत्ता सिद्ध कर देता है। फिर करण (इन्द्रियों)में व्यापार देखकर कर्ता (आत्मा)का अनुमान भी किया जा सकता है। इसलिए आत्मा-पदार्थ, प्रमाण और अनुभवसे सिद्ध है। उसका विरोध नहीं किया जा सकता। तुमने जो भूत चतुष्टयसे जीव की उत्पत्ति होना बतलाया है, वह व्यभिचरित है; क्योंकि जहाँ पर खुल कर हवा बह रही है, ऐसे क्षेत्रमें अग्निके ऊपर रखी हुई जलपूर्ण बटलोईमें किसी भी जीवकी उत्पत्ति नहीं देखी जा सकती। जिसके विद्यमान रहते हुए कार्य हो और जिसके अभावमें कार्य न हो, वही सच्चा सम्यक् हेतु कहलाता है। पर यहाँ तो दूसरी ही बात है। यदि जन्मके पहिले और मृत्युके पश्चात् जीवात्माको सिद्ध न माना जावे, तो सद्यः प्रसूत (तत्काल उत्पन्न हुए) बालकके दूध पीनेका संस्कार कहाँसे आया? जाति-स्मरण और अवधिज्ञानसे जो मनुष्य अपने कितने ही पूर्वभव स्पष्ट देख लेते हैं, वह क्या है? रही न देखनेकी बात, सो मूर्तिक इन्द्रियोंसे उसका अवलोकन नहीं हो सकता। क्या कभी तीक्ष्ण तलवारोंकी धारसे आकाश-भेदन देखा गया? इस प्रकार मन्त्रीके नास्तिक विचारोंको दूर हटाकर उसे जैन तत्त्वोंका रहस्य समझाया और पुत्र महारथको

राज्य देकर राजा दशरथ वनमें जाकर विमलवाहन मुनिराजके पास दीक्षित हो गये।

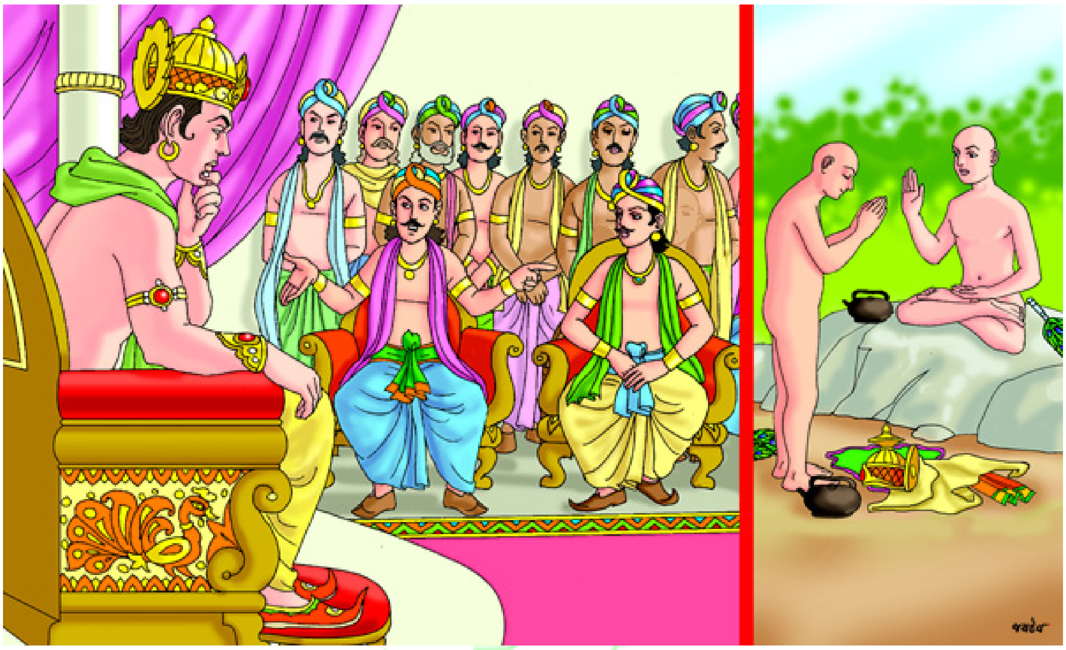

वसंतोत्सवमें राजा दशरथका चन्द्रग्रहण देखनेसे वैराग्यपूर्ण मंत्रीयों सह
दीक्षा हेतु चर्चा व दीक्षा ग्रहण

वहाँ उन्होंने खूब तपश्चरण किया तथा सतत् अभ्यासके द्वारा ग्यारह अङ्गोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया। मुनिराज दशरथने विशुद्ध हृदयसे दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन किया, जिससे उन्हें तीर्थंकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया। वे आयुके अन्तमें संन्यासपूर्वक शरीरको छोड़कर 'सर्वार्थसिद्धि' विमानमें अहमिन्द्र हुए। वहाँ उनकी आयु तेंतीस सागर थी, एक हाथ ऊंचा सफेद रंगका शरीर था। वे तेंतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेते थे और तेंतीस पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते थे। उन्हें जन्मसे ही अवधिज्ञान था, जिससे वे सातवें नरक तकके रूपी पदार्थोंको स्पष्टरूपसे जानते-देखते थे। वे हमेशा तत्त्वचर्चाओंमें ही अपना समय बिताया करते थे। कषायोंके मन्द होनेसे उनकी प्रवृत्ति विषयोंकी ओर झुकती ही नहीं थी। वे उस आत्मीय आनन्दका उपभोग करते थे, जो असंख्य विषय-भोगोंसे प्राप्त नहीं हो सकता।

यह अहमिन्द्र आगेके भवमें तीर्थंकर धर्मनाथ होंगे और अपने दिव्य उपदेशसे संसारका कल्याण करेंगे।

श्री श्रेयांसनाथ भगवानका दीक्षा कल्याणक

जब पुष्पोत्तर विमानमें इन्द्रकी आयु केवल छह माहकी शेष रह गई और वे पृथ्वी पर जन्म लेनेके लिए प्रस्तुत हुए; उस समय इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके सिंहपुर नगरमें इक्ष्वाकुवंशीय राजा विष्णु राज्य करते थे। उनकी महादेवीका नाम सुनन्दा था। ऊपर कहे हुए इन्द्रने ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठीके दिन श्रवण नक्षत्रमें रात्रिके अन्तिम भागमें स्वर्गभूमिको छोड़कर सुनन्दा महारानीके गर्भमें प्रवेश किया। उस समय रानी सुनन्दाने हाथी, बैल आदि सोलह स्वप्न देखे थे। प्रातः होते ही उसने प्राणनाथ विष्णु महाराजसे स्वप्नोंका फल सुना, जिससे वे बहुत ही प्रसन्न हुईं। उसी समय देवोंने आकर राज-दम्पत्तिका खूब सत्कार किया और गर्भ-कल्याणकका उत्सव मनाया। वह गर्भस्थ तीर्थंकर बालकका ही प्रभाव था, जो उनके गर्भमें आनेके छह माह पहिलेसे लेकर पन्द्रह माह तक महाराजा विष्णुके घर पर प्रतिदिन रत्नोंकी वर्षा होती रही और देव-कुमारियाँ महारानी सुनन्दाकी शुश्रुषा करती रहीं।

धीरे-धीरे गर्भका समय व्यतीत होने पर फाल्गुन कृष्णा एकादशीके दिन श्रवण नक्षत्रमें सुनन्दा देवीने पुत्र-रत्न उत्पन्न किया। उस समय अनेक शुभ शकुन हुए। देवोंने मेरु पर्वत पर ले जाकर बालकका कलशाभिषेक किया। फिर सिंहपुर प्रत्यावर्तन कर कई प्रकारसे जन्म-महोत्सव मनाया। यह बालक 'श्रेयोमार्ग' (मोक्षमार्ग)में प्रवृत्त करनेवाला होगा अतः उनका श्रेयांसनाथ नाम रखा। जन्म उत्सव समाप्त कर देव अपने-अपने स्थान पर चले गये। पर जाते समय इन्द्र ऐसे अनेक देव-कुमारोंको वहीं पर छोड़ गये थे, जो अपनी लीलाओंसे बालक श्रेयांसनाथको सतत् प्रसन्न रखते थे। राज्य परिवारमें बड़े प्रेमसे उनका लालन-पालन होने लगा।

इन्द्र स्वर्गसे उनके लिए अच्छे-अच्छे वस्त्र, आभूषण और खिलौने आदि भेजा करते थे। शीतलनाथ स्वामीके मोक्ष जानेके बाद सौ सागर, छ्यासठ लाख, छब्बीस

हजार वर्षके अन्तराल पश्चात् भगवान श्री श्रेयांसनाथ हुए है। इनके जन्म लेनेके पहिले भारतवर्षमें आधे पल्य तक धर्मका विच्छेद हो गया था, पर इनके उत्पन्न होते ही धर्मका उत्थान पुनः होने लगा था। इनकी आयु चौरासी लाख वर्षकी थी, शरीरकी ऊँचाई अस्सी धनुषकी थी और रंग सुवर्णके समान उज्ज्वल पीतवर्ण था।

जब उनके कुमारकालके इक्कीसलाख वर्ष बीत गये, तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ। राज्य पाकर उन्होंने सुचारुरूपसे प्रजाका पालन किया। वे अपने बलसे निरन्तर दुष्टोंका निग्रह करते और सज्जनों पर अनुग्रह करते थे। योग्य कुलीन कन्याओंके साथ उनका विवाह हुआ था। जिससे उनका राज्य-काल सुखसे बीतता था। देव लोग बीच-बीचमें तरह-तरहके विनोदोंसे उन्हें प्रसन्न करते रहते थे। इस तरह इन्होंने ब्यालीस लाख वर्ष तक राज्य किया।

तदनन्तर किसी दिन वसन्त ऋतुका परिवर्तन देखकर वे विचार करने लगे कि जिस कालने इस संसारको ग्रस्त कर रखा है वह काल भी जब क्षण घड़ी घंटा आदिके परिवर्तनसे नष्ट होता जा रहा है तब अन्य किस पदार्थमें स्थिरता रह सकती है ? यथार्थमें यह समस्त संसार विनश्वर है, जब तक शाश्वत पद--अविनाशी मोक्ष पद नहीं प्राप्त कर लिया जाता है तब तक एक जगह सुखसे कैसे रहा जा सकता है ? भगवान ऐसा विचार कर ही रहे थे कि उसी समय सारस्वत आदि लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की। भगवानने श्रेयस्कर पुत्रके लिये राज्य दिया, और

वैराग्यके कारण राजा श्रेयांसनाथका पुत्रको राज्य देना

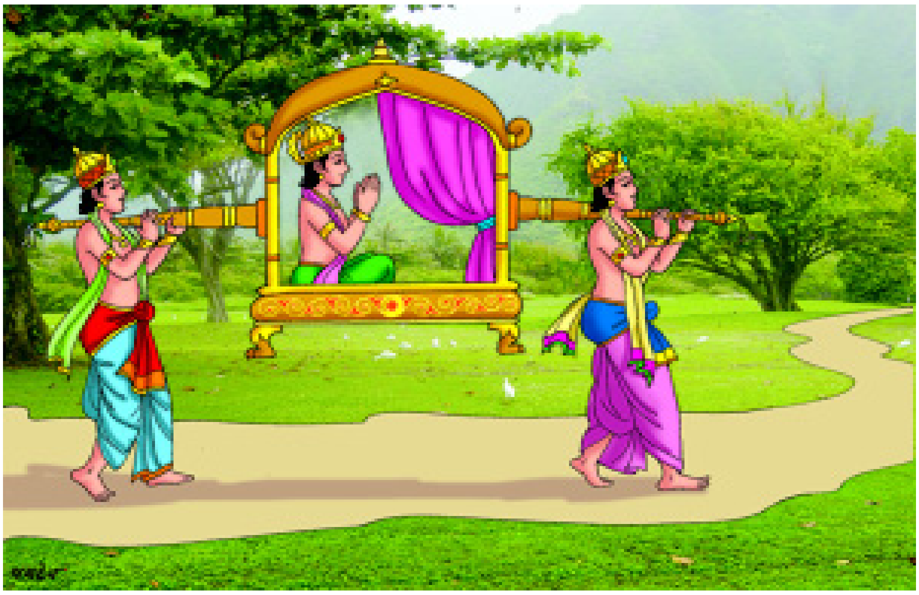

श्री श्रेयांसनाथ भगवानका दीक्षा हेतु वनगमन

इन्द्रोंके द्वारा दीक्षा कल्याणकके समय होनेवाले महाभिषेकको प्राप्त कर देवोंके द्वारा उठायी जानेके योग्य विमलप्रभ नामकी पालकी पर सवार होकर मनोहर नामक महान उद्यानकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने दो दिनके लिये आहारका त्याग कर फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन प्रातःकालके समय श्रवण नक्षत्रमें एक हजार राजाओंके साथ संयम धारण कर लिया। उसी समय उन्हें चौथा मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। दूसरे दिन उन्होंने भोजनके लिये सिद्धार्थ नगरमें प्रवेश किया। वहाँ उनके लिये सुवर्णके समान कांतिवाले नन्द राजाने भक्तिपूर्वक आहार दिया जिससे उत्तम बुद्धिवाले उस राजाने श्रेष्ठ पुण्य और पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। इस प्रकार छद्मस्थ अवस्थाके दो वर्ष बीत जाने पर एकदिन महामुनि श्रेयांसनाथ मनोहर नामक उद्यानमें दो दिनका उपवासका नियम लेकर तुम्बुर वृक्षके नीचे बैठे और वहीं पर उन्हें माघकृष्ण अमावस्याके दिन श्रवण नक्षत्रमें सायंकालके समय केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। उसी समय अनेक ऋद्धियोंसे सहित चर्तुनिकायके देवोंने उनके चतुर्थ कल्याणककी पूजा की।

भगवान श्री श्रेयांसनाथ कुन्थु आदि सत्तहत्तर गणधरोंके समूहसे घिरे हुए थे, तेरहसौ पूर्वधारियोंसे सहित थे, अड़तालीस हजार दो सौ उत्तम शिक्षक मुनियोंके द्वारा पूजित थे, छह हजार अवधिज्ञानीयोंसे सम्मानित थे, छह हजार पाँचसौ केवलज्ञानी रूपी

भगवान श्रेयांसनाथका केवलज्ञान कल्याणक

सूर्योंसे सहित थे, ग्यारह हजार विक्रिया ऋद्धिके धारकोंसे सुशोभित थे, छह हजार मनःपर्ययज्ञानियोंसे युक्त थे, और पाँच हजार मुख्य वादियोंसे सेवित थे। सब प्रकार सब मिलकर चौरासी हजार मुनियोंसे सहित थे। इनके सिवाय एक लाख बीस हजार धारणा आदि आर्यिकाएँ उनकी पूजा करती थीं, दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविकाएँ उनके साथ थीं, पहले कहे अनुसार असंख्य देव-देवियाँ और असंख्यात तिर्यञ्च सदा उनके साथ रहते थे। इस प्रकार विहार करते और धर्मका उपदेश देते हुए वे सम्मेदशिखर पर जा पहुँचे। वहाँ एक माह तक योग-निरोध कर एक हजार मुनियोंके साथ उन्होंने प्रतिमायोग धारण किया। श्रावण शुक्ला पूर्णमासीके दिन सायंकालके समय घनिष्ठा नक्षत्रमें विद्यमान कर्मोंकी असंख्यातगुणश्रेणी निर्जरा की और अ इ उ ऋ लृ इन पाँच लघु अक्षरोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है उतने समयमें अन्तिम दो शुक्लध्यानोंसे समस्त कर्मोंको नष्ट कर पञ्चम गतिमें स्थित हो वे भगवान श्री श्रेयांसनाथ सिद्ध हो गये। उनके पवित्र चरणोंमें कोटि कोटि वंदन।

जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-५ (हिन्दी)

प्रस्तुत आवृत्तिके प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशी

रु. १००००=००

श्री निरंजना जैन, जबलपुर

रु. ५०००=००

श्री सार्थक जैन, देहली

श्री शकुंतलाबेन पवनकुमार जैन, सोनगढ

रु. २१००=००

ब्र. हंसाबेन जलगांववाले

रु. २००१=००

श्री क्षायिक मीमांसा जैन, उदयपुर

रु. १५००=००

श्री भिलाई मुमुक्षु मंडल

रु. १०००=००

श्री निकी निरंजन जैन

श्री दिपीकाबेन गंगावत, उदयपुर

श्री भुदरमलजी उत्तनचंदजी जैन

श्री रश्मिबेन देवेनकुमार जैन

श्री वीरेन्द्रभाई रतिलाल देसाई

श्री शीलाबेन सौरभ जैन, इन्दौर

श्री कुसुमबेन मोतीलाल जैन, खंडवा

श्री श्रवणलताबेन जैन, प्रतापगढ

श्री विजयाबेन मूलचंद गोधा

श्री विद्या प्रकाशचंदजी पाटनी

श्री मंजुलाबेन यदुनंदन, देहली

श्री रश्मिबेन शिवपुरी

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.